प्रशिक्षण पुस्तिका

डेसी

(डिप्लोमा इन एग्रीकल्चरल एक्सटेंशन सर्विसेज फॉर इनपुट डीलर्स)

राज्य कृषि प्रबन्धन एवं प्रसार प्रशिक्षण संस्थान, उत्तराखण्ड (समेटी-उत्तराखण्ड)

प्रसार शिक्षा निदेशालय

गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

पंतनगर–263145, ऊधमसिंह नगर, उत्तराखण्ड

राज्य कृषि प्रबन्धन एवं प्रसार प्रशिक्षण संस्थान, उत्तराखण्ड

(समेटी–उत्तराखण्ड)

प्रशिक्षण पुस्तिका – डेसी

संरक्षक

डा० मनमोहन सिंह चौहान

कुलपति

निर्देशन

डा० अनिल कुमार शर्मा

निदेशक, प्रसार शिक्षा एवं समेटी–उत्तराखण्ड

सम्पादक

डा० बी०डी० सिंह

प्राध्यापक (सस्य विज्ञान) एवं समन्वयक 'डेसी', प्रसार शिक्षा निदेशालय

एवं

कु० ज्योति कनवाल

फैसिलिटेटर –डेसी, प्रसार शिक्षा निदेशालय

सहयोग

डा० महांतेष शिरूर, उप निदेशक (कृषि विस्तार) एवं प्रधान समन्वयक (डेसी), मैनेज–हैदराबाद

डा० अजय कुमार वर्मा, मुख्य कृषि अधिकारी एवं परियोजना निदेशक–आतमा, ऊधम सिंह नगर

श्रीमती विधि उपाध्याय, जिला कृषि रक्षा अधिकारी, ऊधम सिंह नगर

डा० शब्बीर पटेल, डेसी सलाहकार उत्तराखण्ड, मैनेज–हैदराबाद

डा० अनुराधा दत्ता, संयुक्त निदेशक (कृषि प्रसार), प्रसार शिक्षा निदेशालय

डा० आर०के० शर्मा, प्राध्यापक (सस्य), प्रसार शिक्षा निदेशालय

डा० संजय चौधरी, प्राध्यापक (पशुपालन), प्रसार शिक्षा निदेशालय

डा० बी०एस० कार्की, प्राध्यापक (सस्य), प्रसार शिक्षा निदेशालय

डा० निर्मला भट्ट, सह निदेशक (पादप रोग), प्रसार शिक्षा निदेशालय

प्रकाशन वर्ष : 2022–23

नोटः इस प्रशिक्षण पुस्तिका में प्रकाशित लेख कृषक, प्रसार कार्यकर्ता आदि की जानकारी के लिए है। इसका विधिक एवं व्यवसायिक कार्यो हेतु प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

प्रसार शिक्षा निदेशालय

गो.ब. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर (ऊधम सिंह नगर), उत्तराखण्ड

सम्पर्क सं. : 05944-233336, ई–मेल sametiuttarakhand@gmail.com

गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
पंतनगर–263145, जिला–ऊधम सिंह नगर (उत्तराखण्ड) भारत
G.B. Pant University of Agriculture & Technology
Pantnagar -263145 (Uttarakhand) India

डा० एम० एस० चौहान
एफ.एन.ए., एफ.एन.ए.एससी., एफ.एन.ए.ए.एस., एफ.एन.ए.डी.एस.
कुलपति
Dr. M. S. Chauhan
FNA, FNASc, FNAAS, FNADS
Vice-Chancellor

प्राक्कथन

उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्र के कृषक कठिन व प्रतिकूल परिस्थिति में जीवन–यापन करने के लिए जाने जाते हैं। कृषि की समस्याएं जैसे पथरीली व कम उपजाऊ मृदा, ढालू व सीढ़ीनुमा खेत, सीमित सिंचाई के साधन, तकनीक का अभाव के साथ–साथ जनसंख्या वृद्धि, पलायन, पारिस्थितिक असंतुलन हैं, जिसके निराकरण पर ही यहाँ के कृषि का भविष्य टिका है। हमें यहाँ के पारिस्थितिकी संतुलन को भी बनाये रखते हुए काश्तकारों के आर्थिकी में सुधार तथा निरन्तर हो रहे पलायन को रोकना है। मा. प्रधानमंत्री की वर्ष 2022 तक कृषकों की आय दोगुनी करने के लक्ष्य पर भी प्रसार कार्यकर्ताओं को अपेक्षित कार्य करने की आवश्यकता है। विकसित कृषि तकनीक को कृषकों तक पहुँचाना एक बड़ी चुनौती होती है और इस चुनौती को स्वीकार करते हुए विश्वविद्यालय के अधीन कार्यरत कृषि विज्ञान केन्द्र तकनीकी हस्तांतरण में अहम भूमिका निभा रहे हैं। केन्द्र के प्रसार कार्यक्रमों जैसे प्रथम पंक्ति प्रदर्शन, प्रशिक्षण, किसान मेला, कृषक–वैज्ञानिक संवाद जैसे कार्यक्रमों से अनेक कृषक लाभान्वित होने के साथ–साथ तकनीक के वृहद विस्तार में भी अग्रणी भूमिका निभा रहे हैं। इसी कड़ी में मुझे बताया गया है कि समेटी–उत्तराखण्ड, प्रसार शिक्षा निदेशालय, गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर द्वारा मैनेज के सहयोग से 48 सप्ताह का डिप्लोमा कोर्स–डेसी चलाया जा रहा है, जिसमें प्रत्येक मंगलवार को कृषि निवेश वितरक यहाँ आकर कक्षागत एवं प्रायोगिक अध्ययन करते हैं। अध्ययन के पश्चात् ये वितरक अपने क्षेत्र में किसानों को तकनीकी जानकारी प्रदान कर उनके खेतों से पैदावार वृद्धि एवं आजीविका संवर्धन में अवश्य सहायक होंगें, ऐसा मेरा मानना है। मैनेज, हैदराबाद को पूरे देश में इस अनूठे पाठ्यक्रम संचालन हेतु मैं निश्चित रूप से साधुवाद देता हूँ।

निदेशक, समेटी एवं प्रसार शिक्षा डा0 अनिल कुमार शर्मा ने बताया हे कि उनकी टीम द्वारा डेसी की प्रशिक्षण पुस्तिका का प्रकाशन किया जा रहा है। आशा ही नहीं अपितु मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह प्रशिक्षण पुस्तिका हितधारकों हेतु लाभकारी होगी। प्रशिक्षण पुस्तिका के सफल प्रकाशन हेतु मैं, डा0 अनिल कुमार शर्मा, निदेशक प्रसार शिक्षा एवं समेटी–उत्तराखण्ड, डा0 बी0डी0 सिंह, प्राध्यापक (सस्य विज्ञान) व पूरी टीम को धन्यवाद देता हूँ।

(मनमोहन सिंह चौहान)

दूरभाष (कार्यालय) : 05944–233333, 233663 (निवास) 233621, फैक्स : 05944–233500 (कार्यालय), 233833 (निवास)
E-mail : vcgbpuat@gmail.com, Website : www.gbpuat.ac.in

डा० पी० चन्द्रा शेखरा
महानिदेशक

Dr. P. Chandra Shekara
Director General

संदेश

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का अहम् योगदान होता है। पूरे देश में आज भी लगभग 60 प्रतिशत आबादी सीधे खेती किसानी से जुड़ी है। कृषकों द्वारा परम्परागत तरीके से खेती, समुचित प्रसार का अभाव, नवीनतम विकसित कृषि तकनीक से अछूते एवं प्रचलित विपणन व्यवस्था इत्यादि के चलते कृषक को प्रायः आर्थिक क्षति और परिणामस्वरूप परिवार की विपन्नता बनी रहती है। किसान के प्रथम मदद्गार उनके नजदीकी क्षेत्र में कार्य कर रहे कृषि निवेश वितरक होते हैं, जिनसे ये बीज, उर्वरक, रसायन आदि का क्रय तथा कृषि के अन्य समस्याओं का समाधान चाहते हैं। यद्यपि ये वितरक अपने सीमित कृषि ज्ञान के कारण समुचित जानकारी नहीं दे पाते और कृषक को कभी–कभी भारी क्षति झेलनी पड़ जाती है। इस स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए मैनेज हैदराबाद द्वारा यह परिकल्पना किया गया कि यदि इन वितरकों को कृषि की मूलभूत तकनीकी जानकारी उपलब्ध कराई जाये तो ये कृषकों तक ये जानकारी मुहैया कराकर उनके सच्चे मदद्गार बन सकते हैं। इस प्रकार मैनेज ने वर्ष 2003 में इन वितरकों के लिए एक डिप्लोमा कोर्स प्रारम्भ किया जो डेसी (डिप्लोमा इन एग्रीकल्चरल एक्सटेंशन सर्विसेज फॉर इनपुट डीलर्स) के नाम से लोकप्रिय है। इस कोर्स का उद्देश्य कृषि निवेश वितरकों को ''पैरा एक्सटेंशन प्रोफेशनल'' के रूप में विकसित करना है। मुझे यह बताते हुए हर्ष की अनुभूति हो रही है कि इस संस्थान के नेतृत्व में लगभग 55563 वितरक निपुण हो चुके हैं जबकि 22360 वितरक ये कोर्स कर रहे हैं। देश में ज्यादातर कृषि निवेश वितरक कृषक समुदाय से आते हैं, जो अपने परिवार, गांव व आस–पास के लोगों को कृषि सम्बन्धी समुचित जानकारी देकर उपज एवं फलतः आर्थिक उन्नयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकेंगें। इस कार्यक्रम से वितरकों का रेखीय विभाग के अधिकारी एवं कृषि वैज्ञानिकों से सम्पर्क बढ़ेगा, जो परोक्ष एवं अपरोक्ष रूप से उनके क्षमता विकास में सहायक होगा। इस प्रकार वितरक गण और भी प्रभावी रूप में कृषक समुदाय के मदद्गार के रूप में उभरते हुए उनके सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त करेंगें।

मुझे यह जानकर हर्ष हो रहा है कि राज्य कृषि प्रबन्धन एवं प्रसार प्रशिक्षण संस्थान–उत्तराखण्ड, गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर द्वारा **प्रशिक्षण पुस्तिका–डेसी** का प्रकाशन कर रही है। इस प्रशिक्षण पुस्तिका में पंत विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों द्वारा डेसी कोर्स के दौरान दिये गये व्याख्यानों को संकलित किये गये हैं। मुझे आशा ही नहीं अपितु विश्वास है कि यह प्रशिक्षण पुस्तिका हितधारकों हेतु लाभकारी होगी। पुस्तिका के सफल प्रकाशन हेतु पूरे डेसी टीम, पंतनगर को बधाई देना अपना कर्तव्य मानता हूँ।

पी. चन्द्र शेखरा

(डा0 पी0 चन्द्रशेखरा)

राष्ट्रीय कृषि विस्तार प्रबंध संस्थान (मैनेज)
(कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार का एक स्वायत्त संगठन, राजेन्द्रनगर, हैदराबाद–500 030, तेलंगाना, भारत)
NATIONAL INSTITUTE OF AGRICULTURAL EXTENSION MANAGEMENT (MANAGE)
(An Autonomous Organization of Ministry of Agriculture and Farmers Welfare, Government of India)
Rajendranagar, Hyderabad – 500 030, Telangana State, INDIA
Telephone : +91 040-2459 4505, 24015253 (O), Fax : +91 (040) 24015388
E-mail : dgmanage@manage.gov.in, Web : www.manage.gov.in

डा० अनिल कुमार शर्मा
निदेशक, प्रसार शिक्षा एवं निदेशक, राज्य कृषि
प्रबन्धन एवं प्रसार प्रशिक्षण संस्थान, उत्तराखण्ड
(समेटी–उत्तराखण्ड)

**गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक
विश्वविद्यालय, पंतनगर–263145
जिला–ऊधम सिंह नगर (उत्तराखण्ड) भारत**
G.B. Pant University of Agriculture &
Technology, Pantnagar-263145
Dist.-U.S. Nagar (Uttarakhand) India

आमुख

हमारा देश प्राकृतिक संसाधनों से सम्पन्न देश है, परन्तु निरन्तर जनसंख्या विस्फोट, प्राकृतिक संसाधनों का अनियोजित दोहन, कीटनाशी रसायनों के अत्यधिक प्रयोग से न केवल पर्यावरण प्रदूषण, मृदा में विकार व उपज में कमी हो रही है, बल्कि उत्पादन लागत में बढ़ोत्तरी व लाभ भी कम मिल रहा है। आज भी देश में बहुंसख्य कृषक अपने नजदीकी कृषि निवेश वितरक पर निर्भर होते हैं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि ये वितरक कृषक के प्रथम कृषि सलाहकार होते हैं। कृषक इनसे विभिन्न कृषि निवेश लेते हैं और अपनी सुविधानुसार उसका भुगतान करते हैं। प्रायः ये वितरक कृषि का कोर्स नहीं किये होते हैं, जिससे उनके आधे–अधूरे ज्ञान व सलाह के कारण कृषक को हानि हो जाती है। किसानों को समुचित कृषि तकनीकी जानकारी प्रदान करने हेतु मैनेज ने कृषि निवेश वितरकों हेतु 48 सप्ताह का डिप्लोमा कोर्स ''डेसी'' चलाया है। वर्तमान में यह डिप्लोमा कोर्स देश के अनेक राज्यों जैसे तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, कर्नाटक, जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, झारखण्ड, बिहार, उत्तर प्रदेश व उत्तराखण्ड में संचालित हो रहा है। भारत सरकार ने कोर्स के संचालन हेतु मैनेज, हैदराबाद को राष्ट्रीय स्तर पर, समेटी को राज्य स्तर पर एवं आतमा को जिला स्तर पर अधिकृत किया है। कोर्स के दौरान सप्ताह में एक दिन ये वितरक संस्थान में जाकर व्यावहारिक अध्ययन करते हैं। मुझे विश्वास है कि कोर्स के पश्चात् ये वितरक कृषकों को बेहतर सेवा करेंगें। निश्चित रूप से यह कोर्स ''उन्नत तकनीक–समृद्ध किसान'' की परिकल्पना को साकार करने में महती भूमिका निभायेगा।

समेटी–उत्तराखण्ड, प्रसार शिक्षा निदेशालय, गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर द्वारा डेसी–प्रशिक्षण पुस्तिका का प्रकाशन किया जा रहा है, जिसमें कृषि की समस्त उन्नत तकनीकों जैसे फसल–सब्जी उत्पादन, समन्वित पोषक तत्व प्रबन्धन, जैविक खेती, मशरूम उत्पादन, मत्स्य पालन, डेयरी प्रबन्धन, कुक्कुट पालन, कृषि रसायनों का नियोजित प्रयोग, उर्वरक प्रयोग दिशा निर्देश, जैव रसायनों का प्रयोग, कीटनाशी सम्बन्धी वैधानिक नियमन आदि समाहित हैं। मुझे विश्वास है कि यह प्रशिक्षण पुस्तिका कृषि निवेश वितरक, कृषक, प्रसार कार्यकर्ता आदि हेतु मार्गदर्शक की भूमिका निभायेगा। मैं विश्वविद्यालय के सभी वैज्ञानिकों का विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होनें कोर्स के दौरान वितरकों को व्यावहारिक तकनीकी जानकारी प्रदान की। मैनेज, हैदराबाद के समस्त अधिकारी एवं वैज्ञानिकों का भी आभार, जिन्होंने विश्वविद्यालय को यह कोर्स चलाने का अवसर प्रदान किया। अंत में, इस महत्वपूर्ण पुस्तिका के प्रकाशन हेतु मैं अपने संकाय सदस्य डा0 बी0डी0 सिंह, प्राध्यापक (सस्य विज्ञान) एवं कु. ज्योति कनवाल, फैसिलिटेटर को सहर्ष धन्यवाद देता हूँ।

(अनिल कुमार शर्मा)

दूरभाष (कार्यालय): 05944–233336, फैक्स: 05944–233473 (कार्यालय)
E-mail: dirextedugbp@gmail.com

डा० बी०डी० सिंह
प्राध्यापक (सस्य विज्ञान) एवं समन्वयक–डेसी
प्रसार शिक्षा निदेशालय

गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर–263145
जिला–ऊधम सिंह नगर (उत्तराखण्ड) भारत
G.B. Pant University of Agriculture & Technology, Pantnagar-263145
Dist.-U.S. Nagar (Uttarakhand) India

आभार

देश की अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है। वर्तमान में खाद्यान्न उत्पादन लगभग 300 मिलियन टन है, जो तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सफल तो है, परन्तु कृषि वैज्ञानिक, अधिकारी और प्रसार कार्यकर्ताओं के समक्ष भविष्य हेतु गंभीर चुनौती भी बनी हुई है। यद्यपि कृषि वैज्ञानिकों ने अनुसंधान केन्द्रों पर परीक्षा कर यह सिद्ध किया है कि विकसित तकनीक अपनाकर आर्थिकी में पर्याप्त वृद्धि की जा सकती है। अब समय की माँग है कि विकसित तकनीक का व्यापक प्रचार–प्रसार कर अंतिम पायदान पर बैठे कृषकों को लाभ पहुँचाकर उन्हें आत्मनिर्भर बनाया जाय।

कृषि तकनीक के विस्तार में कीटनाशी रसायन एवं उर्वरक विक्रेताओं की बहुत बड़ी भूमिका होती है। प्रायः कृषक सबसे पहले इन्हीं से सम्पर्क कर अपनी कृषिगत समस्याओं का समाधान प्राप्त करते हैं। कभी–कभी कृषि निवेश वितरक अपने सीमित कृषि ज्ञान के कारण कृषकों को आधी–अधूरी जानकारी देते हैं, जिससे कृषक को छति का भी सामना करना पड़ता है। इस अतिमहत्वपूर्ण स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए मैनेज, हैदराबाद ने वर्ष 2003 में एक वर्षीय डिप्लोमा कोर्स प्रारम्भ किया, जो डेसी (डिप्लोमा इन एग्रीकल्चरल एक्सटेंशन सर्विसेज फॉर इनपुट डीलर्स) के नाम से लोकप्रिय है। भारत सरकार ने यह कोर्स देश भर में कृषि निवेश वितरकों हेतु अनिवार्य कर दिया है। डेसी–डिप्लोमा कोर्स 48 सप्ताह का होता है, जिसमें से 40 कक्षायें क्लास में एवं 08 फील्ड विजिट होती हैं। निवेश वितरकों के क्षमता विकास वृद्धि हेतु मैनेज, हैदराबाद के इस राष्ट्रव्यापी अभियान में राज्य स्तर पर समेटी एवं जिला स्तर पर आतमा की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है।

मैं मा0 कुलपति, डा0 मनमोहन सिंह चौहान एवं निदेशक, प्रसार शिक्षा एवं समेटी–उत्तराखण्ड, डा0 अनिल कुमार शर्मा का विशेष रूप से धन्यवाद दूँगा कि आपसे सदैव आवश्यकता आधारित दिशा–निर्देश, प्रोत्साहन और सुझाव प्राप्त हुए, जिससे यह कोर्स सम्पन्न हुआ व प्रशिक्षण पुस्तिका प्रकाशित हो सकी। समेटी–उत्तराखण्ड द्वारा वर्ष 2021–22 में संचालित डेसी बैच में विश्वविद्यालय के शिक्षकों द्वारा व्यावहारिक और उपयोगी व्याख्यान दिया गया है, इसके लिए समेटी सभी का हृदय से आभार व्यक्त करती है।

मैं डा0 पी0 चन्द्रशेखरा, महानिदेशक, डा0 महांतेष शिरूर, उपनिदेशक (कृषि विस्तार) एवं प्रधान समन्वयक (डेसी) एवं डा0 शब्बीर पटेल (कन्सलटेंट–डेसी : उत्तराखण्ड) मैनेज, हैदराबाद का भी कोर्स संचालन हेतु विश्वविद्यालय का चयन, बजट आवंटन एवं प्रशासनिक सहयोग हेतु आभार व्यक्त करता हूँ। कोर्स में पंजीकृत समस्त कृषि निवेश वितरकों का भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ कि आप लोग नियमित छात्र की तरह कुशलतापूर्वक अध्ययन ग्रहण किये। अंत में मैं निदेशालय के सभी संकाय सदस्य, लेखानुभाग, डेसी फेसिलिटेटर कु0 ज्योति कनवाल एवं श्री जगदीश चन्द्र बिष्ट को भी कोर्स संचालन में मदद करने हेतु साधुवाद देता हूँ। मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि 'प्रशिक्षण पुस्तिका–डेसी' से हितधारक लाभान्वित होंगे।

(बी0डी0 सिंह)

दूरभाष (कार्यालय): 05944–233336, फैक्स: 05944–233473 (कार्यालय)
E-mail: bdsingh5@gmail.com

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	व्याख्यान का शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1	डिप्लोमा कोर्स–डेसी : परिचय	9
2	मौसम पूर्वानुमान तकनीकों का कृषि में उपयोग	11
3	शुष्क भूमि क्षेत्रों के लिये प्राकृतिक संसाधन प्रबन्धन और फसल नियोजन	14
4.	मृदा परीक्षण–एक परिचय	18
5.	समन्वित पोषक प्रबंधन	20
6.	फसल उत्पादन में जल प्रबन्धन का महत्व	24
7	जल उपभोग क्षमता वृद्धि हेतु जल प्रबन्धन के सिद्वान्त	26
8.	सूक्ष्म सिंचाई पद्धति	27
10.	उन्नत धान उत्पादन तकनीक	30
11.	मक्का की वैज्ञानिक खेती	34
12	सोयाबीन की उन्नत खेती	38
13	उन्नत मंडुवा (रागी) उत्पादन तकनीक	44
14	दलहनी फसलों की उत्पादन तकनीकी	47
15	सब्जी मटर, प्याज व लहसुन की उत्पादन तकनीक	51
16	प्रमुख फलों की उन्नत खेती	54
17	शकरकंद, अरबी एवं आलू की वैज्ञानिक खेती	61
18	अदरक एवं हल्दी की व्यावसायिक खेती	64
19	प्रमुख औषधीय एवं सगंध पौधों की वैज्ञानिक खेती	68
20	जैविक खेती	74
21	फसल उत्पादन में जैव उर्वरकों की भूमिका	80
22	पोषक तत्वों का महत्व, कमी के लक्षण एवं उपचार	83
23	खरपतवार प्रबन्धन, प्रकार एवं शाकनाशी नियमन	90
24	तिलहनी एवं दलहनी फसलों में खरपतवार नियंत्रण	96
25	खरीफ फसलों में समेकित खरपतवार प्रबन्धन	99
26	रबी फसलों में समन्वित खरपतवार नियंत्रण	105
27	संरक्षित खेती	109

28	मानव जीवन में पोषण वाटिका की उपयोगिता	113
29	विभिन्न प्रसार कार्यक्रमों का टिकाऊ कृषि मे योगदान	115
30	उर्वरक नियंत्रण आदेश	120
31	फसलों में जैविक कीट नियंत्रण	123
32	कृषि में रोग प्रबन्धन हेतु बायो एजेण्ट (जैव अभिकर्त्ता) का प्रयोग	127
33	फसल एवं सब्जियों के प्रमुख रोग व उनका नियंत्रण	129
34	खेतिहर महिलाओं के काम को हल्का करने वाले औजार	136
35	कृषि रसायनों का मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव	139
36	उन्नत मशरूम उत्पादन	143
37	मधुमक्खी पालन	149
38	मत्स्य उत्पादन तकनीकी	154
39	डेयरी प्रबन्धन	158
40	मवेशियों के प्रमुख रोग	164
41	उन्नत कुक्कुट पालन प्रबन्धन	168
42	तनाव प्रबन्धन	170
43	उच्च गुणवत्ता एवं लाभ हेतु धान का भंडारण, प्रबंधन एवं विपणन	172
44	कृषि विभाग की प्रमुख योजनाएं एवं कृषकों को देय सुविधायें	177
45	पशुपालन विभाग द्वारा संचालित योजनाएं एवं देय सुविधायें	186
46	वस्तु एवं सेवा कर (G.S.T.): परिचय, संरचना एवं परिचर्चा	189

डिप्लोमा कोर्स-डेसी : परिचय

(डिप्लोमा इन एग्रीकल्चरल एक्सटेंसन सर्विसेज फॉर इनपुट डीलर्स)

डा० बी०डी० सिंह, प्राध्यापक (सस्य विज्ञान), **डा० अनिल कुमार शर्मा**, निदेशक, प्रसार शिक्षा एवं समेटी–उत्तराखण्ड एवं **कु. ज्योति कनवाल**, फैसिलिटेटर 'डेसी'
प्रसार शिक्षा निदेशालय, गो.ब. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल : bdsingh5@gmail.com

परिचय–

पूरे भारत में लगभग 2.82 लाख कृषि निवेश वितरक (इनपुट डीलर्स) हैं जो कृषकों को विभिन्न निवेश उपलब्ध कराने एवं उनके बीच नवीनतम कृषि तकनीक को लोकप्रिय बनाने के माध्यम होते हैं। कृषक समुदाय का प्रथम सम्पर्क केन्द्र कृषि निवेश वितरक ही होता है, जहाँ से वह विभिन्न निवेश क्रय के साथ ही उसकी प्रयोग विधि, कहाँ, कब, कैसे प्रयोग किया जाये आदि अनेक जिज्ञासाओं का समाधान जानने का प्रयास करता है। परन्तु निवेश वितरक अपने सीमित कृषि ज्ञान के कारण समुचित जानकारी नहीं दे पाता है, जिससे कृषक को कभी–कभी क्षति झेलनी पड़ जाती है। इस अतिमहत्वपूर्ण स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए मैनेज, हैदराबाद द्वारा यह परिकल्पना किया गया कि यदि इन कृषि निवेश वितरकों को कृषि की मूलभूत तकनीक उपलब्ध करा दिया जाये तो ये तकनीक को कृषक समुदाय के मध्य लोकप्रिय बनाने में जागरूक पुल की भाँति काम कर सकते हैं।

मैनेज, हैदराबाद ने वर्ष 2003 में एक वर्षीय डिप्लोमा कोर्स प्रारंभ किया जो डेसी (डिप्लोमा इन एग्रीकल्चरल एक्सटेंसन सर्विसेज फॉर इनपुट डीलर्स) के नाम से जाना जाता है। वर्तमान में लगभग 55563 कृषि निवेश वितरक यह कोर्स पूरा कर कृषि तकनीक के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है। इसके अतिरिक्त वर्तमान में लगभग 22360 वितरक यह कोर्स कर रहे है जो भविश्य में कृषकों के लिए पथ प्रदर्शक बनेगें।

उद्देश्य–

1. क्षेत्र विशेषानुसार कृषि निवेश वितरकों को फसल/सब्जी/फल उत्पादन तकनीक/प्रक्षेत्र भ्रमण करा कर कीट–रोग के लक्षण, पहचान एवं नियंत्रण आदि से रूबरू कराना।
2. कृषि निवेश के समुचित उपयोग के बारे में क्षमता विकास कराना।
3. विभिन्न कृषि निवेशों संबंधी एक्ट/कानून के बारे में जानकारी/जागरूक करना।
4. गाँव अथवा कृषक स्तर पर इन वितरकों को कृषि के बारे में इतना दक्ष कर देना कि ये पैरा एक्सटेंशन प्रोफेसनल के रूप में कृषकों के बीच कार्य कर सकें।

क्रियान्वयन–

डेसी कोर्स की महत्ता एवं इसके बढ़ते लोकप्रियता को देखते हुए कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार ने यह निर्णय लिया है सभी राज्यों के कृषि निवेश वितरक यह कोर्स करें। इस कोर्स का शुल्क ₹ 20,000.00 है, जिसका आधा यथा ₹ 10,000.00/डीलर जबकि शेष आधा ₹10,000.00 मंत्रालय वहन करेगा। जिस क्षेत्र में कृषि आधारित फर्म/कम्पनी कार्यरत है वहॉ शुल्क ₹ 10,000.00/डीलर फर्म, ₹ 5,000.00 मंत्रालय एवं शेष ₹ 5,000.00 डीलर द्वारा वहन किया जायेगा। यद्यपि अनुदान का लाभ सिर्फ उन वितरको/डीलर को मिलेगा जिनके पास लाइसेंस होगा। अन्य को पूरा शुल्क ₹ 20,000.00 वहन करना होगा। कोर्स करने हेतु आवेदक को 10वीं पास होना चाहिए। प्रत्येक बैच में 40 डीलर पंजीकृत होते हैं। कोर्स में 40 दिन कक्षा एवं 08 दिन प्रायोगिक भ्रमण (कुल 48 दिन) कार्यक्रम निर्धारित रहता है। यह कोर्स संस्था एवं वितरकों के आपसी सहमति के आधार पर सप्ताह में किसी एक दिन जैसे रविवार अथवा बाजार बन्दी के दिन चलाया जाता है। कोर्स की क्रियान्वयन

संस्था नोडल प्रशिक्षण संस्थान जैसे कृषि संस्थान, कालेज, कृषि विज्ञान केन्द्र, आत्मा, स्वयं सेवी संस्था हो सकती है, जिनका चयन राज्य स्तरीय गठित समिति द्वारा किया जाता है। इन संस्थाओं में कृषि के विशेषज्ञ होने चाहिए जो कृषि के विभिन्न विषयों पर डीलर्स को प्रशिक्षित कर सकें। ऐसे वितरक/डीलर जो यह कोर्स करना चाहते हों, वे कृषि विभाग, समेटी, मैनेज हैदराबाद इत्यादि से सम्पर्क कर विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

कोर्स से आने वाला सम्भावित सकरात्मक बदलाव–

यह कार्यक्रम कृषि निवेश वितरक/डीलर हेतु एक वरदान की तरह है जो न सिर्फ उनके कृषि के कार्य कुशलता में वृद्धि करेगा बल्कि उनके स्वंय के खेती में लाभ प्रद होगा। देश में ज्यादातर डीलर जो कृषक समुदाय से होते हैं, अपने परिवार, गाँव व आस–पास के लोंगों को कृषि संबंधी समुचित जानकारी देकर पैदावार एवं आर्थिक बढ़ोत्तरी में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकेंगें। इस कार्यक्रम से डीलरों का रेखीय विभाग के अधिकारी एवं कृषि वैज्ञानिकों से सम्पर्क बढ़ेगा जो परोक्ष एवं अपरोक्ष रूप में अनेक कृषि के विभिन्न तकनीकी ज्ञान, कृषि निवेश विक्रय संबंधी कानून/नियम आदि बढ़ाने में मददगार होगा। अन्ततः डीलर, विभागीय अधिकारी और वैज्ञानिकों का यह गठजोड़ कृषकों की समृद्धि बढ़ाने, आय दोगुनी करने एवं भविश्य उज्जवल करने में मददगार होगा।

समेटी–उत्तराखण्ड द्वारा संचालित डिप्लोमा कोर्स–डेसी–

संस्थान द्वारा डेसी के दो बैच क्रमशः प्रसार शिक्षा निदेशालय, पंतनगर एवं कृषि विज्ञान केन्द्र, काशीपुर द्वारा संचालित किया जा चुका है। दोनों बैच से ऊधम सिंह नगर के कुल 69 बीज, कीटनाशी एवं उर्वरक विक्रेताओं को प्रशिक्षित किया गया है। प्रसार शिक्षा निदेशालय, पंतनगर द्वारा पुनः एक नवीन बैच चलाया जा रहा है, जिसका उद्घाटन जून 22, 2021 को हुआ था।

◆◆◆

मौसम पूर्वानुमान तकनीकों का कृषि में उपयोग

डा० जया धामी, तकनीकी अधिकारी एवं **डा० आर०के० सिंह**, प्राध्यापक
कृषि मौसम विज्ञान
गो.ब. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल : jaya36905@gmail.com

भारत मौसम विज्ञान विभाग (आईएमडी), भारत सरकार द्वारा जिला व विकास खण्ड स्तर पर कृषि–मौसम परामर्श सेवाओं का संचालन किया जा रहा है, जो कि मौसम एवं जलवायु विविधता के तालमेल द्वारा बेहतर कृषि प्रबन्धन की दिशा में एक सराहनीय कदम है। मौसम पूर्वानुमान द्वारा प्रतिकूल मौसम के दुष्प्रभाव को कम करके कृषि उत्पादन को अप्रभावित अथवा न्यूनतम प्रभावित बनाये रखने का प्रयास किया जाता है। इन सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए किसानो की आय दोगुनी करने हेतु भारत मौसम विज्ञान विभाग ने ग्रामीण कृषि मौसम परियोजना शुरू की है। परियोजना के अंतर्गत देश के सभी कृषि जलवायु क्षेत्रों में 130 कृषि मौसम प्रक्षेत्र इकाईयों (ए.एम.एफ.यू.) का एक ईकाई स्थापित कर तकनीकी अधिकारी नियुक्त किये गये है। इसके साथ ही मौसम विज्ञान विभाग और भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने संयुक्त रूप से देश के प्रत्येक जिले में स्थित कृषि विज्ञान केन्द्रों में जिला कृषि मौसम इकाई (डीएएमयू/दामू) स्थापित कर कृषि मौसम विशेषज्ञों की नियुक्ति की जा रही है। इन इकाइयों में कार्यरत कृषि मौसम अधिकारी जिला, विकास खण्ड व ग्राम स्तर पर किसानो को, मौसम पूर्वानुमान व मौसम आधारित कृषि परामर्श पत्रिका व सेवाओं के महत्व को समझाने, मौसम अनुरूप कृषि कार्य करने के साथ इसका प्रसार करने व इस सेवा से अधिकाधिक किसानों को जोड़ने के लिए प्रयासरत है।

उत्तराखण्ड में स्थित कृषि मौसम प्रक्षेत्र इकाईयां

- गो.ब. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर
- भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, रूड़की
- उत्तराखण्ड उद्यान एवं वानिकी महाविद्यालय, रानीचौरी

ग्रामीण कृषि मौसम परियोजना के तहत, मौसम पूर्वानुमान के आधार पर मौसम तथा कृषि से सम्बन्धित विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों से मिलकर बने बोर्ड के परामर्श से प्रत्येक मंगलवार व शुक्रवार को जिला एवं विकास खण्ड स्तरीय कृषि मौसम परामर्श पत्रिका को, ए.एम.एफ.यू. व दामू इकाईयों द्वारा तैयार किया जाता है। बुलेटिन तैयार होने के तुरन्त बाद उसे विभिन्न संचार माध्यमों जैसे एस.एम.एस., व्हाटसप ग्रुप, वेबसाईट, टीवी, रेडियो, अखबार, व फोन पर सम्पर्क द्वारा किसानों व अन्य हितधारको तक पहुँचाया जाता है। भारत मौसम विज्ञान विभाग ने अन्य संस्थाओं के साथ मिलकर मोबाईल आधरित एप्लीकेशन/ऐप्स जैसे 'मेघदूत' व 'दामिनी' एप भी विकसित किये है ताकि मौसम की सटीक जानकारी विकास खण्ड व ग्राम स्तर तक के किसानों को पहुच सके और प्रतिकूल मौसम के कारण फसलों में होने वाले नुकसान को कम किया जा सके।

मेघदूत मोबाईल एप : कृषि मौसम सलाह–

भारत मौसम विज्ञान विभाग और भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने संयुक्त रुप से उच्च मौसम पूर्वानुमान आधारित फसल और पशुधन विशिष्ट सलाहकार बुलेटिन किसानों तक पहुचाने के लिए मेघदूत मोबाईल ऐप

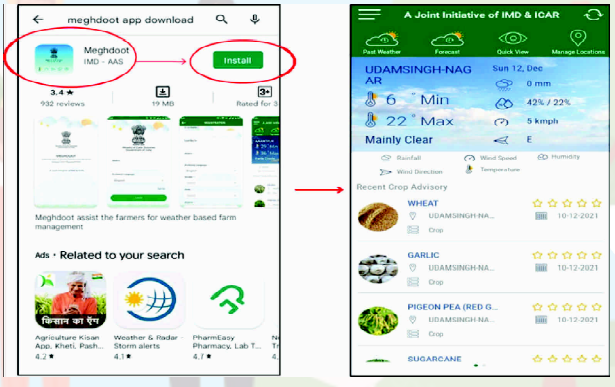

विकसित किया है। यह बुलेटिन क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध हैं। इस ऐप की सहायता से, किसान भाई अगले पांच दिनों में वर्षा, तापमान, आर्द्रता, हवा की गति और दिशा तथा बादल आच्छादन मौसम पूर्वानुमान तथा चक्रवात, भारी वर्षा, गरज, ओलावृष्टि जैसी चरम घटनाओं की चेतावनी आसानी से अपने मोबाईल पर घर बैठे प्राप्त कर सकते है। यह मौसम तत्व कृषि और पशुधन प्रबन्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। यह ऐप हर मंगलवार और शुक्रवार को कृषि मौसम प्रक्षेत्र इकाईयों (ए.एम.एफ.यू.) और जिला कृषि मौसम इकाईयों (डी.ए.एम.यू./दामू) द्वारा तैयार, क्षेत्र के पिछले सप्ताह के मौसम तथा आगामी पांच दिनों के मौसम पूर्वानुमान आधारित कृषि (फसल, बागवानी व पशुपालन) परामर्श भी देता है।

किसान भाई पिछले सप्ताह के मौसम, मौसम पूर्वानुमान और मौसम आधारित कृषि सलाह प्राप्त करने के लिए मेघदूत तथा आकाशीय बिजली के पूर्वानुमान हेतु दामिनी ऐप डाउनलोड कर सकते है। मेघदूत व दामिनी ऐप को गूगल प्ले स्टोर (एंड्रॉयड उपयोगकर्ताओं) और ऐप सेंटर (आई.ओ.एस. उपयोगकर्ताओं) से डाउनलोड किया जा सकता है।

दामिनी एप : आकाशीय बिजली का पुर्वानुमान–

आकाशीय बिजली से लोगो को सचेत करने के लिए भारतीय उष्णदेशीय मौसम विज्ञान संस्थान, पुणे ने यह ऐप विकसित किया है, जो आकाशीय बिजली/बज्रपात की 30 मिनट पूर्व सटीक जानकारी देता है। संस्थान ने देश के विभिन्न हिस्सों में लगभग 48 सेंसर के साथ एक लाइटनिंग लोकेशन नेटवर्क स्थापित किया है। यह नेटवर्क आकाशीय बिजली का पूर्वानुमान देता है। इस नेटवर्क के आधार पर ही दामिनी एप विकसित किया गया है, जो 40 किलोमीटर की सीमा में आकाशीय बिजली गिरने के संम्भावित स्थान की जानकारी देता है। यह नेटवर्क बिजली की गड़गड़ाहट के साथ बज्रपात की गति भी बताता है। एप में नीचे बिजली गिरने पर बचाव व सुरक्षा के उपाय के साथ प्राथमिक उपचार की भी जानकारी दी गई है। यह ऐप निःशुल्क है व इसे प्ले स्टोर से अपने मोबाइल मे आसानी से डाउनलोड किया जा सकता है। डाउनलोड करने के बाद किसानो को इसमें पंजीकरण करना होगा, जिसमें उन्हे अपना नाम

क्लाइमेट स्मार्ट एग्रीकल्चर (जलवायु अनुरूप कृषि)

- पर्यावरण पर बिना किसी नकारात्मक प्रभाव के निरन्तर आधार पर कृषि उत्पादकता में वृद्धि तथा फसलों, पशुधन व मत्स्य पालन से आय को बढ़ाना।
- जलवायु परिवर्तन के अनुकूल कृषि पद्धति अपनाकर खाद्य सुरक्षा बनाये रखना।
- ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन को कम करना, पेड़ो की कटाई को कम करना और स्वस्थ वातावरण के लिए मिट्टी व पेड़ो का प्रबन्ध करना।

व लोकेशन की जानकारी उपलब्ध करानी होगी। यह जानकारी डालते ही यह ऐप लोकेशन के अनुसार उस गांव से 40 किलोमीटर की सीमा में आकाशीय बिजली गिरने की चेतावनी ऑडियो संदेश व एस.एम.एस. के माध्यम से देता है।

दामिनी ऐप से चेतावनी मिलने पर बिजली से बचने हेतु खुले खेतो, पेड़ो के नीचे, पहाड़ी इलाको, चट्टानों का उपयोग न करें। धातुओं के बर्तन न धोएं और स्नान इत्यादि करने से बचें और बारिश या जमीन पर पानी से बचें। किसी स्थायी घर के अंदर जाए और अगर स्थायी घर में जाना संम्भव न हो सके तो खुली जगह पर ही घुटनों के बल कान बंद करके बैठ जाएं। छाते का इस्तमाल न करें। हाइटेंशन तारो व टावर से बचें।

ग्रामीण कृषि मौसम परियोजना के अंतर्गत देश में जिले, ग्राम व विकासखंड स्तर पर प्रक्षेत्र परिभ्रमण व मौसम एवं जलवायु विषयों पर कृषक जागरूकता कार्यक्रमों का आयोजन भी समय–समय पर किया जाता है जिसके माध्यम से किसानों को मौसम की विभिन्न अवस्थाओं, मौसम के कृषि पर होने वाले सकारात्मक व नकारात्मक प्रभावों व उनसे बचाव व ''क्लाइमेट स्मार्ट एग्रीकल्चर'' के अनुरूप खेती करने से होने वाले लाभदायक परिणमों के बारे में जागरूक किया जा रहा है। इस कार्यक्रम के द्वारा किसानों का पंजीकरण कर उन्हे घर बैठे ही मौसम की जानकारी प्रदान की जाती है। जिसके माध्यम से किसान असमय होने वाले मौसम परिवर्तन जैसे वर्षा, ओलावृष्टि, बर्फबारी, कोहरे, तेज हवाओं व पाले से होने वाले नुकसान से अपनी फसलों को बचाकर, खेती में आने वाली लागत को कम करके तथा जलवायु अनुरूप कृषि से फसल, पशुधन, मृदा व जल प्रबन्धन कर किसानो की आय को दोगुनी करने के भारत सरकार के लक्ष्य को प्राप्त कर सकते है।

◆◆◆

शुष्क भूमि क्षेत्रों के लिये प्राकृतिक संसाधन प्रबन्धन और फसल नियोजन

डा० वी०सी० ध्यानी
सह प्राध्यापक (सस्य विज्ञान)
गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पन्तनगर
ई–मेलः dhyanivipin@gamil.com

शुष्क भूमि क्षेत्र कृषि के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि ये लगभग 2 बिलियन लोगों को आजीविका प्रदान करते हैं और लगभग 40 प्रतिशत भूमि क्षेत्र में हैं। भारत में कुल 141.40 मिलियन हेक्टेयर शुद्ध बुवाई क्षेत्र का 52 प्रतिशत अर्थात 73.20 मिलियन हेक्टेयर वर्षा पर निर्भर है। देश के बारानी क्षेत्रों में 40 प्रतिशत मानव आबादी और दो तिहाई पशुधन हैं। शुष्क भूमि खेती और बारानी खेती का समानार्थक रूप से उपयोग किया जाता है, क्योंकि दोनों वर्षा पर निर्भर हैं। शुष्क भूमि की खेती दुनिया के शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में की जाती है, जिसमें वार्षिक वर्षा संभावित वाष्पीकरण का लगभग 20–35 प्रतिशत है। इनमें वार्षिक औसत वर्षा 375–1125 मिमी होती है। मध्यम से गंभीर नमी की कमी वर्ष के एक बड़े हिस्से के दौरान हो सकती है, उपज क्षमता भी सीमित हो जाती है और खेती में पूरे वर्ष जल संरक्षण की आवश्यकता होती है। ये क्षेत्र मरुस्थल नहीं होते है बल्कि कृषि के लिए कम वर्षा पर निर्भर होते हैं। दूसरी ओर, वर्षा आधारित खेती में कुल औसत वार्षिक वर्षा शुष्क भूमि की तुलना में अधिक (>1125 मि मी) होती है और वर्षा भिन्नता निर्धारित करती है कि एक विशेष क्षेत्र सूखे या जलभराव से प्रभावित होगा अथवा नहीं। अतः वर्षा आधारित क्षेत्रों में जल संचयन, पूरक सिंचाई एवं जल निकासी की व्यवस्था आवश्यक होती है। खाद्य और कृशि संगठन (एफएओ) ने शुष्क भूमि को उन क्षेत्रों के रूप में परिभाशित किया है, जिन्हें वार्षिक फसलों की अवधि की लंबाई के आधार पर शुष्क, अर्ध–शुष्क या शुष्क उप आर्द्र के रूप में वर्गीकृत किया गया है। शुष्क क्षेत्रों में 1–59 दिन, अर्ध–शुष्क में 60–119 दिन और शुष्क उप–आर्द्र क्षेत्रों में 120–179 दिन खेती के प्राप्त होते हैं। भारत में भौगोलिक रूप से शुष्क भूमि में राजस्थान के उत्तर पष्चिमी रेगिस्तानी क्षेत्र, मध्य भारत का पठारी क्षेत्र, गंगा यमुना बेसिन के जलोढ़ मैदान, गुजरात, महाराश्ट्र और मध्य प्रदेश की मध्य उच्च भूमि, महाराष्ट्र में दक्कन के वर्षा छाया क्षेत्र, आंध्र प्रदेश के दक्कन पठार और तमिलनाडु हाइलैंड्स शामिल हैं। ज्वार, बाजरा, मक्का दलहन और तिलहन और कपास शुष्क भूमि क्षेत्रों की महत्वपूर्ण फसलें हैं। इंटरनेशनल क्रॉप्स रिसर्च इंस्टीट्यूट फॉर द सेमी–एरिड ट्रॉपिक्स (इक्रीसेट) के एक शोध से पता चलता है कि छोटे किसान केवल 1.0 टन/है. फसल उत्पादकता लेते हैं, जबकि इसके अनुसंधान प्रक्षेत्र पर 5–7 टन/है. तक उपज ली जाती है। इसके पीछे विभिन्न सामाजिक–आर्थिक, पर्यावरणीय और संस्थागत कारण हैं। सामाजिक–आर्थिक मुद्दों में व्यापक गरीबी, छोटे आकार के जोत, रोजगार के कम अवसर और इसकी तलाष में पलायन, खराब स्वास्थ्य और शिक्षा, पूंजी की कमी, सूचना की कमी, इनपुट, क्रेडिट और बाजारों तक पहुंचने में समस्याएं, अधिकारों की अनभिज्ञता, कम सशक्तिकरण, असुरक्षित भूमि कार्यकाल और सामान्य संपत्ति का अप्रभावी सामूहिक प्रबंधन। अत्यधिक वर्षा परिवर्तनशीलता, मिट्टी का कटाव, जंगल और जैव विविधता का नुकसान, भूजल की कमी और पानी की कमी कुछ पर्यावरणीय मुद्दे हैं। इन सभी कारणों के दृष्टिगत प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग बहुत महत्वपूर्ण है और इस प्रकार उनका सर्वोत्तम उपयोग करने के लिए उचित योजना आवश्यक है।

कृषि जो देश में 80 प्रतिशत ताजे जल संसाधनों का उपयोग करती है, शुष्क भूमि के पास विश्व के जल संसाधन का केवल 8 प्रतिशत है। शुष्क क्षेत्रों में वर्षा कम नही होती है, लेकिन इन क्षेत्रों में तापमान और वाष्पीकरण बहुत अधिक और लंबे समय तक होने के कारण शुष्क मौसम होता है। पानी का यह नुकसान शुष्कता को निर्धारित करता है। इस प्रकार, शुष्क भूमि क्षेत्रों की विकास क्षमता का दोहन करने के लिए पूरे वर्ष

जल उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए जल संसाधनों का सतत प्रबंधन करना महत्वपूर्ण है।

प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन, प्राकृतिक संसाधनों जैसे भूमि, पानी, मिट्टी, पौधों और जानवरों का प्रबंधन है, इस पर विशेष ध्यान दिया जाता है कि प्रबंधन वर्तमान, और भविश्य की पीढ़ियों के लिए जीवन की गुणवत्ता को कैसे प्रभावित करता है। साठ के दशक के मध्य में इनपुट रिस्पॉन्सिव जीनोटाइप, उर्वरक, पानी और अन्य इनपुट की उपलब्धता सहित कई कारकों ने सिंचित क्षेत्रों में हरित क्रांति को जन्म दिया है। कई सरकारी नीतियों ने उन क्षेत्रों का पक्ष लिया लेकिन वही नीतियां शुष्क भूमि क्षेत्रों के पक्ष में काम नहीं कर सकीं और इस तरह वे क्षेत्र पिछड़ गए। शुष्क भूमि क्षेत्र के विकास के लिए हमें विभिन्न नीतियों और रणनीतियों की आवश्यकता होती है। इस क्रम में हमें अपना ध्यान निम्न विषयों में केंद्रित करने की आवश्यकता है :

1. ग्रामीण क्षेत्रों के बुनियादी ढांचे में निवेश मुख्य रूप से पूरक सिंचाई के लिए जल संग्रहण और प्रबंधन में निवेश।
2. सार्वजनिक संस्थानों को एक दूसरे के साथ मिलकर तथा निजी क्षेत्र एवं गैर सरकारी संगठनों के साथ काम करने की आवश्यकता।
3. प्राकृतिक संसाधनों तक गरीबों की बेहतर पहुंच तथा उनका सतत् तथा दक्षता से उपयोग।
4. अधिक प्रभावी और न्याय संगत सार्वजनिक नीतियां।
5. ग्रामीण क्षेत्रों के युवाओं को क्षमता निर्माण के लिए प्रशिक्षण तथा ग्रामीण शुष्क क्षेत्रों के अनुकूल नवाचार।
6. जोखिम प्रबंधन की अधिक प्रभावी रणनीतियाँ।
7. छोटे पैमाने पर एकीकृत जल संसाधन नियोजन।
8. समुदायों द्वारा अधिक प्रभावी सामूहिक कार्रवाई।

प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन के लिए समेकित योजना की आवश्यकता होती है जैसे कि अंतःफसल, पूर्वानुमान, भूमि उपयोग योजना, का उपयोग, उद्यमों के संयोजन, खरपतवार प्रबंधन, पोषक तत्व प्रबंधन और जल प्रबंधन। संतोशजनक फसल उपज तभी प्राप्त की जा सकती है जब फसल को पर्याप्त पानी मिले। यह वर्षा के माध्यम से या सिंचाई के माध्यम से संभव हो सकता है। सूखा प्रवण क्षेत्रों में यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि फसल को प्रत्येक महत्वपूर्ण चरण में पानी मिल सके। शुष्क भूमि में सफल प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन, व्यापक सिद्धांतों को साइट विशिष्ट प्रबंधन पैकेजों में करके जैसे कि स्थानीय कृशि–पारिस्थितिक स्थितियों, किसानों की आकांक्षाओं और सरकारी नीति के समर्थन से ही संभव है। शुष्क भूमि क्षेत्रों में अपनाई जाने वाली प्रबंधन पद्धतियां निम्नानुसार हैं।

1. भूमि नियोजन प्रणाली
2. मृदा प्रबंधन तकनीक
3. फसल प्रबंधन तकनीक
4. एकीकृत वाटरशेड प्रबंधन

1. भूमि नियोजन प्रणाली–

भूमि उपयोग योजनाः शुष्क भूमि क्षेत्रों में सतत विकास के उद्देश्यों के लिए भूमि संसाधनों को आदर्ष रूप से आवंटित करना बहुत महत्वपूर्ण है।

क) कुछ प्रक्षेत्रों में केवल सीमित खेती ही हो सकती हैं क्योंकि वे सूखे की संभावना से ग्रस्त रहते है। इनका उपयोग सामान्य खाद्यान्न फसलों के बजाय वैकल्पिक उपयोग के लिए किया जाना चाहिये।

ख) भूमि उपयोग प्रणालियाँ शुष्क भूमि उत्पादन प्रणालियों को स्थिरता प्रदान करती हैं और गैर–मौसम के दौरान भूमि और वर्षा का भी अच्छा उपयोग करती हैं।

ग) शुष्क भूमि अनुसंधान संस्थान हैदराबाद के अनुसार, कम मृदा क्षरण के लिये कवर फसल, फसल अवशेष प्रबंधन, एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन, संरक्षण कृषि, वर्षा जल प्रबंधन, कुशल फसल और फसल प्रणालीय वैकल्पिक भूमि उपयोग प्रणाली, एकीकृत कृषि प्रणाली, कुशल कृषि मशीनीकरण और कृषि–सलाह ऐसी रणनीतियाँ हैं जिन्हें शुष्क भूमि क्षेत्रों में अपनाया जा सकता है।

2. मृदा प्रबंधन तकनीक–

क) गैर–मौसम के दौरान या बारिश से पहले के मौसम में जुताई कठोर मिट्टी को तोड़कर पारगम्य बनाकर बारिश के पानी के संरक्षण में मदद मिलती है। यह पानी को मिट्टी की गहरी परतों में रिसने देता है और मिट्टी को अधिक समय तक नम रखता है। परिणाम यह होता है कि फसल की

बुवाई के दौरान मिट्टी में अधिक नमी रहती है।

ख) जुताई से खरपतवारों को नियंत्रित किया जा सकता है, साथ ही मिट्टी में नमी के ह्रास को रोका जा सकता है।

ग) ऑफ–सीजन जुताई, कीटों के अंडे, कोकून और लार्वा को भी नष्ट कर देती है। जो अन्यथा पहले से ही कमजोर फसल पौधों को और प्रभावित करते हैं।

3. फसल प्रबंधन तकनीक–

i) फसलों का चयन–

क) सूखा प्रवण फसलें जैसे मक्का, कपास आदि को उगाने से बचें।

ख) ज्वार, बाजरा, रागी आदि जैसी सूखा प्रतिरोधी फसलें उगानी चाहिए।

ग) अरंडी, सूरजमुखी, नाइजर, तिल, कुसुम आदि तिलहन फसलों की खेती करें।

ii) अंतःफसल पद्धतियां अपनाना–

क) अंतःफसल से तात्पर्य एक ही भूमि क्षेत्र में निश्चित अनुपात और पैटर्न की पंक्तियों में एक से अधिक फसल उगाने से है।

ख) अंतःफसल सिस्टम सूखा प्रवण क्षेत्रों में कुल फसल की विफलता से सुरक्षा प्रदान करता है। सूखे के तहत उपयुक्त अंतःफसल प्रणालियों के कुछ उदाहरण हैं:

ज्वार और अरहर, बाजरा और अरहर, बाजरा और लोबिया, सूरजमुखी और कुल्थी (गहत)।

iii) फसल घनत्व–

क) पौधों की संख्या और पंक्ति की दूरी को इश्टतम बनाए रखना महत्वपूर्ण है। आमतौर पर सूखे की आषंका वाले क्षेत्रों में पौधों की व्यापक दूरी को प्राथमिकता दी जाती है।

ख) सावधानी यह भी रखनी चाहिए कि पौधों की दूरी बहुत अधिक न हो। अन्यथा यह उपलब्ध मिट्टी की नमी का क्षमता के अनुसार उपयोग नहीं करेगा।

ग) याद रखें कि अधिक पौधों का मतलब अधिक उपज नहीं है। शुष्क भूमि में बेहतर उपज के लिए अधिक स्वस्थ पौधों की आवश्यकता होती है।

iv) खरपतवार प्रबंधन–

क) खरपतवार नमी और पोषक तत्वों के लिए फसलों के साथ प्रतिस्पर्धा करते हैं।

ख) खरपतवार भी कुछ कीटों और बीमारियों की मेजबानी करते हैं। इसलिए, सूखे क्षेत्रों में फसलों के प्रारंभिक चरण में प्रभावी खरपतवार नियंत्रण आवश्यक है।

v) मल्चिंग (पलवार)–

सतही मल्चिंग या तो समय पर इंटरकल्चर करके या मिट्टी की सतह को पौधों के अवशेषों से ढककर फसल को लाभ पहुंचाया जाता है। यह–

क) मिट्टी से पानी के वाष्पीकरण को कम करता है।

ख) खेतों से पानी के बहाव को कम करता है।

ग) खरपतवारों को नियंत्रित करने में मदद करता है।

घ) मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ बढ़ाता है और मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार करता है।

vi) एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन– एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन मिट्टी की भौतिक, रासायनिक और जैविक आवश्यकताओं का ख्याल रखता है। यह जैविक और अकार्बनिक उर्वरकों के उपयोग से मिट्टी की पोषक तत्वों की आवश्यकताओं को पूरा करता है।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन के लाभ–

क) मिट्टी की जल धारण क्षमता को बढ़ाता है।

ख) मिट्टी में पोषक तत्वों की मात्रा को बढ़ाता है।

ग) मिट्टी को रोग पैदा करने वाले जीवों से मुक्त करता है।

घ) मृदा स्वास्थ्य में सुधार करना है।

vii) जल प्रबंधन– शुष्क भूमि क्षेत्रों में जल प्रबंधन महत्वपूर्ण है। इसमें वर्षा जल प्रबंधन और सिंचाई प्रबंधन दोनों शामिल हैं। शुष्क भूमि क्षेत्रों में वर्षा जल संचयन बहुत महत्वपूर्ण है। शब्द 'जल संरक्षण' आम तौर पर मानव, पशु या फसल के उपयोग के लिए पानी उपलब्ध कराने के लिए एक विशेष क्षेत्र (एक जलग्रहण क्षेत्र) से वर्षा से उत्पन्न अपवाह के संग्रह को संदर्भित करता है। इस प्रकार एकत्र

किए गए पानी को या तो सिंचाई के लिए तुरंत उपयोग किया जा सकता है, या बाद के उपयोग के लिए तालाबों या जलाषयों में संग्रहित किया जा सकता है। इस संग्रहित जल का उपयोग ड्रिप और स्प्रिंकलर जैसी कुशल जल वितरण प्रणाली के माध्यम से किया जाना चाहिए।

4. एकीकृत वाटरशेड प्रबंधन– शुष्क भूमि क्षेत्रों में भूमि और जल संसाधनों से सक्षम प्रबंधन करने का एक प्रभावी तरीका है। एकीकृत वाटरशेड प्रबंधन का उद्देश्य वर्षा जल के कुशल संरक्षण से है। शुष्क भूमि वाले किसानों के पास संसाधन कम होते है, आधुनिक कृषि ज्ञान कम होता है। आय के अवसर कम या नहीं हैं, इस प्रकार लचीलापन कम है। एकीकृत वाटरशेड प्रबंधन जोखिम को कम करने के लिए कई दृष्टिकोणों को जोड़ती है जैसे कि :

1. मिट्टी और पानी का संरक्षण, और जल स्तर का बढ़ना, मिट्टी के कटाव को कम करना, और जंगलों का विस्तार और गुणवत्ता में सुधार।
2. कृषि उत्पादकता में वृद्धि और खाद्य आत्मनिर्भरता।
3. विविध अर्थव्यवस्था जिसमें बड़ी आय के श्रोत में वृद्धि के साथ–साथ व्यापक अर्थव्यवस्था और बाजारों के समर्थन और कनेक्षन को बढ़ाना, और सरकारी योजनाओं की बेहतर पहुंच से संभव है।
4. अधिक सामाजिक सामंजस्य और सहयोग के साथ एक अधिक जागरूक और बेहतर शिक्षित समुदाय।
5. सामुदायिक आत्मनिर्भरता, मुखरता और बेहतर सामुदायिक नेतृत्व।
6. गरीबी में कमी और समुदाय में अधिक समानता।

निष्कर्ष रूप में, यह कहा जा सकता है कि एक प्राकृतिक संसाधन आधार हमें अनुसंधान एवं विकास, वांछित कृषि विकास, वाटरशेड विकास, जल संचयन और कुशल सिंचाई प्रणाली पर बड़े निवेश की आवश्यकता है ताकि शुष्क भूमि वाले किसानों को भी वह मिल सके जो उन्हें नहीं मिला। शुष्क भूमि वाले किसानों की समृद्धि से क्षेत्र, राज्य और देश की समृद्धि भी होगी।

◆◆◆

मृदा परीक्षण-एक परिचय

डा० योगेन्द्र पाल
विषय वस्तु विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान)
गो0ब0 पंत कृषि विश्वविद्यालय–कृषि विज्ञान केन्द्र, हरिद्वार
ई–मेल : ypsaini64@gmail.com

मृदा परीक्षण वह प्रक्रिया है जिससे मृदा के लिए आवश्यक पोषक तत्वो की पूर्ति क्षमता का निर्धारण किया जाता है। इस विधि से पोषक तत्वो की पूर्ति क्षमता फसल बोने से पूर्व ही ज्ञात हो जाती है, जिससे आवश्यक उर्वरको की समयानुसार पूर्ति की जा सके।

मृदा परीक्षण के उद्देश्य–

1. मृदा में पोषक तत्वो का सही निर्धारण करना।
2. विभिन्न फसलो की दृष्टि से पोषक तत्वो की कमी का पता करके किसान को स्पष्ट सूचना देना।
3. मृदा में पोषक तत्वो की स्थिति ज्ञात करना और उसके आधार पर फसलो के अनुसार उर्वरकों को डालने की संस्तुति करना।
4. मृदा की विशिष्ट दशाओ का निर्धारण करना जिससे मृदा को कृषि विधियो और मृदा सुधारक पदार्थो की सहायता से सुझाया जा सके।
5. मृदा परीक्षण के परिणामो के आधार पर आर्थिक दृष्टि से उपयुक्त उर्वरको की संस्तुति करना।

नमूना एकत्र करना–

मृदा परीक्षण के लिए नमूना ऐसा होना चाहिए जो एक अमुक क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करें, जिससे वैज्ञानिक अनुशंसायें प्राप्त की जा सके। मृदा नमूने एकत्र करने के लिए भूमि की ढ़ाल, रंग, पिछली बोयी गयी फसलों का ब्यौरा दिये गये उर्वरक आदि बातो को ध्यान में रखकर अलग–अलग भागो में बाट दिया जाता है। तत्पश्चात् प्रत्येक खण्ड से अलग–अलग नमूने लेने चाहिए। एक खण्ड से 8–10 जगहो से नमूने एकत्र करने चाहिए।

सामान्यतयाः फसल के लिए–6 इंच (0–15 सेमी.) एवं गन्ना के लिए –9 इंच (20–25 सेमी.) की गहराई से नमूना लेना चाहिए।

मृदा नमूना एकत्र करने की विधि–

प्रत्येक खण्ड से 8–10 स्थानो से अंग्रेजी के वी आकार का 9 इंच की गहराई तक के नमूने खुरपी द्वारा एकत्र कर लेना चाहिए। ततपश्चात् सभी नमूनो को एक स्थान पर एकत्र करके बारीक करें व आधा कि.ग्रा प्रतिनिधि नमूना लें। उसे छाया में सुखाकर कपड़े की साफ थैली में भर लेना चाहिए और पहचान के लिए मोटे कागज के लेबिल पर निम्न सूचना लिखकर उसी थैले के अन्दर रख देना चाहिए तथा दूसरा लेबिल थैली के ऊपर बाध देना चाहियें।

मृदा नमूना लेने हेतु आवश्यक सामग्री–

खुरपी, कुदाल, ट्रे, कागज या टिन के लेवल, सूचना प्रपत्र, कपड़े या पौलेथीन बैग, कलम एवं नोट बुक।

सूचना पत्र में दिया जाने वाला ब्यौरा–

1. किसान का नाम और पिता का नाम
2. पिछली फसल का ब्योरा
3. खेत का नम्बर/नाम
4. नमूने की गहराई
5. गाँव का नाम, विकास खण्ड एवं जनपद का नाम
6. नमूने एकत्र करने वाले का नाम
7. भविष्य में बोई जाने वाली फसल
8. सिंचाई का साधन
9. अन्य सूचना

मृदा नमूना लेते समय ध्यान देने योग्य बातें–

1. गीली मिटट्ी या सिंचाई किये गये गीले खेत से नमूना नही लेना चाहिए।
2. खेत में अधिक ऊँची व अधिक नीची जगह से

नमूना नही लेना चाहियें।

3. पुरानी मेढ़, कम्पोस्ट के गढ़ढे तथा खाद डाले गये स्थान से नमूना ना लें।
4. पेड़ तथा सड़क के किनारे व नाली के पास से मृदा नमूना नही लेना चाहियें।
5. मृदा की किस्म भिन्न हो या फसल में कोई रोग हो तो मृदा नमूना नही लेना चाहिये।
6. खड़ी फसल से नमूना ना लें।
7. खाद्य फसलें तथा बागवानी फसलें आदि के लिए नमूने अलग–अलग लेना चाहिए।
8. फसल की बुआई के लगभग एक माह पूर्व ही मृदा नमूने परीक्षण हेतु प्रयोगशाला में भिजवाने चाहिए,

जिससे बुआई के पूर्व समय पर परीक्षण परिणाम ज्ञात हो जायेगा और फसल के लिए आवश्यक उर्वरक का प्रबन्ध भी सुविधापूर्वक किया जा सकेगा।

◆◆◆

समन्वित पोषक प्रबंधन

डा० बी०डी० सिंह
प्राध्यापक (सस्य विज्ञान), प्रसार शिक्षा निदेशालय
गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल : bdsingh5@gmail.com

उर्वरक के समस्त श्रोत जैसे रासायनिक उर्वरक, जैविक उर्वरक, कम्पोस्ट, गोबर की खाद, जीवाणु खाद आदि का समन्वित व नियोजित प्रयोग कर फसल से निरन्तर उच्च उत्पादकता प्राप्त करने की प्रबन्धन तकनीक, जिससे मिट्टी व पर्यावरण पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े, समन्वित पोषक तत्व प्रबन्धन कहलाता है।

समन्वित पोषक प्रबंधन– आवश्यकता क्यों?

- रासायनिक उर्वरक एवं कृषि रक्षा रसायनों का अन्धाधुन्ध प्रयोग
- पर्यावरण प्रदूषण
- मृदा विषाक्तता में वृद्धि
- मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में असन्तुलन
- मृदा उर्वरा शक्ति में निरन्तर कमी
- मित्र कीटों की संख्या में कमी

समन्वित पोषक प्रबंधन किस लिए ?

- फसल की उत्पादन और उत्पादकता बढ़ाने के लिए
- उत्पादन में निरन्तरता बनाये रखने के लिए
- उत्पाद को लाभदायक बनाये रखने के लिए
- मिट्टी और पर्यावरण को सुरक्षित बनाये रखने के लिए
- रोग, मानव स्वास्थ्य व कुपोषण से बचाव के लिए

समन्वित पोषक प्रबंधन के प्रमुख घटक–

- रासायनिक उर्वरक
- गोबर की खाद
- कम्पोस्ट खाद
- हरी खाद
- जैव उर्वरक
- फसल अवशेष को खेत में पलटना
- दलहनी फसलों का अधिकाधिक प्रयोग
- गोबर की खाद

उपलब्धता के अनुसार 15–20 टन गोबर की खाद प्रयोग करनी चाहिए जिससे लगभग 75–100 किग्रा. नत्रजन, 35–40 किग्रा. फॉस्फोरस और 75–100 किग्रा. पोटॉष उपलब्ध हो जाती है। गोबर की खाद को अच्छी तरह से सड़ाने के लिए जैव नियंत्रक *ट्राइकोडर्मा* एवं *स्यूडोमोनास* का प्रयोग कर सकते हैं जो कि गोबर की खाद की गुणवत्ता को भी बढ़ाता है।

जैव उर्वरक–

लाभकारी जीवाणुओं का ऐसा जीवंत मिश्रण है, जिसका बीज, पौध, जड़ शोधन अथवा मिट्टी में प्रयोग करने पर पौध को अधिक मात्रा में पोषक तत्व मिलने लगते हैं। इससे मिट्टी की जीवाणु क्रियाशीलता एवं स्वास्थ्य में सुधार होता है। दूसरे शब्दों में भूमि की उर्वरता को टिकाऊ बनाये रखने एवं सतत् उत्पादन हेतु प्रकृति प्रदत्त जीवाणुओं को पहचान कर उनसें विभिन्न प्रकार के पर्यावरण हितेशी उर्वरक तैयार किये जाते है, जिन्हें जैव उर्वरक कहा जाता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जैव उर्वरक जीवित उर्वरक हैं,

जैविक उर्वरक के प्रकार

राइजोबियम	समस्त दलहन
एजोटोवेक्टर	धान्य, मोटे अनाज, तिलहन, सब्जियाँ, फल–फूल
एजोस्पाइरिलम	समस्त धान्य परन्तु मडुवा, बाजरा, मक्का में अधिक प्रभावी
एसीटोबैक्टर	गन्ना
फास्फेटिका	फास्फोरस की कार्यक्षमता वृद्धि
नील हरित शैवाल	रोपित धान
ऐजोला	रोपित धान

जिनमें सूक्ष्म जीव विद्यमान होते हैं।

राइजोबियम जैव उर्वरक–

यह जीवाणु केवल दलहनों हेतु कारगर एवं प्रत्येक दलहन की अलग स्ट्रेन होता है। यह जीवाणु सहजीवी प्रक्रिया द्वारा फसल को लाभ पहुंचाता है। साधारणतया 200 ग्राम के उपलब्ध पैकेट को 250–300 मि.ली. पानी में मिलाकर शोधन करते हैं। यह मात्रा 10 किग्रा. बीज हेतु पर्याप्त होता है। उपयुक्त जीवाणु के न मिलने पर जिस खेत में पिछली फसल बुवाई की गई हो, के मृदा की उपरी सतह को खुरच कर नये खेत में प्रयोग कर सकते हैं। इनके प्रयोग से 10–15 प्रतिशत उपज वृद्धि होती है।

एजोटोबैक्टर, एसीटोबैक्टर एवं एजोस्पाइरिलम जैव उर्वरक–

यह जैव उर्वरक एजोटोबैक्टर, एसीटोबैक्टर या एजोस्पाइरिलम जीवाणु का एक नम काले रंग का चूर्ण रूप उत्पाद है। इसके 1 ग्राम में लगभग 10 करोड़ जीवाणु होते है। एजोटोबैक्टर एवं एजोस्पाइरिलम जैव उर्वरक दलहनी जाति की फसलों को छोड़कर किसी भी अनाज वाली फसल, सब्जी, फल–फूल, घासों आदि में प्रयोग किया जा सकता है एवं एसीटोबैक्टर का उपयोग केवल गन्ने की फसल में किया जाता है। यह जैव उर्वरक नाइट्रोजन स्थरीकरण करते है और पौधों को नाइट्रोजन उपलब्ध कराते हैं।

एजोटोबैक्टर, एजोस्पाइरिलम/फास्फेटिक जैव उर्वरक की मात्रा एवं प्रयोग विधि–

पौध जड़ उपचार–

आवश्यकतानुसार जैव उर्वरक की मात्रा 4 से 5 लीटर पानी प्रति किग्रा. की दर से किसी चौड़े मुह वाले बर्तन/टब/बाल्टी में घोल बनायें। इस घोल में पौधे की जड़ों में 5 मिनट तक डुबो कर पौध उपचार करें तथा तत्पश्चात उपचारित पौधे की तुरन्त खेत में रोपाई कर दें।

जैव उर्वरक मात्रा 1.5 – 2 किग्रा./हेक्टेयर

फास्फोरस जैव उर्वरक–फास्फेटिका–

फास्फोरस जैव उर्वरक भी स्वतन्त्रजीवी जीवाणु का एक नम चूर्ण रूप उत्पाद है। इसके भी एक ग्राम में लगभग 10 करोड़ जीवाणु होते हैं। यह जैव उर्वरक प्रयोग करने से मृदा में उपस्थित अघुलनश्शील फास्फोरस घुलनश्शील अवस्था में जीवाणुओं द्वारा बदल दी जाती है। साधारणतया मिट्टी में फास्फोटिक जीवाणु मौजूद रहते है परन्तु यह आवश्ष्यक नहीं कि मिट्टी में उपस्थित जीवाणु सक्षम एवं असरदार हों। अतः कल्चर के माध्यम से किसानों को असरदार जीवाणु उपलब्ध कराये जाते हैं।

फास्फेटिका जीवाणु के लाभ–

- इन जीवाणु खाद के प्रयोग करने से 15–20 प्रतिशत पैदावार में बढ़ोत्तरी होती है।
- इस खाद के प्रयोग से करीब 20–30 प्रतिशत फास्फोरस की बचत होती है।
- जड़ों का विकास अधिक होता है, जिससे पौधा स्वस्थ बना रहता है।

एजोला–

धान के रोपाई के 7 दिन बाद जैविक उर्वरक एजोला का प्रयोग खड़े पानी में 2 टन/हेक्टर की दर से प्रयोग करने पर या मिट्टी के कार्बनिक पदार्थ एवं नत्रजन की क्षमता को बढ़ाता है। यदि एजोला का

प्रयोग लेव लगाते समय 6 टन प्रति हेक्टर की दर से किया जाय तो यह लगभग 25–30 किग्रा. नत्रजन/हेक्टर की दर धान की फसल को प्रदान करता है।

नील हरित शैवाल–

धान में नील हरित शैवाल जैव उर्वरक 10 से 12 किग्रा. प्रति हैक्टर रोपाई के एक सप्ताह बाद प्रयोग करें। इसका प्रयोग करते समय खेत में 3–4 से.मी. पानी अवश्य भरा रहना चाहिए। यदि धान में किसी खरपतवारनाशी का प्रयोग किया है तो नील हरित शैवाल का प्रयोग खरपतवारनाशी के प्रयोग के 3–4 दिन बाद ही प्रयोग करें।

जैविक उर्वरक प्रयोग विधि–

200 ग्राम कल्चर से 10 किग्रा. बीज उपचारित कर सकते हैं। पैकेट खोलें तथा 200 ग्राम कल्चर लगभग 500 मि0ली0 पानी में डालकर अच्छी तरह से घोल लें। बीजों को किसी साफ सतह पर इकठ्ठा कर जैव उर्वरक के घोल को बीजों पर धीरे–धीरे डालें और हाथ से तब तक उलटते पलटते जाये तब तक कि सभी बीजों पर जैव उर्वरक की समान परत न बन जाये। अब उपचारित बीजों की बुवाई करें। आवश्यकता हो तो किसी छायादार स्थान पर फैलाकर 10 मिनट तक सुखा लें और सायंकाल के समय कूडों में बो दें तथा मिट्टी से ढक दें।

कार्यक्षमता बढ़ाने हेतु घोल में थोड़ा से गुड़ या शक्कर मिला दें।

जैव उर्वरक प्रयोग में सावधानियॉ–

पैकेट पर लिखे निर्देश का पालन करें।

- राइजोबियम जीवाणु फसल विशिष्ट होता है अतः फसलवार ही प्रयोग करें।
- जैव उर्वरक के पैकेट को धूप व गर्मी से दूर किसी ठंडी जगह में रखें।
- बीज शोधन हेतु घोल बनाते समय जो पानी गरम करते है व ठंडा हो जाये तभी कल्चर डालें।
- शोधन के बाद बीज धूप में कभी न सुखायें।
- यदि रसायन से बीज शोधन करना हो तो पहले फफूँदीनाशक फिर कीटनाशक और अंत में जैव उर्वरक का प्रयोग करें।
- जैव उर्वरक का प्रयोग पैकेट पर लिखी अन्तिम तिथि से पहले ही कर लेना चाहिए।
- जहॉ तक संभव हो बीज शोधन के पश्चात 2–3 घंटे के अन्दर बीज की बुवाई कर दें।

वर्मी कम्पोस्ट–

- एक जैविक प्रक्रिया, जिसमें केचुएं कार्बनिक पदार्थों व गोबर को एक उचित वातावरण में रहकर खाद के रूप में परिवर्तित करते हैं। इस प्रकार की तैयार खाद वर्मी कम्पोस्ट कहलाती है।
- भूमि की अन्तः सतह पर कार्बनिक पदार्थों/अवशिष्टों को खाते है तथा उपयोगी खाद (कम्पोस्ट) में बदलते है।
- लाभदायक सूक्ष्म जीवाणुओं की संख्या को बढ़ावा देते हैं तथा मृदा को पोषक तत्वों से तष्त करते है।
- मृदा में वायु संचार को बढ़ाकर इसे भुरभुरा बनाते है।
- भूमि को प्राकृतिक जुताई प्रदान करते है।
- भूमि को पोला–नरम बनाते हैं तथा जल निकास में वृद्धि करते हैं।
- भूमि की जलधारण क्षमता को बढ़ाते है।
- एन्जाइम, हार्मोन्स, विटामिन्स तथा एन्टीबायोटिक्स को उत्पादित कर पौधों में रोगरोधी क्षमता को बढ़ाते है।

बायो डीकम्पोजर–

- एक फफूंद, जिसमें लिग्निन युक्त सेल्यूलोज को सड़ाने की प्रचुर क्षमता होती है।
- सभी वनपस्तियों की कोषिका का निर्माण सामान्यतः लिग्निन सेल्यूलोज या सूल्यूलोज से होता है, जिसे यह फफूंद सड़ाकर कार्बनिक खाद में बदल देता है।

प्रयोग विधि–

खेत में–

- ड्रम में 200 लीटर पानी व 2–3 किग्रा. गुड़ डालकर मिलायें।
- बायो डीकम्पोजर– 20 ग्राम को घोल में मिला दें।
- ड्रम को 2 दिन तक ढककर रखें एवं किसी डंडे से हिलाते रहें।

- चौथे–पांचवे दिन पानी की ऊपरी सतह पर सफेद फफूंद दिखने लगेगा, जो 2 दिन बाद नीले, हरे व भूरे रंग का हो जायेगा।
- अब घोल को अच्छी तरह मिलाकर ऐसे खेत में जहां धान, गेहूं आदि के अवशेष हो, सिंचाई पूर्व या सिंचाई के समय छिड़क दें।
- यह सारे अवशेष को 5–10 दिन में सड़ा देगा।
- फफूंद की सर्वाधिक सक्रियता अधिक तापमान और आर्द्रता की स्थिति में होती है।

गड्ढ़े में–

- उपरोक्त विधि से तैयार घोल को 15–30 दिन के अन्तराल पर गड्ढ़े में डालकर मिला दें। लगभग 2 माह बाद उच्च कोटि का कार्बनिक खाद तैयार हो जायेगा।
- समुद्र में उगाई गई लाल शैवाल (समुद्री घास) के रस से बना
- पूर्णतया जैविक उत्पाद जिसमें 28 प्रतिशत समुद्री घास का रस होता है।
- यह Plant Growth Regulator के रूप में कार्य करता है।
- जड़ विकास, अधिक फल व फूल, उत्पाद की गुणवत्ता बढ़ाने में सहायक
- फसल की कीट रोग प्रतिरोधी क्षमता बढ़ाने में सहायक
- 250 मि.ली. प्रति एकड़ 150 मि.ली. पानी (दो मि. ली. प्रति लीटर पानी) से छिड़काव
- कुल तीन छिड़काव प्रथम– सम्पूर्ण पौध जमाव के बाद अथवा कल्ले बनते समय, द्वितीय– फूल आने के पूर्व एवं तष्तीय– फूल आने के बाद करें।

समेकित पोषक तत्व प्रबन्धन से लाभ–

- अधिकतम पैदावार लेना और पोषक तत्वों को बरबादी से बचाना।
- उत्पाद में कम विषैलापन, क्योंकि किसी एक तत्व की अधिकता से विषैलापन पैदा होता है।
- मृदा स्वास्थ्य और उत्पादकता में निरन्तरता बनाये रखना।
- गुणात्मक उत्पादन तथा वातावरण के विपरीत परिस्थितियों से बचाव
- कीड़े मकोड़ों के हानिकारक प्रभाव को प्राकृतिक रूप से कम करना और लाभ लागत अनुपात में वृद्धि करना।

समेकित पोषक तत्व प्रबन्धन हेतु सुझाव–

- मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वरक और जैविक खादों का प्रयोग।
- दलहनी फसलों में राइजोबियम कल्चर का प्रयोग।
- धान और गेहूं के फसल चक्र में ढैंचा का हरी खाद के रूप में प्रयोग एवं फसल चक्र में बदलाव।
- उपलब्धतानुसार गोबर, घरेलु अवशेष, खरपतवार इत्यादि का प्रयोग कर कम्पोस्ट बनाया जाय।
- फसल अवशेष को मिट्टी में मिलाना एवं जैव उर्वरकों का नियोजित प्रयोग।
- रासायनिक उर्वरक और कार्बनिक खादों का संतुलित प्रयोग करें।

◆◆◆

फसल उत्पादन में जल प्रबन्धन का महत्व

डा० सुभाष चन्द्र
मुख्य वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान)
गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पन्तनगर
ई–मेल : schandra_1961@yahoo.com

पौधों में लगभग 80–90 प्रतिशत तक जल पाया जाता है, जो यह दर्शाता है कि फसल उत्पादन में जल का कितना महत्व है। फसल उत्पादन में जल कई कार्य सम्पादित करता है। इनमें से प्रमुख कार्य इस प्रकार है।

- वाष्पोत्सर्जन की क्रिया– इस क्रिया द्वारा पौधे का तापमान सामान्य बना रहता है।
- पौधे के अन्दर होने वाली विभिन्न क्रियाओं (जैसे प्रकाश संश्लेषन, श्वसन) में जल एक मुख्य घटक होता है।
- पोषक तत्वों का ग्रहण– जल मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों को घुलनशील बनाता है। जिससे पौधे इसे ग्रहण कर पाते है।
- पोषक तत्वों को पानी में घोल कर फसलों पर छिड़काव किया जाता है।
- पौधे के आस पास के वातावरण को गरम न होने देना। इससे फूल एवं फल बनने की प्रक्रिया में लाभ होता है।
- जल पौध स्थापना एवं जमाव में मदद करता है।

अतएव पौधे को अपना जीवन चक्र पूरा करने के लिए पानी की नितान्त आवश्यकता होती है। फसल को मुख्य रूप से मृदा, वर्षा एवं सिंचाई के माध्यम से जल की आपूर्ति की जाती है। प्रत्येक फसल में जल की अलग–अलग आवश्यकता होती है और आवश्यकता अनुसार ही इसकी आपूर्ति की जाती है। उदाहरण के लिए गेहूं को पूरे जीवन काल में लगभग 450–650 मिमी, तथा रोपाई धान को 900–2500 मिमी जल की आवश्यकता होती है। किसी भी फसल की भरपूर उपज प्राप्त करने के लिए आवश्यकता अनुसार जल की आपूर्ति करना जरूरी होता है।

यदि हम पौधे की जल की आवश्यकता की बात करें तो इसे केवल जड़ क्षेत्र में ही पानी अथवा नमी चाहिए। अतः हमें इस प्रकार जल का प्रबन्ध करना चाहिए कि पौधे के जड़ क्षेत्र में उपयुक्त नमी बनी रहे। फसल जल प्रबन्धन के दो मुख्य आयाम है।

- वर्षा एवं सिंचाई जल का ऊचित प्रबन्धन
- यदि जल आवश्यकता से अधिक है तो उसकी सुरक्षित निकास

सिचाई जल की दक्षता मुख्यतः सिंचाई विधि एवं सिंचाई के समय पर निर्भर करती है। सिंचाई की मुख्य विधियाँ इस प्रकार है।

- फ्लड सिंचाई (पूरे खेत में पानी भरना)
- फब्बारा सिंचाई (वर्षा के रूप में जल का छिड़काव)
- बूंद–बूंद सिंचाई

फ्लड सिंचाई–

इस विधि में पूरे खेत मे पानी भर दिया जाता है। इसमें जल की मात्रा अधिक लगती है। विशेष कर प्रारम्भिक अवस्था में । प्रारम्भिक अवस्था में पौधे की जल की आवश्यकता कम होती है। परन्तु पानी हमें पूरे खेत में देना पड़ता है, इसलिए जल बहाव को सुनिश्चित करने के लिए सिंचाई जल अधिक मात्रा में देना पड़ता है।

इस विधि में जल की दक्षता बढ़ाने के लिए खेत का समतलीकरण जरूरी है। वर्तमान में समतलीकरण हेतु लेजर लेवलर का प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा निम्न उपाय अपनाये जा सकते है।

(अ) गूल में सिचाई–

इससे भी जल की बचत होती है। यह विधि कम पानी चाहने वाली फसलों के लिए उपयुक्त होती है।

(ब) लम्बी पट्टियों में सिचाई–

लम्बी पट्टियों में सिचाई (बार्डर विधि): प्लाट की लम्बाई 70–80 मी0 तथा चौड़ाई 4–5 मी0 तक रखते है। इससे जल दक्षता में वृद्धि होती है।

फब्बारा विधि–

इस विधि में आवश्यकतानुसार सिंचाई जल की मात्रा खेत मे दी जा सकती है। जहां फ्लड विधि में प्रति सिंचाई 7–8 लाख ली0 पानी/है. देना पड़ता है। परन्तु फब्बारा विधि में इस 3–4 लाख लीटर/है. ही देना होता है। कम पानी चाहने वाली फसले जैसे दलहनी, तिलहनी, एवं ऐसे क्षेत्र जहां जल कम मात्रा में उपलब्ध है, यह विधि अत्यन्त उपयोगी पायी गयी है।

बूंद–बूंद/टपक सिंचाई–

इस विधि में प्लास्टिक पाइप की मदद से पानी सीधे पौधे की जड़ में दिया जाता है। साथ ही इसमें पोषक तत्व भी मिला दिये जाते है। इसके लिए धुलनशील उवर्रक उपलब्ध है। इस विधि में सिंचाई जल ही दक्षता सर्वाधिक (> 90 प्रतिशत) दर्ज की गयी है। यह विधि अधिक दूरी पर बोई जाने वाली फसलें जैसे मक्का, गन्ना, सब्जियों आदि के लिए अधिक लाभकारी पायी गयी है।

दूसरा मुख्य घटक सिंचाई जल प्रबन्धन है, जिसमें फसल को कब–कब पानी दिया जाये, अर्थात पहली सिंचाई कब दे तथा दो सिंचाइयों के मध्य कितना अन्तराल होना चाहिए। मृदा नमी का स्तर इसके लिए सबसे ज्यादा प्रभावशाली आधार है। इसको नापने के लिए नमी मापक मशीन जैसे टेंषियों मीटर, जिप्सम ब्लाक, टी0डी0आर0 एफ0डी0आर0 आदि का प्रयोग कर सकते है। साथ ही आजकल मृदा नमी नापने के लिए सैंसर्स भी उपलब्ध है। खेत में बिना नमी देखे कभी भी सिंचाई नहीं करनी चाहिए, विशेषकर मृदा की निचली सतह की नमी। प्रत्येक फसल की एक क्रांतिक अवस्था होती है, जिस पर सिंचाई अवश्य करनी चाहिए।

जल निकास, जल प्रबन्धन का एक मुख्य घटक है। बोआई के समय ही यह निश्चित कर लेना चाहिए कि यदि जल आवश्यकता से अधिक इकठ्ठा हो गया है। तो इसे किस प्रकार खेत से निकाला जाये। अनुसंधान के परिणामों के आधार पर उत्तरी भारत क्षेत्रों हेतु प्रमुख फसलों में निम्न बिन्दुओं पर ध्यान अवश्य देना चाहिए, तभी सिंचाई जल से अधिक लाभ प्राप्त कर सकते है।

- रोपाई धान में प्रथम 10 दिनों तक खेत में पर्याप्त नमी बनाये रखे, अन्यथा शाकनाशी का प्रभाव कम हो जायेगा।
- यदि सिंचाई जल की मात्रा कम हो तो रोपाई के बजाय धान की सीधी बोआई करें।
- बसंत कालीन मक्का की बोआई यदि सम्भव हो तो कूंड़ में करें। साथ ही धान की पुआल अथवा किसी अन्य फसल अवशेष का प्रयोग पलवार के रूप में करें।
- टपक सिंचाई से बंसत कालीन मक्का की अच्छी ऊपज नही मिल पाती, क्योकि मई माह में अधिक गर्मी होने के कारण यह विधि आर्द्रता को नहीं बना पाती। इस समय फ्लड सिंचाई करना आवश्यक हो जाता है।
- दलहनी एवं तिलहनी फसलों में फब्बारा विधि फ्लड के मुकाबले अधिक प्रभावी पायी गयी है।
- भारी मृदा एवं निचले इलाकों में यदि संभव है, तो रबी फसलों में पहली सिंचाई फब्बारा विधि से करें।

सिंचाई जल की उपलब्धता घटती जा रही है। ऐसे में यदि भविष्य में कृषि को टिकाऊ बनाये रखना है, तो हमें सिंचाई जल का दक्ष उपयोग करना होगा। कृषि, जल का सबसे बड़ा उपभोक्ता (>80%) है। अत एवं इस क्षेत्र में बिना ऊपज प्रभावित किये जल उपयोग कम करने के लिए हर संम्भव प्रयास करना जरूरी है।

◆◆◆

जल उपभोग क्षमता वृद्धि हेतु जल प्रबन्धन के सिद्धान्त

डा० गुरविन्दर सिंह
वरिष्ठ शोध अधिकारी (सस्य विज्ञान)
गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेलः guruagronomy@gmail.com

जल प्रकृति की अमूल्य धरोहर है। धरा पर उपस्थित कुल जल का 3 प्रतिशत जल ही उपयोग में आ पाता है। जिसमें से 80 प्रतिशत से अधिक जल का प्रयोग सिंचाई हेतु किया जाता है। लेकिन अन्य क्षेत्रों से प्रतिस्पर्धा बढ़ने के कारण सिंचाई हेतु जल की उपलब्धता आगामी कुछ वर्षा में लगभग 10 प्रतिशत कम हो जायेगी जिसके कारण सिंचाई हेतु उपलब्ध जल का सदुपयोग करना अति आवश्यक है। अतः जल उत्पादकता में वृद्धि हेतु सिद्वान्तों का ध्यान में रखना नितान्त आवश्यक है जो कि मुख्यतः मिट्टी के प्रकार, मौसम इत्यादि पर निर्भर करते है।

निचले क्षेत्रों में सिंचाई जल का प्रबन्धन–

निचले क्षेत्रों में प्रायः चिकनी मृदा में सिंचाई अथवा वर्षा का जल एकत्रित हो जाता है जिसके कारण मृदा में पोषक तत्वों का निक्षालन, मृदा कटाव, बीमारियों एवं कीटों का प्रकोप अधिक होता है। बुवाई के समय अथवा इसके तुरन्त पश्चात् वर्षा होने के कारण प्रायः बीज का अंकुरण कम होता है एवं बीज सड़ जाता है। इसके अतिरिक्त मृदा पर पपड़ी बन जाती है। उपरोक्त से बचाव हेतु निम्न बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

- जल निकास का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए।
- फसलों की मेड़ों पर बुवाई करें।
- वर्षा का अनुमान होने पर सिंचाई न करें।
- निचले क्षेत्रों में दलहनी फसलों की बुवाई न करें। इनमें अधिक पानी चाहने वाली फसलों को बोना चाहिए।
- खड़ी फसल में पौधों को गिरने से बचाव हेतु मिट्टी चढ़ायें।
- मिट्टी में कठोर परत बनने पर प्रत्येक 3 वर्ष में कम से कम एक बार गहरी जुताई अवश्य करें।
- इन क्षेत्रों में यूकेलिप्टस जैसे पौधे खेत की सीमाओं पर लगाये जा सकते है।

जल उपयोग क्षमता कैसे बढ़ायें ?

निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखकर जल उपभोग क्षमता बढायी जा सकती है–

- फसलों की समय से बुवाई करें।
- मृदा का समतलीकरण लेजर लेवलर से करें।
- अधिक उपज वाली फसलों एवं उनकी प्रजातियों का चुनाव करना चाहिए।
- फसलों की जल बचत करने वाली विधियों का चुनाव करना चाहिए। जैसे कि–
  - धान– सीधी बुवाई, श्री तकनीक
  - मक्का– कूँड़ में बुवाई
  - गेहूँ– गेहूँ की उठी हुई क्यारियों पर बुवाई
  - सोयाबीन– मेड़ों पर बुवाई
- संतुलित मात्रा में पोषक तत्वों का प्रयोग।
- खरपतवार का समुचित प्रबन्धन।
- ग्रीष्म कालीन फसलें जैसे मक्का, मैन्था में धान की पुआल, गन्ने की सूखी पत्तियों का पलवार के रूप में प्रयोग।
- दूरी पर बोयी जाने वाली फसलों में सह फसली जैसे मक्का में दलहनी फसलें, गन्ने में आलू/मटर जैसी फसलें बोकर जल उपभोग क्षमता बढ़ायी जा सकती है।
- फसलों की मुख्य क्रान्तिक अवस्थाओं पर सिंचाई अवश्य करें।
- बूँद – बूँद सिंचाई (ड्रिप विधि) को गन्ना, मक्का, मैन्था जैसी फसलों में अपनायें।
- दलहनी फसलों (चना, मसूर) में स्प्रिकलर विधि अपनायें।
- कीटों एवं बीमारियों का समय पर नियन्त्रण करें।

फसलों में जल का समुचित प्रबन्धन करने हेतु मृदा, फसल एवं मौसम के बारे में समुचित ज्ञान होता अति आवश्यक है। परिस्थितियों के अनुसार बदलते मौसम को दृष्टिगत रखते हुए सिंचाई जल का समुचित प्रयोग करना वर्तमान में नितान्त आवश्यक है।

◆◆◆

सूक्ष्म सिंचाई पद्धति

डा० पी०के० सिंह
प्राध्यापक (सिंचाई एवं जल निकास अभियन्त्रण)
गो0ब0 पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पन्तनगर
ई–मेल : singhpk67@gmail.com

पौधों को कृत्रिम रूप से पानी देने की क्रिया को सिंचाई कहते हैं फसलों को भूमि सतह पर पानी फैला कर, पानी को फब्बारे/छिड़काव द्वारा या पौधों की जड़ों के पास बूँद–बूँद के रूप में सिंचाई के पानी का प्रयोग किया जाता है। पृष्ठीय सिंचाई, बैछारीय सिंचाई, बूँद–बूँद सिंचाई और अवपृष्ठीय सिंचाई प्रचलित सिंचाई की विधियॉ है। पौधों को सिंचाई–जल जमीन की सतह पर, जमीन के नीचे, छिड़काव से या टपका कर दिया जाता है। सिचाई की कौन सी विधि प्रयोग में लाई जाए, यह पानी के स्रोत, मिट्टी के प्रकार, जमीन की स्थलाकृति तथा फसल के प्रकार पर निर्भर करता है।

सिंचाई विधियों के प्रकार– उत्तराखण्ड के मैदानी एवं पर्वतीय क्षेत्रों मे सिचाई की प्रचलित विधियो को दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है। न्यूनतम जल से अधिकतम एवं गुणवत्तायुक्त फसल उत्पादन के लिये सिंचाई की आधुनिक प्रणाली को अपनाया जा सकता है।

(अ) परम्परागत सिचाई विधियाँ– परम्परागत सिचाई विधियॉ निम्न है।

- पृष्ठीय सिंचाई विधि
- किनारा/पट्टी सिंचाई विधि
- क्यारी विधि
- कूँड़ सिंचाई विधि
- अवपृष्ठीय सिंचाई की विधि

(ब) उन्नत/आधुनिक सिंचाई विधियाँ–

- फव्वारा अथवा छिड़काव सिंचाई विधि
- सूक्ष्म (बूँद–बूँद या टपक सिंचाई) सिंचाई विधि

सूक्ष्म सिंचाई पद्धति

प्रकृति द्वारा हमें यद्यपि पानी का बहुतायत वरदान मिला हैं लेकिन भूमि की दशा, पानी की गुणवत्ता एवं अन्य कारकों के कारण उपलब्ध पानी का बहुत छोटा हिस्सा ही मानव समाज के उपयोग में लाया जा सकता हैं। विभिन्न वैज्ञानिकों ने यह अनुमान लगाया हैं कि देश की संपूर्ण सतही एवं भूमिगत जल जिसका कि दोहन संभव हैं, इस षताब्दी के अंत तक कृषि उपयोग में लाया जा सकता हैं, और इस पानी से लगभग 1130–1150 लाख हेक्टेयर भूमि की सिंचाई वर्तमान सिंचाई विधियों से की जा सकती है। वर्तमान विधि द्वारा उपलब्ध सिंचाई योग्य पानी से संपूर्ण कृषि योग्य भूमि का केवल 50 प्रतिशत क्षेत्रफल ही सिंचित किया जा सकता है। सूक्ष्म सिंचाई पद्धति (ड्रिप सिंचाई) के द्वारा सिंचाई करने पर 30–80 प्रतिशत पानी की बचत के साथ–साथ 20–100 प्रतिशत उपज में भी वृद्धि की सकती है, और अधिक से अधिक क्षेत्रफल की सिंचाई के साथ–साथ अधिक उपज भी संभव हो सकती है।

सिंचाई की इस नवीन पद्धति द्वारा पौधों की किस्म, उसकी आयु, केनापी क्षेत्रफल तथा स्थान विशेष की भूमि एवं जलवायु संबंधी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, पौधों की वास्तविक जल मांग के अनुरूप, उपयुक्त डिजाइन के द्वारा जल की सही मात्रा, सही स्थान, यानी पौधे के प्रभावी जड़ क्षेत्र में देते हैं। जरूरत पड़ने पर घुलनशील पोषक तत्व और रासायनिक खाद

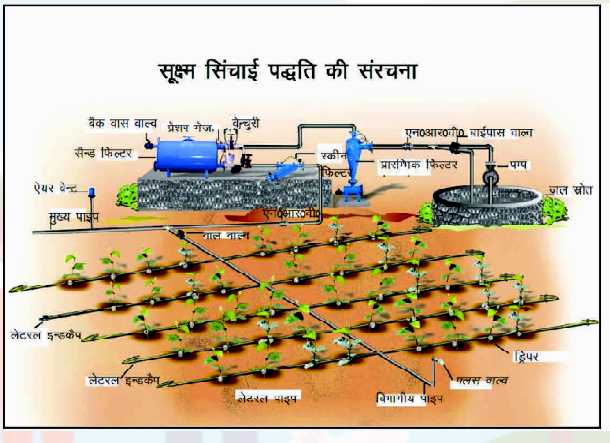

सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली की संरचना

भी पानी में घोलकर पौधों की जड़ों तक पहुँचाई जा सकती है। इस पद्धति में पानी, प्लास्टिक की नलियों के द्वारा जल स्रोत से पौधों की जड़ों तक विशेष प्रकार की उत्सर्जक युक्ति (ड्रिपर्स, माइक्रोस्प्रिंकलर, माइको स्प्रेयर आदि) द्वारा नियंत्रित मात्रा में पहुँचाई जाती है। भूमि, स्थान विशेष एवं फसल की आवश्यकताओ के अनुरूप प्रायः ड्रिपर्स (टर्बो की बटन, दाब कम्पनसेटिंग, निश्चित डिस्चार्ज), माइक्रोस्प्रिंकलर माइक्रोस्प्रेयर, बबलर, बाइ–वाल तथा अन्य प्रकार की उत्सर्जक युक्ति (इमिशन डिवाइस) का प्रयोग किया जाता है।

यह पद्धति मुख्यतया फलों, बागानों, कतार में बोई जाने वाली सब्जियों एवं गन्ने की सिंचाई में उपयोगी पायी गयी है। इस विधि द्वारा विभिन्न फसलों की उपज में उल्लेखनीय वृद्धि के साथ–साथ पानी की भी सार्थक बचत हुई है जो तालिका–1 में दर्शायी गयी है।

पर्वतीय क्षेत्रो के लिये सूक्ष्म सिंचाई विधि–

पर्वतीय क्षेत्रों में प्राकृतिक रूप से उपलब्ध गुरूत्व दबाव का प्रयोग सूक्ष्म सिंचाई पद्वति को चलाने हेतु किया जा सकता है। अतः ऐसे क्षेत्रों में मोटर–पंप की आवश्यकता नही पड़ती है। इन क्षेत्रो मे खेत के ऊपरी हिस्से मे स्थित जल स्रोत (नौला, छोटी नदी, जल ग्रहण टैंक इत्यादि) के पानी को सूक्ष्म सिंचाई पद्धति द्वारा उपयोग मे लाकर कम जल से अधिक क्षेत्रफल की सिंचाई की जा सकती हैं। इसी प्रकार की एक सूक्ष्म सिंचाई पद्धति निम्न चित्र में दर्शायी गयी है।

विभिन्न फसलों में सूक्ष्म सिंचाई पद्वति–

उत्तराखंड में उगाई जाने वाली बागवानी तथा अन्य फसलों के लिए सूक्ष्म सिंचाई पद्धति का चुनाव एवं डिजाइन क्षेत्र विशेष की भौगोलिक स्थिति (मैदानी या पर्वतीय) पानी का स्रोत व उपलब्धता, खेत का ढाल एवं दिशा, खेतों का आकार (आयताकार या समलम्बाकार), मिट्टी एवं फसल के ऊपर निर्भर करता है।

मैदानी क्षेत्रों में आम तथा लीचीं के बडे पौधों (10–40 वर्ष आयु) के लिए फल बनने एवं फल बढ़वार के समय पानी की आवश्यकता 300 ली0 प्रति दिन तक हो जाती है। इस दशा में सूक्ष्म सिंचाइ पद्धति में अधिक प्रवाह दर वाले उत्सर्जकों का चुनाव आर्थिक दृष्टिकोण से उचित होता है। लीची के फलों का फटने से बचाने के लिए पोधे के कनापी के ऊपर सूक्ष्म फववारा विधि अपनाकर अच्छी गुणवत्ता वाले फल पैदा किये जा सकते हैं। इसी प्रकार फल वृक्षों के छोटे पौधों (10 वर्ष तक की आयु) के लिए 4 से 8 ली0 वाले 1 से 4 संख्या में उत्सर्जकों का प्रयोग करना उचित रहता है।

पर्वतीय क्षेत्रों में उगाये जाने वाले फल वृक्षों (सेब, आडू, खुबानी, मालटा, नाशपाती, कीवी इत्यादि)

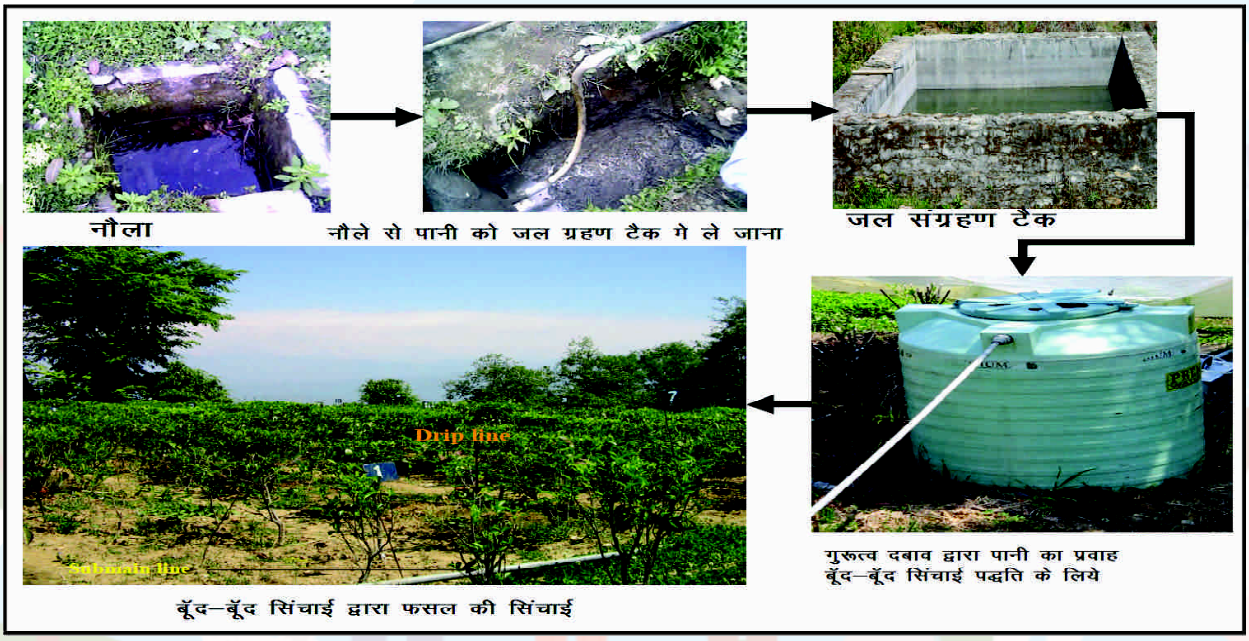

पर्वतीय क्षेत्रो के लिये सूक्ष्म सिंचाई पद्धति

तालिका–1 : तकनीक द्वारा पानी की बचत एवं उपज में वृद्धि

क्रम सं०	फसल	पानी की बचत (प्रतिशत)	उपज में वृद्धि (प्रतिशत)
1.	अंगुर	65–70	30
2.	अनार	50–55	30
3.	अमरूद	55–60	25
4.	सेब	50–55	20
5.	नारियल	65	12
6.	नीबू	81	35
7.	केला	77	–
8.	गन्ना	30–60	20–29
9.	पपीता	–	77
10.	टमाटर	30–79	5–43
11.	बैंगन	55–80	17.5
12.	आलू	–	46
13.	गोभी (पत्ता)	59.5	23.4
14.	भिन्डी	49–84	7–13
15.	लौकी	12	47

लीची के नये एवं परिपक्व (बड़े) बाग में सूक्ष्म सिंचाई पद्धति

केले में सूक्ष्म सिंचाई पद्धति

में 2 से लेकर 8 ली0/घण्टा प्रवाह दर वाले उचित संख्या में उत्सर्जकों का प्रयोग किया जा सकता है।

मैदानी एवं पर्वतीय क्षेत्रों में उगाई जाने वाली सब्जियों में ड्रिप लाईन अथवा ड्रिप टेप का प्रयोग करना उचित होगा। यदि इन ड्रिप लाईन या ड्रिप टेपों को भूमिगत (5 से 10 सेमी0) रखा जाय तो पानी की बचत में वृद्धि और की जा सकती है।

इसी प्रकार कम पानी की उपलब्धता में चाय तथा अन्य मिलती–जुलती फसलों में भी दो कतार के बीच में एक ड्रिप लाईन अथवा ड्रिप टेप का प्रयोग करने से कम खर्चे में अधिक क्षेत्रफल में सूक्ष्म सिंचाई पद्धति लगायी जा सकती है। यदि पानी की उपलब्धता प्रचुर मात्रा में वर्षभर है तो सूक्ष्म फव्वारा/फव्वारा पद्धति को भी पास–पास वाली बागवानी तथा अन्य फसलों में अपनाया जा सकता है।

सूक्ष्म सिंचाई पद्धति के लाभ–

1 औसतन 30–80 प्रतिशत पानी की बचत और इस बचे पानी से ज्यादा जमीन की सिंचाई की संभावना।
2 औसतन 20–100 प्रतिशत उपज में वृद्धि के साथ–साथ गुणवत्ता में सुधार।
3 फर्टीगेशन (उर्वरकीकरण) द्वारा उर्वरकों, पोषक तत्वों एवं दवाओं का समुचित उपयोग।
4 खरपतवार नियंत्रण।
5 उबड़–खावड़ एवं क्षारीय जमीन में भी उपयोग।
6 अगेती फसल प्राप्ति।
7 देखभाल, रासायनिक खाद, मजदूरी एवं अन्य खर्चों में कटौती।
8 समय की बचत।
9 खारे पानी में भी कारगर।
10 ऊर्जा की बचत।

◆◆◆

उन्नत धान उत्पादन तकनीक

डा० बी०डी० सिंह
प्राध्यापक (सस्य विज्ञान), प्रसार शिक्षा निदेशालय
गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल : bdsingh5@gmail.com

धान खरीफ मौसम की एक प्रमुख फसल है, जो उत्तराखण्ड के मैदानी एवं पर्वतीय क्षेत्रों में प्रमुखता से उगायी जाती है। यद्यपि वर्तमान में देश धान और गेहूँ उत्पादन में आत्मनिर्भर हो गया है, फिर भी निरन्तर बढ़ती जनसंख्या को खाद्यान्न उपलब्ध कराने हेतु इस फसल की वैज्ञानिक खेती आवश्यक है। वैज्ञानिकों द्वारा अनेक उन्नत प्रजातियां क्षेत्र की आवश्यकता के अनुरूप विकसित की गई है। कृषकों के पास अनेक विकल्प है कि वो अपने क्षेत्र के आवश्यकतानुरूप सुगन्धित धान, बासमती धान इत्यादि की भी खेती कर सकते हैं। सुगन्धित धान अथवा बासमती धान की यदि उत्पादन लागत देखें तो सामान्य रोपित धान से लगभग आधा होता है जो कि उत्पादन लागत को कम रखने में मददगार होता है। इस प्रकार यदि उत्पादन लागत कम रखेंगे तो लाभ प्रतिशत में वृद्धि की जा सकेगी। किसान साथी धान की वैज्ञानिक खेती निम्नानुसार कर अधिकतम उपज प्राप्त कर सकते हैं।

उन्नत प्रजातियाँ–

विभिन्न परिस्थितियों के लिए धान की उन्नत किस्में निम्नलिखित तालिका में दी गई है।

बुवाई तथा रोपाई का समय– पर्वतीय क्षेत्र के असिंचित (उपराऊ) दशा में चेतकी धान की सीधी बुवाई सामान्यतः मध्य मार्च से अप्रैल के प्रथम पखवाड़े तक तथा जेठी धान की सीधी बुवाई जून के प्रथम पखवाड़े में करनी चाहिए। सिंचित (तलाऊ) दशा में धान की खेती रोपाई द्वारा की जाती है। धान की नर्सरी डालने एवं रोपाई का समय निम्नवत है:

बीज दर एवं बुवाई– पर्वतीय क्षेत्रों में घाटियों को छोड़कर अन्य सभी क्षेत्रों में धान की सीधी बुवाई होती है। असिंचित (उपराऊ) दशा में चेतकी एवं जेठी धान की बुवाई हेतु 2.0 किग्रा. बीज प्रति नाली (100 किग्रा./है) की आवश्यकता पड़ती है। बुवाई पंक्तियों में करनी चाहिए। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 20 से.मी. तथा बीज की बुवाई 4 से 5 से.मी. की गहराई पर करनी चाहिए। सीधी बुवाई के धान में 20–25 दिन बाद एक से दो बार फेरस सल्फेट 0.5 प्रतिशत एवं यूरिया का 2 प्रतिशत का छिड़काव अवश्य करें। सिंचित (तलाऊ) दशा में एक नाली की रोपाई हेतु नर्सरी तैयार करने के लिए 0.70 से 0.80 किग्रा. (35–40 किग्रा./है.) धान के बीज की आवश्यकता होती है। संकर धान के लिए 20 किग्रा. व सुगन्धित धान के लिए 30 किग्रा. बीज प्रति हैक्टेयर प्रयोग करें।

रोपाई के लिए नर्सरी की तैयारी–

पौध तैयार करने की विधि– धान की पौध गीली या शुष्क विधि से तैयार की जा सकती है।

गीली विधि– पर्याप्त सिंचाई साधन वाले क्षेत्रों में नर्सरी के लिए गीली विधि उपयुक्त है। इसके लिए पौध क्षेत्र में 15–20 दिन पहले पानी लगा दें, जिससे खरपतवारों के बीज जम जायेंगे जो खेत तैयार करते समय खेत में मिल जायेंगे। ऐसा करने से पौध क्षेत्र में खरपतवारों का प्रकोप कम होगा। गीली विधि से खेत में पानी भरकर पडलर या देशी हल द्वारा जुताई करें तथा 50–60 किग्रा. कम्पोस्ट या गोबर की खाद 100 ग्राम नत्रजन एवं 80 ग्राम फॉस्फोरस प्रति 10 वर्ग मी. की दर से उर्वरक डालकर खेत को पाटे से समतल कर दें। लेव लगाने के बाद 1.25 मी. चौड़ी तथा सुविधानुसार लम्बी क्यारियाँ बना लें तथा क्यारी के बीच में 30–40 से.मी. पट्टी खाली छोड़ दें, जिससे बुवाई, निराई, सिंचाई तथा अन्य कृषि कार्य करने में सुविधा रहती है। क्यारी में 500 ग्राम अंकुरित बीज प्रति 10 वर्ग मी. की दर से बिखेर दें। इस तरह से एक हैक्टेयर खेत की रोपाई हेतु 10 वर्ग मी. की 80 क्यारियों

प्रजाति का नाम	पकने की अवधि (दिन)	उपज (कु./है.)
अगेती		
गोविन्द	95–100	30–35
नरेन्द्र 118	110–115	40–45
नरेन्द्र 97	110–115	40–45
सकेत 4	115–120	45–50
पंत धान 22	115–125	50–55
मध्यम शीघ्र		
पंत धान 10	121–130	58–60
पंत धान 12	125–130	45–48
पंत धान 23	120–125	45–50
पंत संकर धान 3	125–130	65–70
पंत धान 26	115–120	47–50
मध्यम अवधि		
पंत धान 4	126–130	55–60
पंत धान 18	130–135	60–65
पंत धान 19	130–135	60–65
पंत धान 24	130–135	55–60
नरेन्द्र 359	130–135	60–65
सरजू 52	130–135	60–65
एचकेआर 47	130–135	60–65
पीआर 113	130–135	60–65
पंत धान 28	125–130	60–65
देर से पकने वाली		
पूसा 44	140–145	55–60
स्वर्णा (एमटीयू 7029)	160–165	60–65
सुगन्धित धान		
पंत बासमती 1	135–140	48–50
पंत बासमती 2	125–130	48–49
पंत सुगन्ध धान 25	135–140	36–40
पंत सुगन्ध धान 27	120–125	43–45
टाईप 3	140–145	30–35
तरावड़ी बासमती	145–150	30–35
बासमती 370	140–145	30–35
पूसा बासमती 1	140–142	40–45
पंत सुगन्ध धान 15	135–140	35–40
पंत सुगन्ध धान 17	135–140	35–40
पंत सुगन्ध धान 21	135–140	35–40
पूसा सुगन्ध 4	135–140	30–35
पूसा सुगन्ध 5	120–125	45–50
ऊसर भूमि के लिए		
नरेन्द्र ऊसर धान 1	145–150	40–50
सी.एस.आर. 10	115–120	50–60
सी.एस.आर. 30	130–135	40–45
नरेन्द्र ऊसर धान 2	125–130	45–50
नरेन्द्र ऊसर संकर धान 3	135–140	35–45
पर्वतीय सिंचित क्षेत्र		
घाटियाँ एवं कम ऊँचाई वाले क्षेत्र (900 मी० तक)		
गोविन्द	95–100	30–35
साकेत 4	115–120	45–50
प्रसाद	120–125	50–55
पंत धान 6	113–120	40–45
पंत धान 10	121–130	58–60
पंत धान 11	118–125	42–48
पंत धान 12	113–120	42–48
वी.एल. 81	115–120	40–42
विवेक धान 82	115–120	45–50
वी.एल. धान 85	118–120	40–45
वी.एल. धान 65	130–135	50–55
मध्यम ऊँचाई वाले क्षेत्र (1000–1500 मी० तक)		
पंत धान 6	115–120	35–40
वी.एल. धान 81	115–120	40–42
विवेक धान 82	115–120	45–50
वी.एल. धान 85	118–120	40–45
पंत धान 10	123–125	45–50
पंत धान 12	115–125	42–48
विवेक धान 62	125–130	45–50
वी.एल. धान 61	130–135	45–50
वी.एल. धान 65	130–135	50–55
पर्वतीय असिंचित क्षेत्र चेतकी धान		
वी.एल. धान 207	155–160	20–25
वी.एल. धान 208	160–165	20–22
वी.एल. धान 209	155–160	20–22
जेठी धान		
वी.एल. धान 221	110–115	20–25
धान वी.एल. 154	100–110	20–25
वी.एल. धान 157	105–110	20–25

व एक नाली खेत के लिए 1.5 से 2 क्यारियों की आवश्यकता पड़ती है। नर्सरी जब 12–15 दिन की हो जाय तो उसमें 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट तथा 2 प्रतिशत यूरिया मिलाकर छिड़काव करें।

शुष्क विधि– कम वर्षा अथवा अपर्याप्त सिंचाई के साधन वाले क्षेत्रों में शुष्क विधि उपयुक्त है। शुष्क अवस्था में उपरोक्त खाद की मात्रा डालकर खेत तैयार कर 1.25 मी. चौड़ी तथा सुविधानुसार, लम्बी क्यारी बनायें और 5–10 से.मी. की दूरी पर कतारों में 500 ग्राम बीज प्रति 10 वर्ग मी. की दर से बुवाई करें। बुवाई के बाद पानी लगा दें। क्यारी में पानी एक सप्ताह तक शाम के समय लगायें तथा बाद में 1–2 से.मी. पानी बनाये रखें। ऐसा करने से खरपतवार कम होंगे तथा पौध उखाड़ने में आसानी रहेगी।

रोपाई– पंक्ति से पंक्ति की दूरी 20 से.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 10 से.मी. या पंक्ति से पंक्ति तथा पौधे से पौधे की दूरी 15 से.मी. रखनी चाहिए। मैदानी एवं घाटी हेतु 25–30 दिन, मध्य क्षेत्रों के लिए 30–35 दिन एवं अधिक ऊँचें क्षेत्रों हेतु 40–50 दिन की पौध उपयुक्त होती है। रोपाई 2–3 से.मी. गहराई से ज्यादा नहीं करनी चाहिए। रोपाई से 10 दिन के अन्दर मरे पौधों की जगह फिर से रोपाई करें।

उर्वरकों का प्रयोग– उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करना उपयुक्त रहता है। यदि मृदा परीक्षण सम्भव न हो तो उर्वरकों की निम्न मात्रा प्रयोग करनी चाहिए:

नत्रजन उर्वरक का 1/4 भाग तथा फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय प्रयोग करें। नत्रजन की 1/2 मात्रा को कल्ले फूटते समय 1/4 मात्रा बाली बनने की प्रारम्भिक अवस्था के समय टॉप–ड्रेसिंग के रूप में प्रयोग करें। ध्यान रहे कि टॉप–ड्रेसिंग करते समय खेत में पर्याप्त नमी हो। यदि कम्पोस्ट या सड़ी गोबर की खाद उपलब्ध हो तो इसे बोने के 15–20 दिन पहले खेत में मिला देना चाहिए एवं इस स्थिति में नत्रजन उर्वरक की आधी मात्रा (10 से 15 किग्रा.) प्रयोग करनी चाहिए।

मैदानी क्षेत्रों व पर्वतीय घाटियों में धान की खेती रोपाई करके की जाती है। इन क्षेत्रों हेतु उर्वरकों की मात्रा निम्नवत है:

फॉस्फोरस तथा पोटाश की पूरी एवं नत्रजन की 1/3 मात्रा बेसल ड्रेसिंग के रूप में रोपाई से पहले खेत तैयार करते समय देना चाहिए। नत्रजन की 1/3 मात्रा कल्ले फूटते समय (रोपाई के 20–25 दिन पर) तथा 1/3 मात्रा बाली बनने की प्रारम्भिक अवस्था में (रोपाई के 40–50 दिन पर) टॉप–ड्रेसिंग के रूप में प्रयोग करनी चाहिए।

मैदानी क्षेत्रों में ढैंचा या सनई की हरी खाद की फसलों को मई माह में बुवाई करके 45–60 दिन

क्षेत्र	नर्सरी डालने का समय	पौध रोपाई का समय
मैदानी क्षेत्र, घाटियों एवं कम ऊँचें क्षेत्र (900 मी. ऊँचाई तक)	मई द्वितीय पक्ष से जून प्रथम सप्ताह	जून अन्त से जुलाई का प्रथम सप्ताह
मध्यम ऊँचें क्षेत्र (900 मी. से 1500 मी. ऊँचाई तक)	मई प्रथम पक्ष	जून का द्वितीय पक्ष
ऊँचें क्षेत्र (1500 मी. से ऊपर)	अप्रैल का द्वितीय पक्ष	जून का प्रथम पक्ष

पर्वतीय क्षेत्र (मात्रा किग्रा.)

पर्वतीय क्षेत्र (मात्रा किग्रा.)			
प्रजातियाँ	नत्रजन	फॉस्फोरस	पोटाश
बौनी प्रजातियाँ प्रति हैक्टेयर	100–120	60	40
प्रति नाली (200 मी.^{2})	2.0–2.4	1.2	0.8
देशी प्रजातियाँ प्रति हैक्टेयर	60	30	30
प्रति नाली (200 मी.^{2})	1.2	0.6	0.6

तराई–भावर एवं मैदानी (मात्रा किग्रा./हैक्टेयर)

क्षेत्र			
प्रजातियाँ	नत्रजन	फॉस्फोरस	पोटाश
अधिक उपज वाली प्रजातियाँ (धान–गेहूँ फसल चक्र)	150	60	40
संकर किस्में	150	60	60
सुगन्धित धान (बौनी)	100	60	40
देशी प्रजातियाँ	60	30	30

बाद रोपाई से पूर्व खेतों में मिलाने से 80–100 किग्रा./है. नत्रजन की बचत की जा सकती है। इसके अलावा सिंचित क्षेत्र में, जहाँ खेत में प्रायः पानी रहता हो, जैव उर्वरक–नील हरित शैवाल/अजोला का प्रयोग कर नत्रजन वाली उर्वरकों की बचत कर सकते हैं।

सिंचाई– धान की फसल को खाद्यान्न फसलों में सबसे अधिक पानी की आवश्यकता होती है। फसल की कुछ विशेष अवस्थाओं–रोपाई के बाद एक सप्ताह तक कल्ले फूटने, बाली निकलने, फूल खिलने तथा दाना भरते समय खेत में पानी बना रहना चाहिए। बीच–बीच में 2–3 दिन के लिए पानी निकाल देना चाहिए या पानी खड़ा न रहे। इसके कल्ले ज्यादा फूटते हैं। फूल खिलने की अवस्था पानी के लिए अति संवेदनशील है। परीक्षणों के आधार पर यह पाया गया है कि धान की अधिक उपज लेने के लिए लगातार पानी भरा रहना आवश्यक नहीं है। इसके लिए खेत की सतह से पानी अदृश्य होने के एक दिन बाद 5–7 से. मी. सिंचाई करना उपयुक्त होता है। यदि वर्षा के अभाव के कारण पानी की कमी दिखाई दे तो सिंचाई अवश्य करें। कल्ले निकलते समय पानी अधिक समय तक धान के खेत में भरा रहना भी हानिकारक होता है। अतः जिन क्षेत्रों में पानी भरा रहता हो वहाँ जल निकासी का प्रबन्ध करना चाहिए अन्यथा उत्पादन पर कुप्रभाव पड़ेगा।

खरपतवार नियंत्रण–

असिंचित (उपराऊ) क्षेत्र– इन क्षेत्रों में खुरपी/कुटला द्वारा निराई कर खरपतवार नियंत्रण करनी चाहिए। पहली निराई, धान के जमाव के बाद 20–25 दिनों के अन्दर ही करना आवश्यक है। इसके पश्चात् आवश्यकतानुसार एक/दो निराई और करनी चाहिए।

सिंचित (तलाऊ) क्षेत्र– धान की रोपाई के बाद समय से निराई (20 दिन एवं 40 दिन पर) अवश्य करें। श्रमिकों के अभाव में खरपतवारनाशी रसायनों के प्रयोग से भी खरपतवार नियंत्रण किया जा सकता है। रोपाई के तीन दिन के अन्दर ब्यूटाक्लोर 50 ई.सी. 3 लीटर या एनिलोफॉस 30 ई.सी. 1.5 लीटर या प्रेटिलाक्लोर 50 ई.सी. 1.5 लीटर प्रति हैक्टेयर की दर से 500–600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। चौड़ी पत्तियों वाले एवं मोथा वर्ग के खरपतवारों की बहुलता की दशा में मेटसल्फ्यूरान मिथाईल 20 डब्ल्यू.पी. 20 ग्राम प्रति हैक्टेयर का प्रयोग रोपाई के 20 दिन बाद करना चाहिए। सकरी तथा चौड़ी पत्ती के खरपतवारों की दशा में ऑक्साडायजीन 80 डब्ल्यू.पी. की 125 ग्राम मात्रा प्रति हैक्टेयर का प्रयोग रोपाई के 3 दिन के अन्दर करना चाहिए या विसपाइरीवैक सोडियम 10 ई.सी. की 200 मि.ली. मात्रा रोपाई के 15–20 दिन के अन्दर करनी चाहिए।

◆◆◆

मक्का की वैज्ञानिक खेती

डा० अमित भटनागर
वरिष्ठ शोध अधिकारी (सस्य विज्ञान)
गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल : bhatnagaramit75@gmail.com

हमारे देश में धान एवं गेहूँ के बाद मक्का तीसरी मुख्य खाद्यान्न फसल है। इसे पॉपकार्न, स्वीटकार्न एवं बेबीकॉर्न के लिए भी उगाया जाता है। इसके अतिरिक्त इससे स्टॉर्च, खाद्य तेल, इथेनॉल आदि उत्पाद भी बनाये जाते हैं। हमारे देश में मक्का का अधिकांश उपयोग मुर्गियों के दाने के लिए किया जाता है। यद्यपि इसे अनाज, दाने एवं चारे के रूप में सदियों से प्रयोग में लाया जा रहा है। मक्का मुख्यतः खरीफ ऋतु में उगायी जाती है परन्तु जिन क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा है वहाँ इसे रबी में भी उगाया जाता है। उत्तरी पष्चिमी मैदानी क्षेत्रों तथा तराई क्षेत्रों में बसंत ऋतु में मक्का को उगाकर अधिक लाभ कमाया जा सकता है।

प्रजातियाँ–

आनुवांषिक आधार पर मक्के की दो प्रजातियाँ होती हैं संकुल तथा संकर मक्का। संकुल मक्का की उत्पादन क्षमता संकर की अपेक्षा कम होती है, लेकिन इनमें सूखा, कीट, रोग आदि सहने की क्षमता ज्यादा होती है। संकुल मक्का का बीज 3 से 4 वर्ष तक प्रयोग में लाया जा सकता है। संकर मक्का की उत्पादन क्षमता अधिक होती है, लेकिन इनमें कीट, रोग आदि की संभावना ज्यादा होती है। संकर मक्का का बीज अगले वर्ष बोने पर उत्पादन काफी कम मिलता है। अतः प्रत्येक वर्ष संकर मक्का का नया बीज बोना चाहिए।

1. शीघ्र पकने वाली प्रजातियाँ (75–80 दिन)–

ये प्रजातियाँ वर्षा आधारित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त हैं। इन्हें सिंचित अवस्था में बसंत ऋतु में भी उगाया जा सकता है।

संकुल– कंचन, गौरव, सूर्या, विवेक संकुल मक्का 11, 31, 35, 37

संकर– पंत संकर मक्का 1, पंत संकर मक्का 4, पंत संकर मक्का 5, पी.इ.इ.एम.एच. 5, विवेक संकर मक्का 21, 23, 25, 33, 43, 39, 47, 53, डी.एम.एच. 107, पी. एम.एच. 2, एच.एम. 13, पूसा एच.एम. 4, 8

2. मध्यम अवधि वाली प्रजातियाँ (80–90 दिन)–

ये प्रजातियाँ उन क्षेत्रों के लिए उपयुक्त हैं जहाँ वर्षा सामान्य होती है।

संकुल– तरूण, नवीन, किरन, नवजोत, बजौरा मक्का 1, प्रताप मक्का 1, पूसा संकुल 3, 4

संकर– जे.के.एम.एच. 1701, एच.एम. 4, 10, बायो 9544, पंत संकर मक्का 6

3. देर से पकने वाली प्रजातियाँ (90–100 दिन)–

संकुल– देवकी, प्रभात, किसान, विजय

संकर– एच.क्यू.पी.एम. 1, 4, एच.एम. 11, बुलंद, पी. 3522

क्षेत्र विशेष हेतु संस्तुत उन्नत प्रजातियाँ–

1. तराई, भावर एवं मैदानी क्षेत्र–

संकर– एच.एम 4, 10, 11, 13, एच.क्यू.पी.एम. 1, 4, 5, पंत संकर मक्का 1, विवेक मक्का 51, सरताज, प्रकाष, पंत संकर मक्का 4, बुलंद, बायो 9544, पी. 3522, पंत संकर मक्का 5, पंत संकर मक्का 6

संकुल– तरूण, नवीन, कंचन, ष्वेता, डी. 765, सूर्या, गौरव, अमर, विवेक संकुल 11, पंत संकुल मक्का 3

2. पर्वतीय क्षेत्र–

संकर– विवेक संकर 5, 9, 21, 23, 25, 33, 39, 47, 55, डी.एम.एच. 109, एच.एम. 13, विवेक क्यू.पी.एम. 9

संकुल– विवेक संकुल मक्का 11, वी.एल. मक्का 37, विवेक संकुल 31, विवेक संकुल 35, प्रगति, कंचन, नवीन, ष्वेता

विशेष उपयोग हेतु मक्का की किस्में–

1. चारे हेतु– अफ्रीकन टॉल, जे 1006

2. स्वीटकार्न– शुगर 75, विन ओरेंज स्वीट कार्न, एच.एम.सी. 1

3. पॉपकार्न– वी.एल. अम्बर, पंत पॉपकार्न 1

4. उच्च प्रोटीनयुक्त मक्का– एच. क्यू. पी. एम. 1, 4, 5, 7, विवेक क्यू.पी.एम. 9

5. बेबीकॉर्न– एच.एम. 4, वी.एल. बेबीकार्न 1

बुवाई का समय–

तराई, भावर एवं मैदानी क्षेत्र– जून द्वितीय सप्ताह

निचले पहाड़ी क्षेत्र– जून प्रारम्भ से जून मध्य तक

मध्यम पहाड़ी क्षेत्र– मई अन्त से जून मध्य तक

अत्यधिक ऊँचे पहाड़ी क्षेत्र– अप्रैल अन्त से मई मध्य तक

मैदानी क्षेत्रों में रबी ऋतु में इसकी बुवाई का उचित समय 15 अक्टूबर से 15 नवम्बर है। बसंत ऋतु में इसकी बुवाई फरवरी के प्रथम पखवाड़ा में करनी चाहिए।

बीज की मात्रा–

संकुल मक्का के लिए 18 से 20 किग्रा. प्रति हैक्टर (360 से 400 ग्रा. प्रति नाली), संकर मक्का के लिए 20–22 किग्रा. प्रति हैक्टर (400 से 440 ग्राम प्रति नाली), पॉपकार्न के लिए 12 से 14 किग्रा. प्रति हैक्टर (240–280 ग्राम प्रति नाली), बेबीकार्न के लिए 40–45 किग्रा. प्रति हैक्टर (800–900 ग्राम प्रति नाली) तथा स्वीटकार्न के लिए 8 किग्रा. प्रति हैक्टर (160 ग्राम/नाली) बीज प्रयोग करना चाहिए।

बुवाई की विधि–

बुवाई पंक्तियों में करें। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60 से.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 25 से.मी. रखनी चाहिए। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 75 से.मी. रखने पर पौधे से पौधे की दूरी 20 से.मी. रखनी चाहिए। बेबीकार्न के लिए पौधे से पौधे की दूरी 15 से.मी. एवं पंक्ति से पंक्ति की दूरी 50 से.मी. रखनी चाहिए। बीज लगभग 5 से.मी. गहरा बोना चाहिए। यदि घर का बीज प्रयोग में लाया जा रहा हो तो थीरम 40 एफ.एस. 24 मि.ली. या थीरम 75 डब्लू.एस. 25–30 ग्राम मात्रा को 1 लीटर पानी में मिलायें तथा इस घोल से एक हैक्टर क्षेत्र के बीज को उपचारित करके बोयें।

उर्वरकों की मात्रा एवं प्रयोग विधि–

उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करना चाहिए। यदि किसी कारण मृदा परीक्षण न हुआ हो तो जल्दी पकने वाली प्रजातियों के लिए 100 किग्रा. नत्रजन, 60 किग्रा. फॉस्फोरस तथा 40 किग्रा. पोटाश (क्रमशः 2.0, 1.2 एवं 0.8 किग्रा. प्रति नाली) तथा देर एवं मध्यम देर से पकने वाली प्रजातियों के लिए 120–150 किग्रा. नत्रजन, 60 किग्रा. फॉस्फोरस तथा 40 किग्रा. पोटाश (क्रमशः 2.4–3.0, 1.2 एवं 0.8 किग्रा. प्रति नाली) की दर से प्रयोग करना चाहिए। सम्पूर्ण फॉस्फोरस व पोटाश एवं एक चौथाई नत्रजन की मात्रा बुवाई के समय कूड़ों में प्रयोग करनी चाहिए। शेष नत्रजन बराबर–बराबर मात्रा में तीन बार में–फसल की 3–4 पत्ती की अवस्था, पौधे की घुटने की ऊँचाई की अवस्था तथा फूल (नर मंजरी) निकलते समय टॉप–ड्रेसिंग के रूप में प्रयोग करनी चाहिए। उर्वरकों को पौधों के पास देना चाहिए ताकि उर्वरक पौधों के जड़ क्षेत्र में पहुँच जाये। जिन क्षेत्रों में जिंक की कमी हो वहाँ जिंक सल्फेट हेप्टाहाइड्रेट (21 प्रतिशत जिंक) की 25 किग्रा. मात्रा या जिंक सल्फेट मोनोहाइड्रेट (33 प्रतिशत जिंक) की 15 किग्रा. मात्रा प्रति हैक्टर की दर से बुवाई से पूर्व खेत में प्रयोग करनी चाहिए। यदि खड़ी फसल में जिंक की कमी के लक्षण आते हैं तो 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट के घोल का छिड़काव 1000 लीटर/हैक्टर की दर से पौधों पर करना चाहिए। इसमें 2 प्रतिशत यूरिया मिलाने से पौधों की वृद्धि अच्छी होती है। बेबीकार्न वाली फसल में नत्रजन की अधिक आवश्यकता होती है, अतः इसमें 180 किग्रा. नत्रजन प्रति हैक्टर प्रयोग करें। इसकी एक तिहाई मात्रा बुवाई के समय तथा शेष मात्रा दो बराबर भागों में बुवाई के 20–25 तथा 40–45 दिन बाद खड़ी फसल में डालें। पौधों पर 25–30 दिन में मिट्टी चढ़ाने से फसल पर अच्छा प्रभाव आता है, इससे पौधे कम गिरते हैं तथा खरपतवार की समस्या भी कम हो जाती है।

खरपतवार नियंत्रण–

मक्का की फसल में कम से कम दो निराई–गुड़ाई, प्रथम बोने के 20 दिन एवं द्वितीय 35 दिन बाद करने की आवश्यकता होती है। रासायनिक

विधि से खरपतवार को नष्ट करने के लिए एट्राजीन 50 डब्लू. पी. 2.0 किग्रा. चूर्ण प्रति हैक्टर (40 ग्राम चूर्ण 10 लीटर पानी प्रति नाली) की दर से बुवाई के तुरंत बाद या बुवाई के 2 से 3 दिन के अन्दर छिड़कनी चाहिए। यदि मक्का के साथ दलहनी फसल बोयी गयी है तो इसका छिड़काव नहीं करना चाहिए। टेम्बोट्राइओन 286 मि.ली. प्रति हैक्टर या टोप्रामिजोन 75 मि.ली. प्रति हैक्टर खरपतवारनाशी का प्रयोग बुवाई के 20–25 दिन बाद करें। खरपतवारनाशी रसायनों के प्रयोग के लिए पानी की मात्रा 500 लीटर/हैक्टर रखनी चाहिए।

सिंचाई–

पौधों की प्रारम्भिक अवस्था, फसल की घुटनों तक की ऊँचाई तथा पुश्पन की अवस्था पर पर्याप्त नमी आवश्यक है। खरीफ ऋतु में सामान्यतः सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि जल की पूर्ति वर्षा से हो जाती है। यदि वर्षा न हो रही हो तो आवश्यकतानुसार सिंचाई अवश्य करनी चाहिए। भुट्टे के आरम्भिक अवस्था के समय पानी की कमी होने पर दाने कम तथा छोटे बनते हैं। वर्षा के बाद खेत से पानी के निकास का अच्छा प्रबंधन होना चाहिए अन्यथा पौधे पीले पड़ जाते हैं और उनकी बढ़वार रूक जाती है। रबी ऋतु की फसल में सामान्यतः 8–9 तथा बसंत ऋतु की फसल में 6–7 सिंचाईयों की आवश्यकता होती है।

सहफसली–

मक्का में सहफसली खेती करने से अतिरिक्त आय प्राप्त होती है। खरीफ में मक्का की दो पंक्तियों के बीच में सोयाबीन, मूँगफली, लोबिया, मूँग या उर्द की 1 या 2 पंक्तियों को बोया जा सकता है। इस प्रकार सहफसली के रूप में दलहनी फसलों को उगाकर अतिरिक्त उपज प्राप्त की जा सकती है।

कीट नियंत्रण–

तना छेदक–

इस कीट की सूड़ियाँ तनों में छेद करके अन्दर ही अन्दर खाती रहती हैं, जिसके कारण मृतगोभ बन जाता है और पूरा पौधा सूख जाता है। इसकी रोकथाम हेतु कार्बोफ्यूरान 3जी की 33 किग्रा. मात्रा प्रति हैक्टर की दर से बुवाई के समय खेत में मिलायें। खड़ी फसल में इस कीट का प्रकोप होने पर सिंचाई के बाद इस कीटनाशी की 33 किग्रा. मात्रा प्रति हैक्टर की दर से फसल की पंक्तियों में पौधों के पास डालें अथवा खड़ी फसल में डाईमिथोएट 30 प्रतिशत ई.सी. की 660 मि.ली. मात्रा 500–600 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हैक्टर क्षेत्र में छिड़काव करें।

प्ररोह मक्खी–

ये पौधे की प्रारम्भिक अवस्था में मध्य प्ररोह में घुसकर उसके भीतरी भाग को खाते हैं। इस कीट का आक्रमण बसन्त ऋतु की मक्का में बहुत अधिक होता है। पौधे उगने के पश्चात् यदि 20–25 दिन तक फसल को बचा लिया जाए तो उसके पश्चात् इस कीट का आक्रमण नहीं होता है। इसके प्रकोप से बचने के लिए वही कीटनाशी का प्रयोग करें जो तना छेदक के नियंत्रक के लिए बताये गये हैं। परन्तु डाईमेथोएट की मात्रा 1155 मि.ली. प्रति हैक्टर रखें। बीज को इमिडाक्लोप्रिड 48 प्रतिशत एफ.एस. से 1 मि.ली. प्रति किग्रा. बीज की दर से उपचारित करके बोयें। इस कीट का फसल पर अधिक प्रकोप होने पर मोनोक्रोटोफॉस की 625 मि.ली. या ऑक्सीडिमेटॉन मिथाइल 25 प्रतिशत ई.सी. की 1000 मि.ली. मात्रा प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।

पतझड़ सैनिक कीट (फॉल आर्मी वर्म)–

यह एक नया कीट है इसके प्रकोप से मक्का की फसल में बहुत अधिक क्षति होती है। शुरूआत में इस कीट की सूंड़ी पत्तियों के हरे भाग को खुरचकर खाती है जिससे पत्तियों में सफेद जाली जैसी दिखायी पड़ती है। इस कीट की सूंड़ी के सिर पर उलटा वाई का निशान तथा पिछले हिस्से पर चार छोटे वर्गाकार काले रंग के धब्बे होते हैं। बड़ी अवस्था में इसकी सूंड़ी गोफ में तथा भुट्टे के अन्दर प्रवेश कर जाती है। ऐसी दशा में इस कीट का नियंत्रण संभव नहीं हो पाता है। अतः इस कीट के प्रकोप से बचने के लिए शुरूआती अवस्था से ही नियंत्रण करना चाहिए। इसके लिए स्पीनोट्राम 11.7 प्रतिशत एस.सी. का 0.5 मि.ली./लीटर या क्लोरान्ट्रानीलीप्रोले 18.5 एस सी का 0.4 मि.ली./लीटर या थायोमिथेक्जाम 12 प्रतिशत + लेम्डासाईहैलोथ्रिन 9.5 प्रतिशत का 0.2 मि.ली./लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

रोग नियंत्रण–

वलय पत्ती एवं शीथ अंगमारी–

यह रोग प्रायः 40–50 दिन के पौधों पर फूल खिलने के पहले लगता है जिसमें भूमि के सतह के ऊपर तनों पर भूरे रंग के धब्बे बनते हैं जो बाद में पत्ती पर भी बन जाते हैं जिसके पश्चात् पूरा पौधा सूख जाता है।

उपचार– रोग के लक्षण दिखाई देते ही निचली पत्तियों को तोड़कर हटा दें। अधिक प्रकोप होने पर इस रोग के नियन्त्रण के लिए बीमारी के लक्षण दिखते ही मैन्कोजेब का 2.5 किग्रा. या वेलिडामाइसिन का 2 किग्रा. या प्रोपिकोनाजोल या कार्बेन्डाजिम का 1 किग्रा. की दर से 500–600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें। यदि आवश्यकता हो तो दूसरा छिड़काव 10 दिन पश्चात् करें।

तुलासिता रोग या भूरी धारीदार मृदुरोमिल आसिता–

लक्षण– इस रोग में पत्तियों पर पीली धारियाँ पड़ जाती हैं। पत्तियों के नीचे की सतह पर सफेद रूई के समान फफूँदी दिखाई देती है। रोगी पौधों में भुट्टे कम बनते हैं या बनते ही नहीं हैं।

झुलसा रोग– उपचार नहीं है।

लक्षण– इस रोग में पत्तियों पर लम्बे तथा कुछ अण्डाकार नाव के आकार के पीले से भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं जो बाद में काले हो जाते हैं और अधिक प्रकोप होने पर पत्तियाँ झुलस कर सूख जाती हैं।

उपचार– उपरोक्त दोनों रोगों की रोकथाम हेतु मैंकोजेब 75 डब्लू.पी. या जिनेब 75 डब्लू.पी. की 1.5–2.0 किग्रा. मात्रा को 750–800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से बीमारी के लक्षण दिखाई देने पर छिड़काव करना चाहिए। दूसरा छिड़काव प्रथम छिड़काव के 10–15 दिन पर करना चाहिए।

तना सड़न रोग–

लक्षण– यह रोग अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में जहाँ अधिक पानी रुकता है, अधिक पाया जाता है। इसमें तने की पोरियों पर जलीय धब्बे दिखाई देते हैं जो शीघ्र ही सड़ने लगते हैं और उनमें से दुर्गन्ध आती है। पत्तियाँ पीली पड़कर सूख जाती हैं तथा पौधे पोरी से टूटकर गिर जाते हैं।

उपचार– सिंचाई के पानी के साथ ब्लीचिंग पाउडर 25 किग्रा. प्रति हैक्टर खेत में डालें। खेत में पानी के निकास की उचित व्यवस्था बनाऐं।

कटाई एवं उपज–

फसल पकने पर भुट्टों को ढकने वाली पत्तियाँ पीली पड़ने लगती हैं। इस अवस्था में कटाई करनी चाहिए। शीघ्र पकने वाली प्रजातियों की 40–45 कुन्टल तथा मध्यम एवं देर से पकने वाली प्रजातियों की 50–60 कुन्टल प्रति हैक्टर औसत पैदावार प्राप्त होती है।

◆◆◆

सोयाबीन की उन्नत खेती

डा० अजय कुमार
सहायक प्राध्यापक (सस्य विज्ञान)
गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल : drajaysrivastava@gmail.com

विश्व में लगातार बढ़ती हुई खाद्य तेल की मांग को पूरा करने में सोयाबीन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। खाद्य तेलों के कुल उत्पादन में सोयाबीन का योगदान विश्व में लगभग 25 प्रतिशत है। कुल उत्पादन का 90 प्रतिशत सोयाबीन अमेरिका, ब्राजील, अर्जेन्टीना, चीन एवं भारत मे पैदा किया जाता है। विश्व के साथ–साथ सोयाबीन भारत में भी सर्वोच्च तिलहनी फसल आज भी बनी हुई है। देश में सोयाबीन की खेती लगभग 11.34 मिलियन हैक्टेर में की जा रही है इससे लगभग 13.63 मिलियन लाख टन की उपज प्राप्त होती है। इसकी औसत उत्पादक्ता लगभग 1200 किग्रा प्रति हैक्टर है। उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में भी सोयाबीन खरीफ की मुख्य फसल है। सोयाबीन में 20–22 प्रतिशत तेल व 40–42 प्रतिशत प्रोटीन पाई जाती है। इसकी प्रोटीन में लाईसीन नामक आवश्यक अमीनो अम्ल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रहता है। इसलिए यह अन्य वानस्पतिक प्रोटीनो में श्रेष्ठतम है। सोयाबीन से दूध, दही, पनीर (टोफू), आटा, नमकीन एवं कई अन्य व्यंजन बनाये जा सकते हैं। सोयाबीन की खेती के लिए नत्रजन वाले उर्वरकों की आवश्यकता कम पडती है। क्योंकि यह एक दलहनी फसल होने के कारण इसके जडों की गॉठ में नाइट्रोजन एकत्रित करने वाले वैकटीरिया पाये जाते है जो वायु मण्डल से नत्रजन (नाईट्रोजन) को एकत्रित करते है। इसकी फसल के बाद बोई जाने वाली फसल के लिए 35–40 कि. ग्रा. / हैं. तक नत्रजन (नाईट्रोजन) उर्वरक का लाभ होता

उन्नत प्रजातियाँ

प्रजातियाँ	दाने का रंग एवं आकार	पकने की अवधि (दिनों में)	उपज (कु./हे.)	कीट/रोग अवरोधी	खेती के लिए उपयुक्त क्षेत्र
वी.एल.सोया 59	पीला गोल	120–130	25–28 (50–56 कि.ग्रा / नाली)	जीवाणु स्फॉट अवरोधी	निचले एवं मध्य पर्वतीय क्षेत्र
वी.एल.सोया 63	पीला गोल	120–125	25–28 (50–56 कि.ग्रा / नाली)	जीवाणु स्फॉट अवरोधी	निचले एवं मध्य पर्वतीय क्षेत्र
वी.एल. सोया भटट 65**	काला गोल	116–121	11–14 (22–28 कि.ग्रा / नाली)	–	निचले एवं मध्य पर्वतीय क्षेत्र
पी.एस. 1347*	पीला गोल	120–125	30–35 (60–70 कि.ग्रा / नाली)	पीला चित्तवर्ण जीवाणु स्फॉट, अंगमारी एवं चक्र भृंग अवरोधी	भावर, तराई एवं उत्तरी मैदानी भाग
पी.एस. 1225	पीला गोल	120–125	30–35 (60–70 कि.ग्रा / नाली)	पीला चित्तवर्ण व जीवाणु, स्फॉट अवरोधी एवं कीट सहनषील	भावर, तराई एवं उत्तरी मैदानी भाग
पी.एस. 26	पीला गोल चमकीला	120:125	30–35 (60–70 कि.ग्रा / नाली)	..	भावर, तराई एवं उत्तरी मैदानी भाग

*मिलवॉं खेती के लिए उपयुक्त, **काला रंग

है। इसकी खली से पशुओ हेतु पौष्टिक खाद्य पदार्थ तैयार किया जाता है इसकी खली के निर्यात से काफी मात्रा में विदेशी मुद्रा अर्जित की जाती है। सोयाबीन से प्रति इकाई उत्पादन बढाने हेतु निम्न प्रबन्ध करना चाहिए।

बीज दर–

एक हैक्टर की बुवाई हेतु 80–85 प्रतिशत जमाव वाला 75 किग्रा. (1.5 किग्रा./नाली) बीज पर्याप्त होता है।

बीज उपचार–

बीज जनित रोगों से बचाव हेतु सोयाबीन के बीज को 2 ग्राम थीरम 75 डब्लयू.पी. 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यू.पी.पी. (2:1) प्रति किग्रा. बीज की दर से मिलाकर उपचारित करना चाहिए।

राइजोबियम से बीज उपचार–

सोयाबीन के बीजों को बुवाई से पूर्व राईजोबियम जैव उर्वरक से उपचारित किया जाना लाभदायक होता है। औसतन एक किग्रा. बीज के लिए 15–20 ग्राम जैव उर्वरक की आवश्यकता होती है। प्रति है. बीज के लिए 1100–1200 ग्राम जैव उर्वरक की मात्रा टीकाकरण हेतु प्रर्याप्त होती है। एक है. भूमि के लिए आवश्यक 75 किग्रा. बीज के उपचार हेतु 500–600 मि.ली. पानी में 50–60 ग्राम गुड़ घोलकर एक बार उबाल लें। इस घोल के ठण्डा होने के उपरान्त इसमें 1100–1200 ग्राम जैव उर्वरक मिलायें। बीजों को छाया में पक्के फर्श या पोलीथीन शीट पर रखकर ढेर बना लें। इन बीजों पर धीरे–धीरे जैव उर्वरक का घोल डालते हुए हाथों से तब तक मिलाते रहे जब तक सारे बीजों पर एक समान जैव उर्वरक की परत न चढ़ जायें। उपचारित बीजों को छाया में 15–20 मिनट सुखाकर तुरन्त बुवाई कर दें।

बुवाई का समय–

पर्वतीय क्षेत्रों में बुवाई का उपयुक्त समय मई के अन्तिम सप्ताह से जून के दूसरे सप्ताह तक है। भावर तथा तराई में बुवाई का समय जून अन्तिम सप्ताह से जुलाई प्रथम सप्ताह तक है। देर से बुवाई करने पर उपज कम मिलती है।

खेत की तैयारी–

सोयाबीन की खेती के लिए बलुई दोमट मिटटी भूमि सर्वोत्तम है। सामान्तयः मैदानी एवं पर्वतीय क्षेत्रों की सभी प्रकार की मिटटी में इसकी खेती की जा सकती है। पी.एच. मान 6.5–7.0 वाली मृदा सोयाबीन की खेती के लिए सर्वोत्तम होती हे। यदि मिटटी अधिक अम्लीय हो तो मृदा परीक्षण के आधार पर चूने का प्रयोग के उपरान्त पाटा लगाकर खेत को समतल कर लें जिसमें सिंचाई एवं जल निकास की उचित व्यवस्था हो सके।

बुवाई विधि–

बुवाई हल के पीछे 3–4 से.मी. की गहराई पर लाइनों में करनी चाहिए। लाइन से लाइन की दूरी 45 से.मी. रखनी चाहिए। भावर में लाइन से लाइन की दूरी 60 से.मी. रखनी चाहिए। जमाव के 15 से 20 दिन पश्चात् विरलीकरण कर पौधे से पौधे की दूरी 5–7 से. मी. कर देनी चाहिए।

उर्वरकों का प्रयोग–

भूमि की तैयारी के समय 10 टन सड़ी गोबर की खाद डालें इससे जड़ों में ग्रंथियॉ अच्छी बनती है। इसके साथ सामान्यतः उन्नतशील प्रजातियों से अधिक पैदावार लेने के लिए 20 किग्रा. नत्रजन, 60 किग्रा. फास्फोरस तथा 40 किग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर (क्रमशः 0.40:1.20 व 0.80 किग्रा./नाली) प्रयोग करना चाहिए। उर्वरकों की सम्पूर्ण मात्रा अन्तिम जुताई में हल के पीछे कूड़ों में डाले। बोने के 30–35 दिन बाद फसल की एक या दो पौधे उखाड़ कर देख लिया जाय कि जड़ों में ग्रन्थियॉ बनी है या नहीं, यदि ग्रन्थियॉ नहीं बनी हो तो 30 किग्रा. नत्रजन प्रति हैक्टर (600 ग्राम/नाली) की दर से फूल आने से पूर्व प्रयोग किया जाए। जिन खेतों में जस्ते की कमी हो वहॉ पर 25.0 किग्रा. जस्ता (जिंक सलफेट 22–24 प्रतिशत)/है. डालना चाहिए। सोयाबीन की अधिक उपज के लिए 20–30 किग्रा. सल्फर/हैक्टर डालना चाहिए।

खरपतवार नियन्त्रण–

इस समय सोयाबीन की फसल 1 माह से ज्यादा की हो गयी है इसलिए अगर खेत में खरपतवार है तो उनको उचित माध्यम से निकालना अति आवश्यक है। वैसे सोयाबीन में खरपतवार नियंत्रण के लिए बुवाई से 20–30 दिन बाद प्रथम निराई अवश्य कर देनी

चाहिए। इसके 20–25 दिन बाद दूसरी निराई कर देनी चाहिए। बुवाई के बाद खरपतवारनाशी रसायन एलाक्लोर 50 ई.सी. 4 ली. प्रति है. (80 मि.ली. प्रति नाली) या मेटोलाक्लोर 50 ई.सी. 2 ली0 (20 मि.ली. प्रति नाली) 600–700 लीटर पानी में घोल कर बुवाई से 48 घंटे के भीतर छिड़काव करें। यदि आवश्यक हो तो बाद में एक निराई कर देनी चाहिए अथवा 15–20 दिन के बाद इमेजेथापायर 10ः एस.एल. (परष्युट) 1 लीटर प्रति हैक्टर या संकरी पत्तो के अधिक खरपतवार होने पर क्यूजोलोफाप इथायल 5 ई.सी 1 लीटर प्रति हैक्टर की दर से 600–700 ली. पानी में घोलकर छिड़काव करने से खरपतवार नियंत्रण हो जाता है।

सिंचाई एवं जल निकास–

फसल को प्रायः सिचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। लेकिन सूखा पड़ने पर आवश्यकतानुसार एक या दो हल्की सिंचाईयां क्रमशः फूल आने एवं फली बनने तक की अवस्था पर अवश्य करें। खेत में पानी नहीं रूकना चाहिए, इसलिए जल निकास की उचित व्यवस्था करें।

रोग नियंत्रण–

सोयाबीन की फसल में अंकुरण की बहुत बड़ी समस्या है जो बीज एवं पौध गलन रोग से होती है। इसके नियंत्रण हेतु बीज को कार्बोक्सीन + थीरम 3 ग्राम/किग्रा. बीज को शोधित करके बोना चाहिए। खड़ी फसल में अन्य बीमारियॉ जैसे पर्णचित्ती, जीवाणु स्फोट (वैक्टीरियल पष्टयूल्स), ष्यामवर्ण (एन्थ्रक्नोज), पीला मोजैक एवं राइजोक्टानिया वायव अंगमारी दिखाई देती है। राइजोक्टानिया वायव अंगमारी के मुख्य लक्षणों में पर्ण धब्बा, पर्ण अंगमारी एवं पत्तियों का गिरना है। खेत में रोगी पौधे समूहों में पाए जाते है। पत्तियों पर भूरे रंग के छोटे–बड़े धब्बे बन जाते है। टहनियों पर कपास जैसी फफूँदी की सफेद वृद्वि देखी जा सकती है।

इस से फसल को बचाने के लिए ऊपर दी गयी दवाओं से बीजों को उपचारित करके बोयें तथा फसल पर रोग के लक्षण दिखाई पड़ने पर प्रोपिकोनाजोल या टेबुकोनाजोल या हेक्जाकोनाजोल 1 लीटर का 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर पहला छिड़काव रोग दिखाई देने पर करें। दूसरा एवं तीसरा छिड़काव 15–15 दिन के अन्तराल पर करें। गर्मी में गहरी जुताई करें तथा फसल–चक्र अपनायें।

फली अंगमारी के नियंत्रण हेतु टेबुकोनाजोल + सल्फर 1250 ग्राम 500 लीटर पानी में मिलाकर फली बनने की अवस्था तथा 15–20 दिन के अन्तराल पर 2–3 छिड़काव करें। पानी का उचित जल निकास करें।

मुख्य बीमारियाँ

पीला मोजेक

जीवाणु स्पोट

गेरुआ रोग

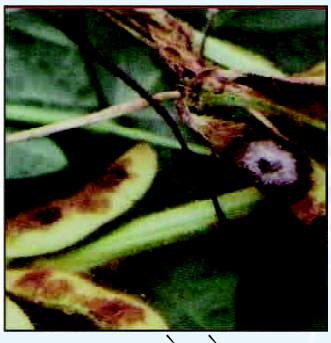
एन्थ्रेक्नोज

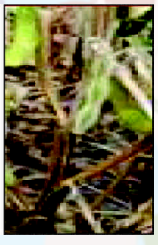
सोयाबीन मोजेक राइजोक्टोनिया/अंगमारी राइजोक्टोनिया/अंगमारी चारकोल रोट

जीवाणुस्फोट एवं पीला चित्तवर्ण रोग से बचाव हेतु रोग अवरोधी प्रजातियॉ जैसे पी.एस. 1092, पी.एस. 1225, पी. एस. 1347, पी.एस.21, पी.एस.23, पी.एस. 25 एवं पी.एस. 26 बोये। फसल में पीला चित्तवर्ण रोग वाहक कीड़ों जैसे सफेद मक्खी की संख्या कम करने के लिए ऑक्सीडिमेटान मिथाइल या मोनोक्रोटोफॉस 1. 0 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर बुवाई के 20, 30, 40 एवं 50 दिन पर छिड़काव करें। पानी की मात्रा प्रति हैक्टर 700–800 लीटर रखें। जीवाणु जनित रोगों में पत्तियों पर आलपिन के सिर के बराबर 1 मि.मी. के पीले धब्बे बनते हैं जो बाद में भूरे पड़ जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 50 डब्लू.पी. 1.5 मि.ग्रा. + स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 15 ग्राम का 500 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर छिड़काव करना चाहिए।

ष्यामवर्ण (फली का झुलसा) रोग में फलियों पर पीले से भूरे धब्बे बनते हैं जिससे दाने छोटे, अपरिपक्व एवं सिकुड़े हुये बनते है। धब्बों पर कवक की वृद्वि साफ–साफ दिखाई पड़ती है। इसकी रोकथाम के लिए मैंकोजेब/ थायोफेनेट मिथाइल 2 किग्रा. या काबेंडाजिम 500 ग्राम मात्रा का 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर की दर से दो छिड़काव करें। पहला छिड़काव लक्षण दिखाई देते समय तथा दूसरा 10 दिन बाद करें। बीमारियों एवं कीट नियंत्रण हेतु एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन मोड्यूल अपनायें।

कीट नियंत्रण–

कमला कीट– बालदार कमला कीट सोयाबीन की पत्तियों को नुकसान पहुँचाने वाला प्रमुख कीट है। मादाएँ इकट्ठे समूह में अण्डे देती है तथा सूडियॉ निकलकर लगभग 3–4 दिनों तक इकट्ठे रह कर पत्तियों को खाती है। यह कीट गहरे पीले रंग का होता है। इसके षरीर पर पीले या भूरे रोयें होते है। इसकी रोकथाम के लिए लेम्डा साइहैलोथ्रिन 5 ई.सी. 250 मि. ली अथवा इमामेक्टिन बेन्जोएट 5 एस.जी. 220 ग्राम अथवा क्लोरान्ट्रानिलिप्रोले 18.5 एस.सी. 150 मि.ली. या ट्राइएजोफॉस 40 ई.सी. 750 मि.ली. का 700–800 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें। कीट की प्रारम्भिक अवस्था में सूड़ी सहित प्रभावित पत्तियों को तोड़कर नष्ट करना भी एक प्रभावी नियंत्रण है।

हरी अर्ध कुण्डलक इल्ली– पत्तियों को नुकसान पहुँचाने वाले अन्य कीटों में भूरी व हरी अर्ध कुण्डलक इल्ली भी प्रमुख है, जो अर्धकुण्डलक बनाती हुई चलती है व पत्तियों के किनारों को खाती है। इसकी रोकथाम के लिए क्लोरान्ट्रानिलिप्रोले 18.5 एस.सी. 150 मि.ली. अथवा इन्डोक्साकार्ब 15.8 ई.सी. 333 मि.ली. का 700–800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से छिडकाव करें ।

तम्बाकू की इल्ली– यह भी सोयाबीन की पत्तियों को क्षति पहुँचाने वाला प्रमुख हानिकारक कीट है। मादा कीट समूह में अण्डे देती है तथा अण्डों से सूड़ियॉ निकलकर समूह में पत्तियों को खाते हुए क्षति पहुँचाती है। इसकी रोकथाम के लिए इन्डोक्साकार्ब 15.8 ई.सी. 333 मि.ली. अथवा क्लोरान्ट्रानिलिप्रोले 18.5 एस.सी. 150 मि.ली. अथवा इमामेक्टिन बेन्जोएट 5 एस.जी. 250 ग्राम का 700–800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें। कीट की प्रारम्भिक अवस्था में सूड़ियों सहित प्रभावित पत्तियों को नोचकर नष्ट करना भी एक प्रभावी नियंत्रण है।

तना छेदक मक्खी (स्टेम फ्लाई)– तना छेदक मक्खी 70–80 : पौधों को ग्रसित करती है जो धात्विक काले रंग की होती है। मादा पत्ती के निचले भाग में अण्डें देती है। अण्डों से डिभक 2–3 दिन में निकल कर तुरन्त पास के तनों में छेद कर पर्णवष्त तक चला जाता है और फिर तनों में घुस कर पौधों को हानि पहुँचाता है। जिससे पौधो की पत्तियॉ पीली पड़ने लगती है। इसकी रोकथाम के लिए क्लोरान्ट्रानिलिप्रोले 18.5 एस.सी. 150 मि.ली. अथवा इन्डोक्साकार्ब 15.8 ई. सी. 333 मि.ली. प्रति हैक्टर को 700–800 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें अथवा फोरेट 10 जी. 15 किग्रा. प्रति हैक्टर प्रयोग करें अथवा थियामेथोक्जाम 30: एफ.एस. 10 ग्राम/किलो बीज की दर से बीजोंपचार करें।

छल्ला भृंग (गार्डिल बीटल)– यह कीट 10–30 : तक पौधों को ग्रसित करता है। मध्यम आकार की वयस्क मादा तने तथा टहनियों पर दो छल्ले बनाती है

कमला कीट

तम्बाकू इल्ली

हरी अर्धकुण्डलक इल्ली

तना छेदक एवं चक्रभृंग कीट

पत्ती मरोड़ कीट | सफेद मक्खी द्वारा हानि | फली बग

तथा छल्लों के बीच छिद्र में पीले अण्डे देती है। गिडार अन्दर ही अन्दर खाती है जिससे छल्लों के ऊपर का हिस्सा सूख जाता है। इसके नियंत्रण हेतु फसल में क्लोरान्ट्रानिलिप्रोले 18.5 एस.सी. 150 मि.ली. अथवा ट्रायएजोफास 40 ई.सी. 625 मि.ली./है. की दर से 700–800 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

सफेद मक्खी– सफेद मक्खी का वयस्क छोटे आकार का होता है। यह मक्खी अण्डे पत्तियों की निचली सतह पर देती है तथा पीला विषाणु रोग फैलाती है। इसकी नियंत्रण के लिए थायोमेथोक्जाम 30: एफ.एस. का 10 एम.एल./हैक्टर की दर से बीजोपचार करें अथवा आक्सीडेमेटॉन मिथाइल 25 ईसी. 2 मि.ली./लीटर

कीटो का जैविक नियन्त्रण

विषाणु प्रभावित इल्ली

फफूँदी प्रभावित इल्ली

यूकैन्थिकोना अण्डे

यूकैन्थिकोना व्यस्क कीट

जीवाणु संक्रमण

कोक्सिनेला ग्रब

कोक्सिनेला व्यस्क कीट

मकड़ी

पानी में घोल बनाकर खेत में छिड़काव करें।

सोयाबीन में समन्वित कीट प्रबन्धन–

- ग्रीष्म कालीन जुताई तथा कार्बनिक खाद जैसे नीम की खली, कम्पोस्ट आदि का प्रयोग।
- रोगरोधी व कीट प्रकोप से सहनशील प्रजातियॉ जैसे वी.एल.एस.–47, षिवालिक, पी.एस.–25 आदि पर्वतीय क्षेत्र में तथा पी.एस.–1042, पी. एस.–1347, पी.एस.–1225, पी.एस.–21, पी. एस.–23, पी.एस.–24, पी.एस.–26 आदि मैदानी क्षेत्र में बोयें।
- बुवाई से पूर्व 250 ग्राम ट्राइकोडर्मा हरजियानम को एक कुन्तल पूर्ण रूप से सड़ी एवं नम गोबर की खाद में अच्छी प्रकार मिला ले तथा 15–20 दिनों के लिए उसे छाया मे रखे। बुवाई से पूर्व ट्राइकोडर्मा एवं कम्पोस्ट के इस मिश्रण को खेत मे मिला दे।
- बुवाई के लिए सदैव स्वस्थ एवं प्रमाणित बीजों का ही प्रयोग करें। बुवाई से पूर्व बीजों का 10 ग्राम ट्राइकोडर्मा हरजियानम या बीज को कार्वोक्सिन + थिरम 3 ग्राम/किग्रा. बीज को उपचारित करके बोना चाहिए।
- कमला कीट व तम्बाकू की इल्ली के अंडे तथा प्रारम्भिक अवस्था की सूड़ियॉ जो कि झुंड में खाती हैं, पत्ती तोडकर नष्ट कर दें। इनके प्रकोप के स्थान पर रसायन कीट नाशी का छिड़काव करके भी इन्हें नष्ट कर दें।
- प्रकाश प्रपंच लाइट ट्रैप तथा फेरोमेन–प्रपंच का प्रयोग करें। खेत में चिड़ियों के बैठने के लिए टी–षक्ल की खूँटियाँ (पौधों से ऊँची) लगाए।
- फसल चक्र अपनाए एवं खेत को खरपतवार से मुक्त रखें।

उपज–

उपरोक्त उन्नत विधि से 30–35 कु/है. उपज प्राप्त की जा सकती है।

भंडारण–

सोयाबीन को सुखाकर (जब दानों में 10–12 प्रतिशत नमी रह जाये) जूट के थैलों में भर कर ठण्डे एवं सूखे भण्डारों में भूमि से लगभग 30 सें.मी. ऊपर रखकर भण्डारण करें। षीतगृह में भंडारण करने से बीज का जमाव अच्छा रहता है।

◆◆◆

उन्नत मंडुवा (रागी) उत्पादन तकनीक

डा० बी०डी० सिंह
प्राध्यापक (सस्य विज्ञान), प्रसार शिक्षा निदेशालय
गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल : bdsingh5@gmail.com

खरीफ में उगाये जाने वाली मंडुवा जिसे रागी भी कहते है, मोटे अनाज परिवार की प्रमुख फसल हैं। इसकी खेती घाटी से लेकर 2500 मीटर तक की ऊँचाई पर सफलता पूर्वक की जा सकती है। खरीफ में उगायी जाने वाली यह फसल अधिकांशतः ढालू, कम उपपाऊ, वर्षाश्रित एवं सीमान्त भूमि में उगायी जाती है, जो विपरीत परिस्थितियों में भी कम लागत में औसत उत्पादन देने की क्षमता रखती हैं। फसल को उगाने हेतु कम पोषक तत्वों की आवश्यकता, सूखा व षीत सहने तथा कीट एवं रोग प्रतिरोधी क्षमता अधिक पायी जाती है। पर्वतीय जन साधारण की संस्कृति एवं पारिस्थितिकीय संतुलन बनाए रखने में भी इस फसल का विशेष योगदान है। परम्परागत दृष्टि से खाद्य सुरक्षा, कुपोषण से सुरक्षा एवं त्यौहार व संस्कृति से जुड़े होने के कारण इसका महत्व अन्य फसलों की तुलना में कहीं ज्यादा है। पहाड़ों में, ये फसलें गरीब परिवार के जीविकोपार्जन के प्रमुख साधन होते हैं। मंडुअे से अनेक व्यंजन जैसे रोटी, लेसू रोटी, लुवा, फाना, बिस्किट, केक, नमकीन, पापड़ जैसे पौष्टिक उत्पाद भी बनाये जा रहे हैं। अनेक स्वंय सेवी संस्थाओं द्वारा इसके मूल्यवर्धन एवं पौष्टिक उत्पाद तैयार कर कृषि मेले, ट्रेड फेयर, विभिन्न महोत्सवों में विपणन कर कृषकों की आर्थिकी मजबूत कर रहे है। मंडुआ का सेवन गर्भवती महिलाओं के लिए बहुत लाभदायक होता है, क्योंकि इसमें 76 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट व 0.3 प्रतिशत कैल्सियम होता है। भरपूर पौष्टिक गुणों के कारण विगत कुछ वर्षो से इस फसल की मांग वर्ष दर वर्ष बढ़ रही है परिणामस्वरूप इसके क्षेत्रफल में विस्तार होने के साथ–साथ कृषकों को भी अच्छा दाम मिल रहा है। सारणी 01 एवं 02 मंडुवा में पाये जाने वाले पोषक तत्वों

सारणी –1 : धान्य फसलों की तुलना में मंडुवा से मिलने वाले भरपूर पोषक तत्व

पोषक तत्व	मंडुवा	गेहूँ	चावल
प्रोटीन (ग्रा./100 ग्रा.)	7.3	11.8	6.8
वसा (ग्रा./100 ग्रा.)	1.3	1.5	0.5
ऊर्जा (किलो कैलोरी)	328	346	345
रेशा (ग्रा./100 ग्रा.)	3.6	1.2	0.2
खनिज लवण (ग्रा./100 ग्रा.)	2.7	1.5	0.7
कैल्शियम (मि.ग्रा./100 ग्रा.)	344	41	10
लाईसिन (ग्रा./100 ग्रा. प्रोटीन)	3.5	2.9	3.7
मिथायोनीन (ग्रा./100 ग्रा. प्रोटीन)	3.4	1.5	2.4
सिस्टीन (ग्रा./100 ग्रा. प्रोटीन)	2.2	2.2	1.4
ट्रिप्टोफेन (ग्रा./100 ग्रा. प्रोटीन)	1.6	1.1	1.4
आईसोल्युसिन (ग्रा./100 ग्रा. प्रोटीन)	6.4	3.3	3.9
लौह (मि.ग्रा./100 ग्रा.)	3.9	3.5	1.8
थायमीन (मि.ग्रा./100 ग्रा.)	0.5	0.41	0.41
राईबोफ्लेबिन (मि.ग्रा./100 ग्रा.)	0.11	0.1	0.04

सारणी 2: मंडुवा एवं धान के पुवाल की रासायनिक संरचना (प्रतिशत)

फसल	एल्बुनाईड्स	वसा	कार्बोहाईड्रेट्स	कच्चा रेशा	खनिज	नमी
मंडुवा	1.90	0.48	49.10	28.90	5.24	14.60
धान	1.20	1.80	47.00	25.70	15.80	8.50

की महत्ता को दर्शाता है।

कृषि विभाग, उत्तराखण्ड के आकड़ों के अनुसार मंडुआ की खेती लगभग 1.37 लाख है. क्षेत्रफल में की जाती है, जिससे प्रति हेक्टेयर 13.85 क्वि0 उत्पादकता के साथ लगभग 1.9 लाख मैट्रिक टन उत्पादन होता है। वैज्ञानिक विधि से खेती कर उत्पादकता में काफी वृद्धि की जा सकती है। यदि हम उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्र के इतिहास पर नजर डालें तो वहाँ भी पारम्परिक रूप से उगाए जाने वाले ''बारहनाजा फसल पद्धति'' में जो दो प्रमुख फसलें थी वो मडुवा एवं मादिरा थी। बारहनाजा पद्धति में एक ही खेत में 10–12 फसलें एक साथ उगायी जाती हैं। इन फसलों में मडुवा, मादिरा के साथ दलहनें जैसे गहत, भट्ट, लोबिया, राजम, कुटटू (बक व्हीट), रामदाना इत्यादि बोया जाता है जिससे ये एक दूसरे के पोषण की पूर्ति करते रहें। चूँकि इस विधि से पर्याप्त मात्रा में स्वादिश्ट एवं गुणवत्ता युक्त चारा भी मिलता है, अतः यह खेती एवं पशुपालन के पारम्परिक रिष्ते को भी मजबूत बनाता है। यद्यपि पर्वतीय क्षेत्रों में कृषक फसल की सीमान्त भूमि, परम्परागत बीज, मिश्रित खेती, रासायनिक उर्वरकों का न के बराबर प्रयोग, अधसड़े गोबर की खाद का प्रयोग और समय पर खरपतवार नियंत्रण न करने के कारण समुचित पैदावार नहीं ले पाते। यदि नवीनतम तकनीक का प्रयोग करते हुए फसल की खेती की जाये तो निश्चित रूप से काफी अधिक उपज ले सकते है।

उन्नतशील प्रजातियाँ–

किसी भी फसल के समुचित पैदावार का आधार गुणवत्तायुक्त उन्नतशील बीज होता है, जो कि मडुवा पर भी लागू होता है। मडुवा की वी.एल. मडुवा 149, वी. एल. मडुवा 146, वी.एल मडुवा 315, वी.एल मडुवा 324, वी.एल मंडुवा 347, वी.एल मंडुवा 352, वी.एल मंडुवा 348 पंत रानी चौरी मडुवा 1, पंत रानी चौरी मडुवा 2 जैसी उन्नत प्रजातियां हैं। इन सभी प्रजातियों के पकने की अवधि लगभग 95–110 दिन है तथा उन्नत विधि से खेती करने पर लगभग 20–23 क्विंटल/हे. पैदावार मिलता है। इन प्रजातियों से पर्याप्त मात्रा में हरा चारा भी मिलता है जो इनके महत्ता को और भी बढ़ाता है। सारणी–03 भी यह दर्शाता है कि उन्नत प्रजातियों के प्रयोग से उपज में वृद्धि होता है, फलतः कृषक को लाभ होगा।

बुवाई का समय–

मडुवा की बुवाई का समय मई द्वितीय पखवाड़ा से जून प्रथम पखवाड़ा है। बुवाई के समय में विलम्ब नहीं करना चाहिए, अन्यथा उपज प्रभावित होती है।

सारणी 3 : कृषि विज्ञान केन्द्र अल्मोड़ा द्वारा वर्ष 2016–2019 में मंडुवा पर लगाये गये प्रथम पंक्ति प्रदर्शनों से प्राप्त आशातीत परिणाम

प्रजाति	क्षेत्रफल	प्रदर्शन संख्या	उपज (क्विंटल/है.)		उपज वृद्धि (प्रतिशत)
			कृषक पद्धति	प्रदर्शन	
वी. एल मडुआ 324	2.0	15	11.60	16.43	41.60
वी. एल मडुआ 324	3.00	30	11.60	16.50	42.24
वी. एल मडुआ 324	2.00	14	12.8	17.1	33.59
वी. एल मडुआ 324	2.00	40	12.40	16.95	36.29

बीज दर–

अच्छी तरह तैयार और जल निकास व्यवस्था युक्त खेत में फसलों की 10 किग्रा/है. बीज (200 ग्राम/नाली) की दर से पंक्तियों में बुवाई करनी चाहिए। कतार से कतार की दूरी 20 सेमी. रखते हुए बीज को 3–4 सेमी. गहराई में डालना चाहिए। यद्यपि यदि छिटकवाँ विधि से बुवाई कर रहे हों तो बीज दर 11 किग्रा/है. रखें। बुवाई के लगभग 1 माह बाद निराई करते समय पौधों की छँटनी कर पौध से पौध की दूरी 10 सेमी. रख लें। बुवाई पूर्व जैव रसायन ''ट्राइकोडर्मा'' 10 ग्राम/किग्रा बीज की दर से उपचारित कर बुवाई करने से फसल में रोगों का प्रकोप कम होता है, फलस्वरूप पैदावार ज्यादा मिलता है।

उर्वरक प्रबन्ध–

अच्छे उत्पादन हेतु यह भी आवश्यक है कि बुवाई पूर्व भली भाँति सड़ी गोबर की खाद 4–8 टन/है. का प्रयोग करें। इसे बुवाई से 15–20 दिन पहले खेत में जुलाई के समय मिला देना चाहिए। इसके अतिरिक्त फसल की 40 किग्रा नत्रजन, 20 किग्रा फास्फोरस एवं 20 किग्रा पोटाश/ है. की मांग रहती है। उर्वरकों की पूर्ति के लिए नत्रजन की आधी, फास्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा अंतिम जुलाई के समय खेत में डाल देनी चाहिए। नत्रजन की शेष आधी मात्रा बुवाई के करीब 25–30 दिन बाद प्रथम निराई के पश्चात् जब खेत में नमी हो डाल देनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण–

चूँकि मडुवा खरीफ की फसल हैं अतः इसमें वर्षा उपरान्त भारी संख्या में खरपतवार उग आते हैं, जिनका समुचित नियंत्रण आवश्यक होता है। इस फसल में प्रमुख खरपतवार आग्जेलिस लैटिफोलिया, जिसे परम्परागत रूप से चिलमोड़ी, तिपतिया अथवा खट्टी– मीठी घास भी कहते हैं, इसके अतिरिक्त अगरेटम कान्जाइडिस, कमोलेना बेंगालेंसिस, डेजिटैरिया सैंगुनैलिस हैं जो पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।

पैदावार में कमी मुख्यतः वर्षा, खरपतवार की सघनता, खरपतवार के वानस्पतिक विकास एवं उर्वरक की मात्रा पर निर्भर होती है। सभी खरपतवार फसल के साथ पोषक तत्व, नमी, जगह के लिए प्रतिस्पर्धा रखते हुए मुख्य फसल के उपज को कम कर देते हैं। फसल एवं खरपतवार के मध्य यह स्पर्धा बुवाई बाद लगभग 25–40 दिनों तक अधिकतम होती है। अतः इस अवधि तक सभी खरपतवार खेत से निकाल देना चाहिए। खरपतवार नियंत्रण का सुलभ तरीका है खरपतवारनाशी– आइसोप्रोट्यूरान 0.75 किग्रा/है. का बुवाई बाद परन्तु अंकुरण पूर्व प्रयोग एवं बुवाई के 1 माह बाद निराई –गुड़ाई। यद्यपि बुवाई के 15–20 दिन एवं 30–35 दिन बाद दो निराई कर भी फसल को खरपतवार मुक्त रख सकते हैं, परन्तु यह विधि पहले वाले की तुलना में ज्यादा खर्चीली होगी।

फसल सुरक्षा–

फसल सुरक्षा की बात करें तो मडुवा में झोंका रोग जिसमें पत्तियों पर धूसर रंग के आँख के आकार के धब्बे बन जाते हैं, के नियंत्रण हेतु हल्दी पाउडर 2 ग्राम/लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए। सर्कोस्पोरा पर्णचित्ती रोग के नियंत्रण हेतु रासायनिक दवा क्लोरोथेनोलिन 1 मिलीग्राम/लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

कीटो में कुरमुला एवं तना बेधक कीट से फसल अधिकतम प्रभावित होती है। कुरमुला नियंत्रण हेतु प्रकाश प्रपंच का प्रयोग करें। खड़ी फसल में पहली निराई– गुड़ाई के पश्चात् क्लोरपाइरीफास 20 ई.सी दवा 80 मिलीलीटर/नाली का प्रयोग करना चाहिए। तना बेधक से बचाव हेतु बायो लैब दवा की 3 मिली. मात्रा को प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

उपज–

इस तरह यदि कृशक उन्नत बीज, समुचित उर्वरक प्रयोग, खरपतवार एवं कीट रोग प्रबंधन कर उन्नतशील खेती करें तो 20–23 क्विटल/है. उपज ले सकेंगे।

◆◆◆

दलहनी फसलों की उत्पादन तकनीकी

डा० बी०एस० कार्की
प्राध्यापक (सस्य विज्ञान), प्रसार शिक्षा निदेशालय
गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल : aticgbpuat@gmail.com

दलहनी फसलें फैबेसी (लेग्यूमिनोसी) कुल के पौधे हैं जिनकी फलियों में विभिन्न आकार, रूप एवं रंग के 1 से 12 बीज उत्पन्न होते हैं। इस कुल के कुछ फसलों का उपयोग चारे के रूप में तथा कुछ फसलों के दानों का उपयोग खाद्य पदार्थ के रूप में किया जाता है। दलहन फसल का प्रयोग उन्हीं फसलों के लिए किया जाता है जिनके सूखे दानों का उपयोग दाल के लिए किया जाता है। इनमें वे फसलें सम्मिलित नहीं हैं जिन्हें मुख्य रूप से तेल के लिए (जैसे सोयाबीन एवं मूँगफली) तथा वे फलीदार फसल (रिजका/लूसर्न एवं बरसीम) जिनके बीजों का उपयोग केवल बुवाई के लिए ही किया जाता है।

दलहनी फसलों की महत्ता–

भारतीय कृषि में दलहनी फसलों का महत्वपूर्ण स्थान है। दालें शाकाहारी मनुष्यों हेतु प्रोटीन का मुख्य स्त्रोत होने के साथ–साथ इनमें सूक्ष्म पोषक तत्वों, घुलनशील रेषा, बिटामिन बी आदि भी पर्याप्त मात्रा में मौजूद रहते हैं। दलहनी फसलों की जड़ों में उपस्थित राइजोबियम जीवाणु वायुमण्डलीय नत्रजन का स्थिरीकरण कर अपनी नत्रजन की आवश्यकता की पूर्ति स्वयं ही कर लेते हैं तथा कुछ हिस्सा भूमि में संचित हो जाने के कारण मिट्टी की उर्वरता में भी वृद्धि हो जाती है। कुछ दलहनी फसलों की हरी फलियाँ सब्जी बनाने हेतु प्रयोग में लायी जाती है तथा कुछ दलहनी फसलें पशुओं हेतु पौष्टिक हरे चारे के रूप में इस्तेमाल की जाती है।

भारत में दालों का उत्पादन–

भारत विश्व में दालों का सबसे बड़ा उत्पादक, उपभोक्ता तथा आयातक राष्ट्र है जिसका वैष्विक स्तर पर क्रमशः 25, 27 तथा 14 प्रतिशत का योगदान है। वर्ष 2018–19 के आकड़ों के अनुसार भारत में कुल 27.09 मिलियन हैक्टर क्षेत्रफल में दालों की खेती की गयी, जिससे 23.22 मिलियन टन उत्पादन प्राप्त किया गया तथा कुल उत्पादकता 8.57 कुन्तल प्रति हैक्टर रही। सन् 2019 के आकड़ों के अनुसार प्रति व्यक्ति प्रति दिन दालों की उपलब्धता 47.98 ग्राम रही है। विश्व में सबसे बड़ा दाल उत्पादक राष्ट्र होने के बावजूद भी भारत अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए दूसरे राष्ट्रों से दालें आयात करता है। सन् 2019–20 में भारत देश द्वारा अन्य देशों से 2.98 मिलियन टन दालों का आयात किया गया, जिस पर लगभग 20,000 करोड़ विदेशी मुद्रा व्यय करनी पड़ी।

दलहनी फसलों की कम उत्पादकता के कारण–

- क्षेत्र विशेष हेतु उच्च गुणवत्ता व कम समय में तैयार होने वाली प्रजातियों की उपलब्धता न होना।
- दलहनी फसलों का असिंचित एवं कम उर्वर भूमि में उगाया जाना।
- उर्वरकों का असंतुलित प्रयोग।
- वैज्ञानिक खेती सम्बन्धी जानकारी का अभाव।
- खेती हेतु समय पर मानव श्रम उपलब्ध न होना।
- विपणन हेतु उचित बाजार का अभाव तथा उत्पाद का लाभकारी मूल्य न मिल पाना।

दलहनों से अधिक उत्पादन लेने हेतु प्रमुख बिन्दु–

(अ) संस्तुत प्रजातियों का प्रयोग–

चना– छोटे दाने वाली पंत जी 114, मध्यम आकार के दाने वाली पंत जी 186, पंत जी 3, पंत जी 4, पंत जी 5 व पूसा 547, मोटे दाने वाली पूसा 256 व पूसा 362 तथा काबुली चना की पूसा 1003, पूसा 1053, पंत काबुली चना 1 व पंत काबुली चना 2 प्रमुख प्रजातियाँ हैं।

मसूर– छोटे दाने वाली पंत एल 406, पंत एल 8, पंत

एल 9, वी.एल. मसूर 5, वी.एल. मसूर 125, वी.एल. मसूर 126 व वी.एल. मसूर 507 तथा बड़े दाने वाली पंत एल 5, पंत एल 7, डी.पी.एल. 15 व डी.पी.एल. 62 प्रमुख प्रजातियाँ हैं। इनमें विवेकानन्द पर्वतीय अनुसंधान संस्थान अल्मोड़ा से विकसित प्रजातियों की उत्पादकता 15–16 कुन्तल प्रति हैक्टर तथा अन्य प्रजातियों की 18–20 कुन्तल प्रति हैक्टर है।

मटर– बौनी प्रजाति में पंत मटर 13 व पंत मटर 14 पर्वतीय क्षेत्रों के लिए तथा पंत मटर 25, पंत मटर 74, पंत मटर 155 व पंत मटर 250 तराई व मैदानी क्षेत्रों के लिए तथा सामान्य प्रजाति में वी.एल. मटर 40 व वी. एल. मटर 42 पर्वतीय क्षेत्रों के लिए तथा पंत मटर 42 व पंत मटर 243 तराई व मैदानी क्षेत्रों के लिए संस्तुत हैं।

अरहर– अरहर की उन्नतशील प्रजातियों में पंत अरहर 3, पंत अरहर 291, पंत अरहर 6, यू.पी.ए.एस. 120, पूसा 992 तथा वी.एल. अरहर 1 प्रमुख हैं। इनमें वी.एल. अरहर 1 प्रजाति लगभग 12–15 कुन्तल प्रति हैक्टर तथा अन्य प्रजातियाँ 18–20 कुन्तल प्रति हैक्टर तक उपज देती हैं।

उर्द– उर्द की उन्नत प्रजातियों में पंत उर्द 19, पंत उर्द 35, पंत उर्द 10, पंत उर्द 40, पंत उर्द 7, पंत उर्द 8, पंत उर्द 9 तथा पंत उर्द 31 प्रमुख हैं। पंत उर्द 31 प्रजाति खरीफ एवं जायद दोनों मौसमों हेतु संस्तुत है जो पकने में लगभग 70–75 दिन लेती है। अन्य प्रजातियों की परिपक्वता अवधि लगभग 75–85 दिन है। अरहर की उपरोक्त प्रजातियाँ 12–15 कुन्तल प्रति हैक्टर उपज देती हैं।

मूँग– मूँग की संस्तुत प्रजातियों में पंत मूँग 2, पंत मूँग 4, पंत मूँग 5, पंत मूँग 8 व पंत मूँग 9 प्रमुख हैं, इनमें पंत मूँग 5 प्रजाति खरीफ के साथ–साथ जायद में भी बुवाई हेतु संस्तुत है। ये सभी प्रजातियाँ पकने में लगभग 65–70 दिन लेती हैं तथा 12–15 कुन्तल प्रति हैक्टर उपज देती हैं।

राजमा– तराई एवं भावर क्षेत्रों के लिए पीडीआर 14 (उदय) संस्तुत की गयी है जो 90–100 दिन में तैयार होती है व 15–20 कुन्तल प्रति हैक्टर उपज देती है। पर्वतीय क्षेत्रों हेतु वी.एल. राजमा 63 (दाना हल्का लाल रंग) तथा वी.एल. राजमा 125 (दाना सफेद रंग) उन्नत प्रजातियाँ हैं, जो 10–12 कुन्तल प्रति हैक्टर उपज देती हैं तथा पकने में क्रमशः 70–75 तथा 75–90 दिन लेती हैं।

गहत– गहत राज्य के पर्वतीय क्षेत्रों में उगायी जाने वाली मुख्य दलहनी फसल है। वी.एल. गहत 1, वी.एल. गहत 8, वी.एल. गहत 10, वी.एल. गहत 15 व वी.एल. गहत 19 प्रमुख प्रजातियाँ हैं जो पकने में क्रमशः 150–155 दिन, 125–130 दिन, 110–115 दिन, 98–105 दिन व 88–94 दिन लेती हैं। ये सभी प्रजातियाँ 10–12 कुन्तल प्रति हैक्टर तक औसत उपज देती हैं।

नौरंगी– यह मध्यम से ऊँचाई वाले पर्वतीय क्षेत्रों की मुख्य दलहनी फसल है। नौरंगी की पी.आर.आर. 1 (दाना काला) तथा पी.आर.आर. 2 (दाना हल्का पीला) प्रजातियाँ क्रमशः प्रदेश स्तर तथा राष्ट्रीय स्तर पर विमोचित की गयी हैं जो औसतन 140 दिन में पककर तैयार हो जाती हैं व 15–16 कुन्तल तक उपज देती हैं।

(ब) बीज की मात्रा एवं बुवाई का समय–

चना, मसूर व मटर– चने की छोटे व मध्यम आकार के बीजों वाली प्रजातियों का 60–80 किग्रा. तथा मोटे दाने वाली प्रजातियों का 80–100 किग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त रहता है। बीज की बुवाई 30–45 से.मी. की दूरी पर पंक्ति में करनी चाहिए। पर्वतीय क्षेत्रों में मध्य अक्टूबर से नवम्बर के प्रथम सप्ताह तक तथा तराई व मैदानी क्षेत्रों में नवम्बर का प्रथम पखवाड़ा बुवाई हेतु उपयुक्त रहता है। देरी से बुवाई की दशा में दिसम्बर के प्रथम पखवाड़े तक बुवाई कर लेनी चाहिए।

मसूर की छोटे व मध्यम आकार की दाने वाली प्रजातियों का 30–40 किग्रा. तथा बड़े दाने वाली प्रजातियों का 50–55 किग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त रहता है। देरी से बुवाई की दशा में 25 प्रतिशत बीज की मात्रा बढ़ाकर प्रयोग करना चाहिए। बुवाई हेतु पर्वतीय क्षेत्रों में मध्य अक्टूबर से नवम्बर का प्रथम सप्ताह तथा तराई व मैदानी क्षेत्रों में नवम्बर का प्रथम पखवाड़ा एवं देरी से बुवाई की दशा में दिसम्बर का द्वितीय सप्ताह उचित रहता है। बुवाई पंक्ति से पंक्ति 25 से.मी. की दूरी पर तथा विलम्ब की दशा में पंक्ति से पंक्ति की दूरी

घटाकर 15–20 से.मी. कर देनी चाहिए।

मटर की सामान्य प्रजातियों का 80–100 किग्रा. तथा बौनी प्रजातियों का 120 किग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त रहता है। बुवाई हेतु पंक्ति से पंक्ति की दूरी क्रमशः 30 से.मी. तथा 20–25 से.मी. रखनी चाहिए। पर्वतीय क्षेत्रों में अक्टूबर से नवम्बर मध्य तक का समय बुवाई हेतु उचित रहता है।

अरहर, उर्द एवं मूँग– अरहर का 15–20 किग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त रहता है। अल्प से मध्यम समय में पकने वाली प्रजातियों को 60 से.मी. तथा अपेक्षाकृत ज्यादा समय में पकने वाली प्रजातियों को 75 से.मी. की दूरी पर पंक्ति में बोना चाहिए। बुवाई हेतु पर्वतीय क्षेत्रों में मध्य अप्रैल से मध्य मई तक तथा तराई व मैदानी क्षेत्रों में जून मध्य तक का समय उपयुक्त रहता है।

उर्द एवं मूँग की खरीफ मौसम में बुवाई हेतु 12–15 किग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त रहता है। बीज की बुवाई पंक्ति से पंक्ति 45 से.मी. की दूरी पर करनी चाहिए। बुवाई हेतु पर्वतीय क्षेत्रों में जून का द्वितीय पखवाड़ा तथा तराई, भावर व मैदानी क्षेत्रों में जुलाई के मध्य से अगस्त के द्वितीय सप्ताह तक का समय उचित रहता है। जायद मौसम में बीज की मात्रा बढ़ाकर उर्द की 30–35 किग्रा. तथा मूँग की 25–30 किग्रा. प्रति हैक्टर कर देनी चाहिए। उर्द की बुवाई हेतु फरवरी अन्तिम सप्ताह से मार्च के प्रथम पखवाड़े तक तथा मूँग की बुवाई हेतु मार्च के द्वितीय पखवाड़े से अप्रैल के प्रथम सप्ताह तक का समय उचित रहता है।

राजमा, गहत व नौरंगी (राइसबीन)– राजमा का 70–75 किग्रा., गहत का 20–25 किग्रा. तथा नौरंगी का 15–20 किग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त रहता है, जिनकी बुवाई क्रमशः 30 से.मी., 30–35 से.मी. तथा 40–45 से.मी. पंक्ति से पंक्ति की दूरी पर करनी चाहिए।

राजमा की बुवाई के लिए पर्वतीय क्षेत्रों में जून का द्वितीय पखवाड़ा तथा तराई व भावर क्षेत्रों में जायद मौसम में फरवरी का प्रथम पखवाड़ा एवं रबी मौसम में अक्टूबर का द्वितीय पखवाड़ा उचित है। गहत की बुवाई जून के प्रथम पखवाड़े में तथा नौरंगी की बुवाई ऊँचे पर्वतीय क्षेत्रों में मई के द्वितीय पखवाड़े में तथा निम्न व मध्यम ऊँचाई वाले पर्वतीय क्षेत्रों में जून के प्रथम पखवाड़े में करनी चाहिए।

(स) बीज का उपचार–

बीज अथवा पौध गलन बीमारी से रोकथाम हेतु बुवाई से पूर्व बीज का उपचार कर लेना चाहिए। इसके लिए थीरम 2.0 ग्राम तथा कार्बेन्डाजिम 1.0 ग्राम प्रति किग्रा. बीज की दर से प्रयोग करना चाहिए। बीजों को जैव नियंत्रक जैसे ट्राइकोडर्मा पाउडर के छोटे बीजों के लिए 5 ग्राम तथा बड़े आकार के बीजों के लिए 8–10 ग्राम प्रति किग्रा. बीज की दर से प्रयोग करना चाहिए।

जिस खेत में दलहनी फसल पहली बार बोयी जा रही हो, बीजों को विशिष्ट राइजोबियम कल्चर से भी उपचारित कर लेना चाहिए। अरहर, चना, उर्द, मूँग व नौरंगी के लिए ब्रैडीराइजोबियम प्रजाति, राजमा के लिए राइजोबियम फैजियोलाई तथा मसूर व मटर के लिए राइजोबियम लेग्यूमिनोसेरम नामक जीवाणुओं का कल्चर प्रयोग किया जाता है। कल्चर की 200 ग्राम मात्रा 10 किग्रा. बीज के उपचार हेतु पर्याप्त रहता है। बीजों को फफूँदीनाशी एवं कीटनाशक रसायनों से उपचारित करने के पश्चात् ही राइजोबियम कल्चर से उपचारित करना चाहिए।

(द) खाद एवं उर्वरक प्रबन्धन–

फसल से अच्छी उपज लेने हेतु खाद के साथ–साथ उर्वरकों का संतुलित मात्रा में प्रयोग करना भी आवश्यक है। गोबर अथवा कम्पोस्ट खाद उपलब्ध होने पर क्रमशः 6–8 टन अथवा 4–5 टन प्रति हैक्टर खेत की तैयारी करते समय प्रयोग करना चाहिए। दलहनों में सामान्यतया 15–20 किग्रा. नत्रजन, 40–50 किग्रा. फॉस्फोरस तथा 20–30 किग्रा. पोटाश तत्व प्रति हैक्टर प्रयोग करें। राजमा की फसल वायुमंडलीय नत्रजन के स्थिरीकरण में सक्षम नहीं है। अतः इसकी फसल में 80–100 किग्रा. नत्रजन प्रयोग करना चाहिए तथा फॉस्फोरस 60–80 किग्रा. व पोटाश 40 किग्रा. प्रति हैक्टर प्रयोग करना उचित रहता है। दलहनी फसलों में 25–30 किग्रा. गंधक प्रति हैक्टर प्रयोग करने से उत्पादन में वृद्धि होती है। उर्वरकों की सम्पूर्ण मात्रा अन्तिम जुताई के समय प्रयोग करनी चाहिए।

(य) खरपतवार नियंत्रण–

पहली निराई–गुड़ाई बुवाई के 25–30 दिन पर तथा आवश्यकता पड़ने पर दूसरी निराई–गुड़ाई बुवाई

के 45–50 दिन पर करनी चाहिए। इस प्रक्रिया में फसल में उगे खरपतवार को निकाल लेना चाहिए। रासायनिक विधि से खरपतवार नियंत्रण हेतु पेन्डीमिथेलिन 30 ई.सी. की 3.3 लीटर मात्रा का 500–600 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर की दर से बुवाई के बाद 2–3 दिन के अन्दर छिड़काव करें।

(ट) सिंचाई प्रबन्धन–

सामान्यतया खरीफ की फसल में सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती, किन्तु समय पर वर्षा न होने की स्थिति में आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए। जायद की फसल यथा उर्दण व मूँग में पहली सिंचाई बुवाई के 25–30 दिन बाद तथा बाद में आवश्यकतानुसार 10–15 दिन के अन्तराल पर हल्की सिंचाई करनी चाहिए। ध्यान रहें, फसल में फलियाँ बनते समय नमी का अभाव नहीं होना चाहिए अन्यथा की स्थिति में सिंचाई अवश्य करें।

(ल) फसल सुरक्षा प्रबन्धन–

कीट नियंत्रण– दलहनी फसलों में फली बेधक कीट प्रमुख रूप से नुकसान पहुँचाने वाला कीट है जिसके नियंत्रण हेतु नीम सीड करनैल एक्सट्रेक्ट 5 प्रतिशत अथवा बी.टी. 1.0 किग्रा. प्रति हैक्टर अथवा क्लोरॉन्ट्रानिलिप्रोले 18.5 एस.एल. 125 मि.ली. अथवा इमामेक्टिन बेन्जोएट 5 एस.जी. की 220 ग्राम दवा का 500–600 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर छिड़काव करें।

पत्ती खाने वाली सूड़ियाँ भी दालों की फसलों को हानि पहुँचाते हैं जिनकी रोकथाम के लिए क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. 2 मि.ली. मात्रा प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें। रस चूसने वाले थ्रिप्स एवं माहू के नियंत्रण हेतु इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. 0.2 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर प्रति हैक्टर 500 लीटर घोल का छिड़काव करें।

रोग नियंत्रण–

उकठा, जड़ सड़न व अंगमारी रोगों के नियंत्रण हेतु पूर्व में बताये गये अनुसार 2 ग्राम थीरम एवं 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम अथवा ट्राइकोडर्मा 5–10 ग्राम प्रति किग्रा. बीज की दर से बुवाई से पूर्व बीज शोधित करें।

मटर के बुकनी व रतुआ रोग तथा मसूर के रतुआ रोग के नियंत्रण हेतु 500 मि.ली. ट्राइडोमार्फ 80 ई.सी. का 500–600 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर की दर से 10 दिन के अन्तराल पर 2–3 छिड़काव करें। बुकनी रोग की तीव्रता कम होने पर घुलनशील गंधक 2 ग्राम प्रति लीटर की दर से 500 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर छिड़काव किया जा सकता है।

उर्द एवं मूँग के पीला चित्तवर्ण रोग के नियंत्रण हेतु मिथाइल–ओ–डिमेटॉन 25 ई.सी. 1.0 लीटर प्रति हैक्टर की दर से 500–600 लीटर पानी में घोल बनाकर 2–3 छिड़काव करें। गहत में ष्यामवर्ण रोग तथा नौरंगी में झुलसा रोग के नियंत्रण हेतु 2.5 ग्राम मैन्कोजेब प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें।

(ठ) कटाई व मड़ाई–

पूर्ण रूप से परिपक्व होने पर ही फसल की कटाई करें। कटाई के पश्चात् फसल को 2–3 दिन धूप में फैलाकर सुखा लें तत्पश्चात् मड़ाई कर दानों को अलग कर लें। पके हुए फलियों की तुड़ाई प्रातःकाल अथवा सायंकाल में करें। दानों को अच्छी तरह सुखाकर भंडारित करें।

◆◆◆

सब्जी मटर, प्याज व लहसुन उत्पादन तकनीक

डा० अल्का वर्मा
सहायक प्राध्यापक (सब्जी विज्ञान)
गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल : alkadvs@gmail.com

सब्जी मटर

उत्तर भारत मे षीतकालीन सब्जियों में मटर का स्थान प्रमुख है जबकि पर्वतीय क्षेत्रों में इसे ग्रीष्म ऋतु की फसल के रूप में उगाया जाता है। इसकी खेती मुलायम एवं हरी फलियों हेतु की जाती है। आजकल मटर का प्रसंस्करण डिब्बा–बंदी और फ्रोजन मटर के रूप में काफी लोकप्रिय है, जिससे इसकी उपलब्धता वर्ष भर बनी रहती है। अल्पावधि फसल होने के कारण विभिन्न फसल चक्रों में मटर का समावेश आसानी से हो जाता है, इसलिए यह काफी लोकप्रिय हो रही है। मटर के लिए ठंडी एवं नम जलवायु की आवश्यकता होती है, अतः हमारे देश में अधिकांश स्थानों पर मटर की फसल रबी की ऋतु में उगाई जाती है। इस फसल हेतु 22 डिग्री सेल्सियस का औसत तापमान बीजों के अंकुरण के लिये एवं 10–18 डिग्री सेल्सियस तापमान अच्छी वृद्धि एवं विकास के लिये अनुकूल माना जाता है। मटर के वृद्धि काल में अधिक वर्षा से भी इसके उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः इसकी सफल खेती के लिये उचित जल निकास क्षमता वाली बलुई दोमट मिट्टी, जिसमें पर्याप्त मात्रा में जैविक खाद उपलब्ध हो, इसकी खेती के लिए अच्छी मानी गई है। मटर के लिए भूमि को भली–भॉति तैयार किया जाना आवश्यक है, क्योंकि इसके पौधे भूमि में वायुमण्डलीय नत्रजन का स्थिरीकरण करके भूमि की उर्वरता में वृद्धि करते हैं।

उन्नतशील किस्में–

अगेती– पंत सब्जी मटर–3, अर्किल, वी. एल. अगेती मटर 7 (वी0 एल0–7), काशी नंदनी, पंजाब मटर अगेता 6, आजाद मटर–3, पूसा प्रगति, काशी उदय आदि किस्में बुवाई के लगभग 60–70 दिनों बाद पहली तुड़ाई करने योग्य हो जाती हैं।

मध्यम– काशी शक्ति, लिंकन, आजाद मटर–1, अर्का अजीत आदि किस्में बोने के लगभग 85–90 दिनों बाद पहली तुड़ाई करने योग्य हो जाती हैं

पछेती– बोनविले, जवाहर मटर –1, इनमें खाने योग्य फलियाँ लगभग 100 दिनों में तैयार हो जाती हैं।

बुवाई का समय, बीज दर व उपचारण–

मैदानी क्षेत्रों में 25 अक्टूबर से 15 नवम्बर तक बुवाई का उपयुक्त समय होता है। अगेती किस्मों के लिये 100 किग्रा. प्रति हैक्टर तथा मध्यम व पछेती किस्मो के लिये 80 किग्रा. प्रति हैक्टर बीज की आवश्यकता होती है। बुवाई से पहले बीज को ट्राइकोडर्मा 5 ग्राम प्रति किग्रा. बीज अथवा कार्बेन्डाजिम या बाविस्टिन (2 से 3 ग्राम प्रति किग्रा. बीज) रसायन से उपचारित करना चाहिये, जिससे फसल का बीजजनित एवं मृदाजनित रोगों से बचाव हो सके। यदि किसी खेत मे पहली बार मटर की फसल की बुवाई की जा रही हो, तो बीजों को राइजोबियम कल्चर की 20 ग्राम मात्रा को प्रति किग्रा बीज की दर से उपचारित कर बोने से उपज में 10 से 15 प्रतिशत तक की वृद्धि होती है। बुवाई हेतु अगेती किस्मों के लिये कतार से कतार की दूरी 30 से 35 से0मी0 एवं पौधे से पौधे की दूरी 5–10 से0मी0 रखें, लेकिन मध्य मौसम की किस्मों की बुवाई के लिये पौधों की आपस में दूरी 10 से 12 सेमी एवं कतार से कतार की दूरी 40 से 45 से0मी0 रखनी चाहिए।

उर्वरक प्रबन्ध–

खाद व उर्वरक का उपयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करना लाभकारी रहता है। मटर फली की अच्छी उपज हेतु मृदा में गोबर या कम्पोस्ट खाद 10–15 टन प्रति हैक्टर की दर से खेत की तैयारी के समय डालना चाहिए। रासायनिक खाद के रूप मे 25–30 किग्रा. नत्रजन, 50–70 किग्रा. फास्फोरस एवं

50–60 किग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर बुवाई के समय ही मिट्टी में मिला दें।

खरपतवार नियंत्रण–

प्रायः खरपतवार मटर की फसल को ढक लेते हैं, अतः यह जरूरी है कि उन्हें शुरू की अवस्था में ही निकाल लिया जाय। अच्छी पैदावार लेने के लिये फसल बोने के 35–40 दिन तक फसल को आवश्यकतानुसार खेत की निराई गुड़ाई करके खरपतवारों से मुक्त रखना चाहिये। बुवाई के 3–4 सप्ताह बाद पहली निराई करना आवश्यक होता है। कम से कम 2 बार निराई–गुड़ाई करना चाहिये। खरपतवारों के रासायनिक नियंत्रण हेतु बुवाई के पूर्व फ्ल्यूक्लोरेलिन 1.0 किग्रा. सक्रिय तत्व या बुवाई के बाद पेंडीमेथलीन की 1–1.5 किग्रा. सक्रिय तत्व मात्रा को 600–800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से बुवाई के दो दिन बाद तक मृदा मे पर्याप्त नमी रहने की अवस्था मे छिड़काव करना चाहिए।

सिंचाई–

मटर की फसल को हल्की सिंचाई की जरूरत होती है। गहरी सिंचाई से बीमारी अधिक पनपती है, बढ़वार रूक जाती है तथा पौधा पीला पड़ जाता है, फलस्वरूप उत्पादन घट जाता है। मटर की फसल में दो से तीन सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ती है, जिसमें एक सिंचाई फसल में फूल निकलते समय तथा दूसरी फलियों में दाना बनते समय अवश्य ही करनी चाहिए।

कीट रोग प्रबन्धन–

असिंचित भूमि में देखा गया है कि यदि बीज जमाव के बाद पंक्तियों के बीच खाली जगह में एक गुड़ाई के तुरन्त बाद पलवार बिछा दिया जाय तो न केवल खरपतवार कम उगती हैं अपितु नमी संरक्षण के साथ–साथ उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि मिलती है। मटर को हानि पहुँचाने वाले कीड़ों में तना छेदक, रोयेंदार गिडार तथा तम्बाकू वाला गिडार मुख्य है। इसके अतिरिक्त फसल को लीफ माइनर तथा माहू (एफिड) भी बहुत हानि पहुँचाते हैं। चूर्णित आसिता/चूर्णी फफूँदी/पाउड्री मिल्ड्यू (खर्रा) एवं गेरूई द्वारा भी मटर को बहुत हानि होती है। इनके उचित प्रबंधन के लिये संस्तुत कीटनाशी अथवा कवकनाशी का सही मात्रा में प्रयोग करना चाहिये। तुडाई योग्य फलियों का रंग उसकी किस्म के अनुसार हल्का या गहरा हरा होना चाहिये तथा दाने पूरी तरह से विकसित, मीठे और मुलायम होने चाहिये। मटर की फसल में इसकी फलियों की तुड़ाई का सही समय इसकी किस्म तथा फली के उपयोग पर निर्भर करता है।

उपज–

उन्नतशील विधि से खेती करने पर अगेती फसल में 80 से 100 कुन्तल तथा मुख्य फसल में 100 से 120 कुन्तल हरी फलियॉ प्रति हैक्टर प्राप्त किया जा सकती हैं।

प्याज व लहसुन

प्याज का प्रयोग सलाद के रूप में, कच्चे तथा पकाकर कई तरह से शाकाहारी एवं मांसाहारी भोजन बनाने में, अचार, पाउडर, फ्लेक्स जैसे अभिसंस्कृत रूप में होता है। लहसुन का प्रयोग अचार, चटनी, केचप आदि संसाधित पदार्थो को बनाने में किया जाता है।प्याज व लहसुन दोनों ही ठन्डी जलवायु की फसलें हैं। प्याज की फसल दिन की लम्बाई की अवधि से अधिक प्रभावित होती है। अतः उन्हीं किस्मों को उस क्षेत्र में उगाना चाहिए, जो क्षेत्र उनके लिए उपयुक्त हों। इस पौधे की वानस्पतिक वृद्धि के लिए 15–18^0 से0ग्रे0 का कम तापक्रम तथा कन्द (बल्ब) बनने हेतु लम्बे समय व 20–250 से0ग्रे0 के अधिक तापक्रम और लम्बी प्रकाश अवधि की आवश्यकता होती है। मिट्टी उपजाऊ, भुरभुरी व मध्यम पी0एच0 मान की होनी चाहिए।

उन्नतशील किस्में–

कंद के रंग, मौसम आदि के अनुसार प्याज की किस्मों के चुनाव में विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है। प्रायः यह देखा गया है कि जब किस्मों का चुनाव बिना सोचे समझे किया जाता है, तो उनमें फूल वाले डन्ठल बन जाते हैं, कभी कन्द छोटे व सड़े हुये बन जाते हैं अतः ऐसी परिस्थिति में यदि सही किस्मों का चुनाव किया जाता है तो उचित रहता है। प्याज की उन्नत किस्मों में नासिक रेड, एन–53, वी.एल. 3, भीम शक्ति, भीम सुपर, पूसा रेड, पूसा रतनार, पूसा व्हाइट फ्लैट, पूसा व्हाइट राउंड आदि हैं। लहसुन की उन्नत किस्मों में यमुना सफेद जी–1, यमुना सफेद–2, पंत

लोहित, एग्रीफाउण्ड सफेद व एग्रीफाउण्ड पार्वती हैं।

बीज दर–

प्याज को उसके बीज या कंदो को बोकर उगाया जाता है। उत्तरी भारत में खरीफ के मौसम में मध्य जून से जुलाई के प्रथम सप्ताह तथा रबी के मौसम में नवम्बर के प्रथम सप्ताह में प्याज के बीज की बुवाई करते है। बोने के लिए प्रति हैक्टर 8–10 किग्रा. बीज रबी और 12–15 किग्रा. बीज खरीफ की फसल के लिए पर्याप्त होता है। यदि इसकी बुवाई छोटे कंदो के द्वारा किया जाय तो लगभग 12 कुन्तल कंद एक हैक्टर के लिए पर्याप्त होते है। छोटे कंद खरीफ प्याज की बुवाई के लिए उपयुक्त होते हैं। प्याज की रोपाई में लाइन की दूरी 15 से0मी0 तथा पौध से पौध की दूरी 10 से0मी0 रखते है। उत्तरी भारत के मैदानी भागों में लहसुन को अक्टूबर–नवम्बर में लगाया जा सकता है। बुवाई के लिए गांठो से जुड़े हुए जवों का प्रयोग करते है। एक हैक्टर क्षेत्र के लिए 500–700 किग्रा. जवों की आवश्यकता पड़ती है। अच्छी पैदावार के लिए लहसुन के जवों की 15 सेमी0 पंक्ति से पंक्ति और 7.5 स0मी0 पौधे से पौधे की दूरी पर बुवाई करनी चाहिए।

उर्वरक प्रबन्ध–

लहसुन व प्याज के लिए प्रति हैक्टर गोबर की खाद 20–25 टन, नाइट्रोजन 100 किग्रा. फास्फोरस 50 किग्रा. और पोटाश 60 किग्रा. की आवश्यकता पड़ती है। नाइट्रोजन की एक तिहाई और फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा अन्तिम जुताई के समय देना चाहिए। नाइट्रोजन की शेष मात्रा दो बराबर भागों में बॉटकर बोने के 40 व 60 दिन बाद खड़ी फसल में टापड्रेसिंग के रूप में दें। सिंचाई भूमि तथा जलवायु के ऊपर निर्भर करती है। सामान्य रूप से 10–15 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई की जाती है। ये दोनों उथली जड़ वाली फसलें है अतः सिंचाई कम दिनों के अन्तर पर देने से अधिक लाभ होता है। सिंचाई की मुख्य आवश्यकता कंद निर्माण के समय होती हैं।

खरपतवार नियंत्रण–

पेन्डीमेथलीन 2.5 मिली0 प्रति लीटर पानी की दर से घोल कर रोपाई के 3–4 दिन बाद छिड़काव करते है। इसके लगभग 6 सप्ताह बाद एक खुरपी से खरपतवार निकाल देना चाहिए। इससे खरपतवार नष्ट हो जाते हैं।

उपज–

पौध में जब छोटी–छोटी गाँठ बनना शुरू होने लगें तो उन्हें उखाड़ कर हरी प्याज हेतु बाजार भेज सकते हैं। यदि तैयार कन्दों के लिए फसल उगायी गयी हो तो कंदों की खुदाई उस समय करनी चाहिए जब पौधों के ऊपरी भाग गिर जायें। साधारणतया कंद की उपज 25–30 टन प्रति हैक्टर की दर से प्राप्त हो जाती है। प्याज के कंदों को भली भॉति छायादार स्थान पर सुखाने के उपरान्त हवादार कमरों में फैलाकर रखना चाहिए। लहसुन को तुडाई के बाद 8–10 दिन तक छाया में सुखाया जाता है। गॉठो को सुखाते समय उन्हें पत्तियों और डंठल के साथ ही रखना चाहिए तथा सूख जाने पर 1–1.5 से0मी0 कन्द के ऊपर डंठल छोड़कर सूखा ऊपरी भाग काट कर अलग कर देते है। लहसुन की औसत उपज 8–10 टन प्रति हैक्टर आती है।

भण्डारण से पूर्व कटे–फटे व रोगी कन्दों को निकाल देना चाहिए। भण्डारण गृह में सड़े कन्दों को हर सप्ताह निकालते रहना चाहिए। प्रमुख रोगों में आर्द्रगलन या पौध का कमर तोड़ रोग (डैम्पिंग आफ), झुलसा रोग (स्टैम्फीलियम ब्लाइट), मृदुरोमिल फफूँदी (डाउनी मिल्डयू), जामन धब्बा रोग, तथा डाऊनी मिल्डयू व कीटों में थ्रिप्स प्रमुख हैं। इनके उचित प्रबंधन के लिये संस्तुत कीटनाशी अथवा कवकनाशी का सही मात्रा में प्रयोग करना चाहिये।

◆◆◆

प्रमुख फलों की उन्नत खेती

डा० अशोक कुमार सिंह
संयुक्त निदेशक (उद्यान विज्ञान)
गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल : drashokkumar71@gmail.com

विभिन्न प्रकार के उष्ण एवं उपोष्ण जलवायु वाले फल जैसे आम, लीची, अमरूद, कटहल, पपीता, इत्यादि को व्यावसायिक स्तर पर सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। हाल के वर्षों मे भारत सरकार द्वारा बागवानी के एकीकृत विकास पर दिये गये व्यापक महत्व से इस क्षेंत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। फिर भी विभिन्न प्रदेशों में उगायी जाने वाली औद्यानिक फसलो की औसत उत्पादकता राष्ट्रीय औसत से कम है, जिसमे वृद्धि की असीम सम्भावनाये हैं। बागवानी के क्षेत्र में अनेक तकनीकों का विकास हुआ है, जिसमें समुचित क्रियान्यवन से बागवानी फसलो की उत्पादकता, गुणवत्ता एवं निर्यात में सराहनीय प्रगति हुई है। इन तकनीकों में उपयुक्त मूलवष्न्तों एवं प्रजातियों का चयन, गुणवत्तायुक्त पौधों का प्रसारण, जैव प्रौद्योगिकी, सघन रोपण, बागो का जीर्णोद्वार, एकीकृत पोषण प्रबन्धन, समन्वित नाशीजीव प्रबन्धन, कटाई उपरान्त प्रबन्धन जैसे समय से कटाई व तुड़ाई, ग्रेडिग, पैकिंग, विपणन, भण्डारण एवं प्रसंस्करण इत्यादि का प्रयोग प्रमुख है। मैदानी एवं पर्वतीय क्षेत्रों की जलवायु की विविधता एवं उसमे उगायी जाने वाली प्रमुख फलों का विवरण सारणी संख्या 1 मे निम्नवत् है।

व्यावसायिक फलोत्पादन के लिए बागों की स्थापना एवं उनका समुचित प्रबन्ध–

बाग के लिए उचित स्थान का चुनाव–

बाग लगाने के लिए गहरी उपजाऊ एवं जल निकास युक्त बलुई दोमट भूमि जिसका पी.एच. मान 6.5 से 7.5 तक अच्छा रहता है। ऐसी मिट्टी मे पौधों की बढ़वार अच्छी होती हैं। अमरूद, आंवला एवं बेर जैसे फलो के वृक्षो को भारी भूमि मे सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। जिस भूमि में अच्छा जल निकास न हो पपीता, अंगूर, आड़ू, एवं नाशपाती नही लगाना चाहिए। बाग खुले भू भाग पर लगाना चाहिए, ऐसी घाटियो मे बाग नही लगाने चाहिए जो चारो ओर से पहाड़ियों से घिरी हुई हो। बाग लगाने के लिए भूमि का समतल होना आवश्यक है। ऐसे स्थान जो कि ऊँचे नीचे या ऊबड़ खाबड़ हो जोतकर समतल कर देना चाहिए जिससे पौधो के रेखांकन एवं सिचाई करने मे असुविधा न हो साथ ही कृषि क्रियाए सुचारू रूप से हो सके। बागो मे पेड़ो को संस्तुत दूरी पर ही लगाना चाहिए अन्यथा पेड़ बड़े होकर आपस मे मिल जाते है जिससे उनमे हवा व प्रकाश पर्याप्त मात्रा मे नही मिल पाता है जिसके फलस्वरूप उत्पादन घट जाता है। बागो को लगाते समय यह ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि उत्पाद को बाजार एवं दूरस्थ स्थान पर भेजने के लिए क्या व्यवस्था है। इसलिए बागो को सड़क के नजदीक ही लगाये जिससे असुविधा न हो। प्रत्येक फल वृक्ष के लिए एक निश्चित तापमान की आवश्यकता होती हैं। जैसे आम की अच्छी वृद्धि के लिए 24–27^0 से.ग्रे. तापमान उपयुक्त रहता है।

बाग लगाने के लिए भूमि का रेखांकन–

जिस स्थान पर बाग लगाना हो उस स्थान को समतल करने के बाद मिट्टी पलटने वाले हल से मई माह तक गहरी जुताई कर देनी चाहिए। इसके बाद पौधे लगाने के लिए रेखांकन करना चाहिए। बागो का रेखांकन करते समय फल एवं उसकी किस्म को ध्यान मे रखना चाहिए। रेखांकन इस बात पर निर्भर करता है कि भूमि की दशा कैसी है। यद्यपि सर्वोत्तम रेखांकन वही होता है जिसमें प्रति इकाई क्षेत्र मे अधिक पौधे हो एवं पौधे के बढ़ने एवं विकास के लिए उचित स्थान मिल सके। बाग लगाने की प्रमुख विधियॉ आयताकार, वर्गाकार, त्रिभुजाकार, एवं शटभुजाकार है। पर्वतीय क्षेत्रों मे जहॉ भूमि समतल न होकर के ऊँची नीची होती

सारणी 1: विभिन्न क्षेत्रो की जलवायु विविधता एवं उसमें उगायी जाने वाली प्रमुख बागवानी फसलें

क्रम सं.	समुद्र तल से ऊँचाई	जलवायु विशेषता	उपयुक्त फसले
1.	300 मीटर तक	आर्द्र उपोष्ण जलवायु के समान ही मौसम होता है। परंतु इन क्षेत्रों में गर्मी अधिकतम तापमान 44^0 से.ग्रे. तथा जाड़े में 0^0 से.ग्रे. तक पहुंच जाता है।	आम, लीची, अमरूद, पपीता, अनार, कटहल, कम द्रुतशीतन वाली नाशपाती, आडू एवं अलूचा इत्यादि
2.	301 से 600 मीटर तक	उपोष्ण जलवायु के समान ही मौसम रहता है। परंतु इन क्षेत्रों मे गर्मी के दिनों मे हवायें नही चलती है तथा अधिकतम लगभग तापमान 40^0 से.ग्रे. से अधिक नही होता है तथा न्यूनतम तापमान 5 से 10^0 से.ग्रे. के बीच बना रहता है।	आम, लीची, पपीता, अमरूद, अनार, स्ट्राबेरी, कीवी तथा कम द्रुतशीतन वाली नाशपाती, आड एवं अलूचा इत्यादि
3.	601 से 900 मीटर तक	पूर्णतः उपोष्ण जलवायु जहां पर गर्मियों में न्यूनतम एवं अधिकतम तापमान क्रमशः 20 से 40^0 से.ग्रे. रहता है। जबकि जाड़ो मे न्यूनतम एवं अधितम तापमान क्रमशः 5 से 25^0 से.ग्रे. होता है। ढाल वाली जगहो पर सामान्यतः दिन और रात का तापमान मध्यम जबकि घाटियों मे दिन मे अधिक गर्म एवं रात मे अधिक ठंडा होता है।	आम, लीची, पपीता, अमरूद, अनार, स्ट्राबेरी, कीवी तथा कम द्रुतशीतन वाली नाशपाती, आड एवं अलूचा इत्यादि
4.	901 से 1200 मीटर तक	उपोष्ण की अपेक्षा हल्का ठंडा परंतु शीतोष्ण जलवायु की अपेक्षा गर्म मौसम रहता है। गर्मी के महीनों मे न्यूनतम एवं अधिकतम तापमान क्रमशः 15 से 25^0 से.ग्रे. एवं जाड़े मे न्यूनतम एवं अधिकतम तापमान 5 से 25^0 से.ग्रे. होता है।	आम, अनार, कीवी, आडू, प्लम, खुबानी, पीकन नट, अखरोट, बादाम, नाशपाती, स्ट्राबेरी आदि।
5.	1201 से 1500 मीटर तक	यहॉ पर जलवायु उपोष्ण एवं शीतोष्ण के बीच की होती है। जाड़े मे कभी–कभी बर्फ गिर जाती है। गर्मी मे न्यूनतम एवं अधिकतम तापमान क्रमशः 15 एवं 35^0 से. ग्रे. होता है।	संतरा, माल्टा, कीवी, आडू, प्लम, खुबानी, पिकन नट, अखरोट, बादाम, नाशपाती, स्ट्राबेरी आदि।
6.	1501 से 2400 मीटर तक	शीतोष्ण जलवायु के समान मौसम होता है। जाड़े मे एक या दो बार बर्फ गिरती है। न्यूनतम एवं अधिकतम तापमान क्रमशः 0^0 से.ग्रे. व 20^0 से.ग्रे. होता है। जबकि गर्मी मे न्यूनतम एवं अधिकतम तापमान क्रमशः 10 से 35^0 से.ग्रे. होता है।	सेब, नाशपाती, संतरा, माल्टा, कीवी, आडू, प्लम, खुबानी, पीकन नट, चेंस्ट नट, हेजलनट, अखरोट आदि
7.	2400 मीटर से अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्र	पूर्णतः शीतोष्ण जलवायु, जाड़े में दो–तीन बार बर्फ नियमित रूप से गिरती है तथा एक सप्ताह तक बनी रहती है। सुषुप्तावस्था लंबे समय तक होती है। जाड़े मे न्यूनतम एवं अधितम तापमान 5 एवं 15^0 से.ग्रे. तथा गर्मी मे क्रमशः 4 से 25^0 से.ग्रे. होता है।	सेब, खुबानी, चेरी, अखरोट आदि

है, वहॉ बागो की रोपाई परिरेखा विधि से की जाती है। इस विधि से भूमि का कटाव भी कम होता है।

फल वृक्षों के लिए गढढा खोंदने की विधि, रोपण की दूरी एवं समय–

गड्ढा खोदते समय ऊपर की (गड्ढे की गहराई की ऊपरी आधी मिट्टी) मिट्टी को अलग ढेरी मे रख लेना चाहिए तथा नीचे की आधी मिट्टी को अलग रख लेना चाहिए। गड्ढे को खोदने के बाद मिट्टी से कंकड़ पत्थर एवं पॉलीथीन जैसे अकार्बनिक पदार्थो को अलग कर देना चाहिए। चूँकि ऊपर की मिट्टी उपजाऊ होती है अतः इसे गड्ढे मे भरते समय नीचे डाल देना चाहिए तथा नीचे की मिट्टी का ढेर गड्ढे मे ऊपर भरना चाहिए। इस तरह गड्ढे की मिट्टी का फेरबदल करने से गड्ढे की उपजाऊ शक्ति मे समानता आ जाती है। मिट्टी को भरते समय प्रति गड्ढें की दर से 30–40 किग्रा. कम्पोस्ट खाद, 200 ग्राम एल्ड्रिन धूल या 4–5 मि.ली. प्रति ली. की दर से क्लोरपाइरीफॉस एवं 200 ग्राम सुपर फास्फेट अच्छी तरह मिला देना चाहिए। गड्ढे भरने के बाद अच्छी तरह पैरो से दबा दे। गड्ढा जमीन की सतह से 10–15 से. मी. ऊपर तक भरे। अब भरे हुए गढढे के उपर पानी लगा दे। पूरे खेत को पानी से भर दे, ऐसा करने से गड्ढे की मिट्टी अच्छी तरह बैंठ जाएगी यह कार्य पेड़ लगाने से 15– 20 दिन पूर्व कर लें। उपोश्ण एवं उश्ण फल पौधों को लगाने का कार्य बसंत ऋतु मे मार्च माह के आरम्भ मे व वर्षा ऋतु मे जून के मध्य से सितम्बर मे करते है। जबकि षीतोश्ण फल पौधों का रोपण उनकी सुसुप्तावस्था मे दिसम्बर से जनवरी माह मे करना चाहिए। विभिन्न प्रकार के फल वृक्षो के लिए लगाने की दूरी, गड्ढो का आकार एवं

सारणी संख्या 2 : विभिन्न फलदार वृक्षों के रोपण का समय, दूरी तथा गड्ढो का आकार

क्रम संख्या	फलवृक्षों का नाम	रोपण दूरी (मी.)	गड्ढे का आकार (घन मी.)	रोपण का समय
1.	आम	10 X 10 12 X 12 (चौसा) 2.5 X 2.5 (आम्रपाली)	1 X 1 X 1	जून के दूसरे पखवाड़े से सितम्बर के पहले पखवाड़े तक या फरवरी के दूसरे पखवाड़ें से मार्च के पहले पखवाड़े तक
2.	अमरूद	6 X 6	0.75 X 0.75 X 0.75	तदैव
3.	लीची,	8X 8	1 X 1 X 1	तदैव
4.	नींबू वर्गीय फल	6 X 6 (सन्तरा एवं माल्टा समूह) 5 X 5(लेमन तथा कागजी नींबू)	1 X 1 X 1 0.6 X 0.6 X 0.6	तदैव
5.	बेर, लोकाट आँवला, बेल, चीकू	9 X 9	0.75 X 0.75 X 0.75	तदैव
6.	कटहल	10 X 10	1 X 1 X 1	तदैव
7.	करौंदा	3 X 3	0.5 X 0.5 X 0.5	तदैव
8.	अनार	4 X 4	0.6 X 0.6 X 0.6	तदैव
9.	पपीता	2 X 1	0.15 X 0.15 X 0.15	सितम्बर से अक्टूबर
10.	अंगूर	3 X 3	0.5 X 0.5 X 0.5	दिसम्बर से जनवरी

लगाने का समय सारणी 2 मे दिया जा रहा है।

फल पौधों की प्रमुख प्रजातियों का चुनाव–

किसी भी बाग की सफलता अच्छे तथा सही किस्म के पौधों पर निर्भर करती है। ऐसे पौध हमें किसी अच्छी नर्सरी से प्राप्त हो सकते हैं। अधिकांश बागवान बाग लगाने के लिए पौधे किसी भी पौधशाला से खरीद लेते हैं जो कि उतनी अच्छी गुणवत्ता वाले नहीं होते, जितना कि नर्सरी में खरीदते समय बताया जाता है। अतः पौधे खरीदने से पूर्व इस बात की पूरी गारन्टी होनी चाहिए कि सांकुर डाली के लिए चुना गया भाग संक्रामक रोगों से मुक्त, स्वस्थ एवं अच्छी किस्म के पौध से लिया गया हो। प्रयास करें कि पौध का श्रोत सरकारी उद्यान विभाग, उद्यान पौधशाला, राजकीय पौधशाला या समीपस्थ कृषि विश्वविद्यालय, कृषि अनुसंधान केन्द्र हो सकते है। विभिन्न फलों की मुख्य प्रजातियॉ उनके पकने के समय एवं क्षेत्र के अनुसार नीचे की सारणी 3 मे दी जा रही है।

फल वृक्षों के लिए परागद एवं परागकर्ता का चयन–

फलोत्पादन में परागद एवं परागकर्ता की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। परागण को ठीक करने के लिए मुख्य किस्मों के फल वृक्षों के बीच–बीच परागद वाली किस्मों को इस प्रकार लगाना चाहिए, जिससे सभी वृक्षों में परागण ठीक तरह से हो जाये। पर परागण की क्रिया में नर पौधें तथा परागण करने वाले कीट दोनों का समुचित मात्रा मे होना आवश्यक है। एक हैक्टेयर बाग के लिए 5–6 मधुमक्खियों के बक्से हाने चाहिए। पपीता उद्यान मे 10 प्रतिशत नर पौधे रहना आवश्यक

सारणी 3: फल वृक्षों की मुख्य प्रजातियॉ

फल का नाम	मुख्य प्रजातियॉ
आम	**मैदानी क्षेत्रों के लिए: अगेती:–** बंम्बई ग्रीन, गौरजीत, पन्त सिंदूरी **मध्य:–** लखनऊ सफेदा, दषहरी, लंगड़ा, मल्लिका **पछेती:–** फजली, आम्रपाली, चौसा **घाटी के लिए :–** दशहरी, बंम्बई ग्रीन एंव लंगड़ा
अमरूद	पंत प्रभात, इलाहाबाद सफेदा, सरदार अमरूद (L–49), ललित, इलाहाबाद सुर्खा
लीची	**पर्वतीय क्षेत्र:**–रोज सेन्टेड **मैदानी एवं भावर:–** रोज सेन्टेड, लेंट बेदाना, कलकतिया
कटहल	पंत गरिमा, पंत महिमा एवं सिंगापुर
नीबू वर्गीय फल	**पर्वतीय क्षेत्र के लिए: सन्तरा:–** नागपुर, श्रीनगर, हिल संतरा, किन्नों **माल्टा :–** हैमलीन, वैलेसियालेट, कामन माल्टा **लेमन:–** पंत लेमन–1, पहाड़ी नीबू, इटैलियन लेमन **कागजी नीबू :–** विक्रम (घाटी क्षेत्र), **मैदानी एवं भावर:–** पंत लेमन–1, कागजी नीबू
पपीता	पन्त पपीता –1, पूसा नन्हा, पूसा डवार्फ, पूसा डेलीशियस, पूसा मेजेस्टी, फार्म सलेक्सन–1
आँवला	बनारसी, हाथीझूल चकइया, पंत आँवला
बेर	उमरान, बनारसी कड़ाका, दनदन
करौदा	पंत मनोहर, पंत सुदर्शन, पंत सुर्वणा
चीकू	छतरी, काली पट्टी, क्रिकेट बाल, बारहमासी
बेल	पंत शिवानी, पंत अपर्णा, पंत सुजाता, पंत उर्वशी, सी. आई. एस. एच. बी.–1 एवं सी. आई. एस. एच. बी.–2
अनार	गणेश, धोलका, अलॉडी, पेपर शैल, स्पेनिश रूबी
अंगूर	परलेट, पूसा नवरंग, फलेम सीडलैस, गुलाबी हिमरौड

हैं। आम की दशहरी किस्म के लिए बाम्बे ग्रीन, लंगड़ा एवं रतालू किस्मे परागण के लिए लगानी चाहिए। ऑवले की किस्मों मे पर परागण आवश्यक होता है इसलिए कम से कम दो किस्मो का एकान्तर पर रोपण किया जाना चाहिए।

फल पौधों का पोषण–

पौधों की अच्छी वृद्धि एवं विकास के लिए उचित मात्रा मे एवं उचित समय पर खाद एवं उर्वरक का पेड़ो मे देना बहुत आवश्यक है, जिससे समय पर एवं अधिक फलत प्राप्त हो सके। खाद व उर्वरक को पौधो के फैलाव के हिसाब से मुख्य तने से 1.5–2.0 मीटर दूरी पर गोलाई मे 15–20 सेंमी. गहरी नाली बनाकर उसमे समान रूप से बिखेर करके मिटटी मे मिला देना चाहिए। प्रायः गोबर की खाद नवम्बर के महीने मे पूरे थाले मे मिला देते है तथा नत्रजन की आधी मात्रा एवं फास्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा नवम्बर–दिसम्बर महीने में दी जाती है। नत्रजन की शेष आधी मात्रा फरवरी–मार्च में फूल एवं फल आने पर देते है। आम तथा लीची मे फसल तोड़ने के तुरन्त बाद एक किलो. नत्रजन की अतिरिक्त मात्रा पेड़ो को दे देना चाहिए। एक वर्ष के पौधों के पोषण के लिए खाद एवं उर्वरक की मात्रा सारणी 4 के अनुसार देना चाहिए।

इन प्रमुख पोषक तत्वों के अतिरिक्त सूक्ष्म तत्वों के पोषण की महत्ता बढ़ती जा रही है, क्योकि कार्बनिक एवं जैविक खादों की कमी के कारण तथा प्रमुख तत्वों को उर्वरकों द्वारा पूरा करने से सूक्ष्म तत्वों की आवश्यक्ता सामने निखर कर आ रही है, जिनमें जिंक, बोरान एवं कॉपर की कमी के कारण उत्पादकता पर अधिक कुप्रभाव पाया जा रहा है। अतः इन सूक्ष्म तत्वों की कमी के लक्षणों को पहचानते हुए समय पर इनका छिड़काव करना चाहिए।

सिचाई एवं निराई गुड़ाई–

पौधो का रोपण करने के पश्चात् पौधों की तुरंत सिंचाई की जानी चाहिए। फलों के छोटे पौधों को गर्मियों मे 4–6 दिन के अन्तर पर सिंचाई किया जाता है। परन्तु बड़े पौधो को सींचने की कम आवश्यक्ता पड़ती है। पौधो को एक बार मे अधिक पानी लगाकर सींचने से अच्छा है कि थोड़ा–थोड़ा पानी लगायें। सिंचाई पूरे खेत मे बाढ़ विधि से न करके थाला विधि से करनी चाहिए, जिससे पानी एवं समय दोनो की

सारणी 4: फल पौधों के लिए प्रति एक वर्ष की उम्र के हिसाब से प्रमुख पोषक तत्वों की मात्रा

फल वृक्ष	गोबर की खाद (किग्रा.)	नत्रजन (ग्राम)	फास्फोरस (ग्राम)	पोटाश (ग्राम)	खाद एवं उर्वरक की मात्रा स्थिर करने की आयु (वर्षो में)
आम	10	100	75	75	10
अमरूद	10	75	50	50	6
लीची	10	100	60	60	10
कटहल	10	75	60	50	10
नींबू	10	100	25	50	10
पपीता	5–10	125	250	250	तीन बराबर भाग मे 1,3,6 माह पर दे
आँवला	10	75	50	50	10
बेर	10	100	50	50	5
करौंदा	10	50	50	50	3
चीकू	10	50	25	75	10
बेल	10	75	60	50	10
अनार	10	100	60	60	6
अंगूर	10	75	75	150	5

बचत होती है। इस समय टपक सिंचाई बहुत ही उपयुक्त पायी गयी है। फल वृक्षों की सिंचाई बरसात के मौसम में नही की जाती है। इसी प्रकार बरसात के महीनो के बाद नवम्बर से जनवरी तक भी सिंचाई नही करते है। फलों के बागो मे निराई गुड़ाई का कार्य अधिकांशतः वर्षा ऋतु के बाद ही किया जाता है।

अन्तः शस्य फसलों को उगाना–

बाग लगाने के बाद उससे काफी समय तक फलत प्राप्त नही होती है। इसलिए इसमे अन्य फसले व फलो के पौधे लगाकर भी आय प्राप्त की जा सकती है। अधिक पानी की मॉग वाली फसलों को बागो में नहीं लगाना चाहिए। सामान्यतयाः बागों में हल्दी, अदरक, फूलगोभी, मटर, मूली पालक, आदि सब्जियाँ एवं फलों मे पपीता, आडू एवं अनार के पौधों को लगाकर अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती हैं।

सधाई एवं कटाई–

फलों के पौधों मे सधाई एवं कटाई की बहुत आवश्यकता होती है। सधाई का कार्य शुरू के 4–5 वर्षो मे करना चाहिए, जिससे उनको सही आकार मिल सके। इसके लिए नये बाग मे कलमी पौधे लगाने के बाद मूलवृन्त से जो भी कल्ले निकले उन्हे तोड़ देना चाहिए एवं साथ ही पौधे को उचित आकार देने के उददेश्य से नऐ पौधो पर 60–75 सेमी तक शाख नही निकलने देना चाहिए। तत्पश्चात् 4–6 मुख्य शाखाओं को चारों दिशाओं मे बढ़ने देना चाहिए। अधिक घने बागो मे सूर्य का प्रकाश एवं वायु का संचार आसानी से नही हो पाता है, जिससे फलत पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। इसलिए बड़े वृक्षों मे अधिक घनी शाखाओं जो कि एक दूसरे पर चढ़ी हो, पतली एवं सूखी टहनियों ओर साथ ही रोग ग्रस्त शाखाओ को काटकर निकाल देना चाहिए। जिन पुराने वृक्षों की शाखाऐं जमीन के बहुत ही अधिक पास हो उन्हे भी काट देना चाहिए जिससे बाग की जुताई एवं अन्य कृषि सम्बन्धित कार्य आसानी से किये जा सके। कुछ फल वृक्षों मे एकान्तर फलन की समस्या होती है। इसका प्रमुख कारण प्ररोहो मे भोजन की कमी और बने भोजन का फलो द्वारा शोषण है। अतः आवश्यक है कि फल तोड़ने के बाद सहाबहार फलवृक्षों मे कटाई छटाई की जाय। यह फल वृक्ष की प्रजाति, जाति एवं अन्य बातो पर निर्भर करता है। आम व लीची मे कटाई–छॅटाई फल तोड़ने के तुरन्त बाद करते है। अमरूद एवं ऑवला मे फरवरी–मार्च मे करते है तथा सेब, आडू, प्लम, नाशपाती इत्यादि फल वृक्षों में यह क्रिया दिसम्बर–जनवरी मे की जाती है।

फल पौध का पाले से बचाव–

पपीता, आम, केला, जो कि मुख्यतः उष्ण जलवायु के फल है। उनको सर्दियों मे पाले से बचाने की बहुत आवश्यकता होती है। पाले के कारण छोटे पौधो के साथ–साथ बड़े पौधे भी क्षतिग्रस्त हो जाते है। पाले से बचाव के लिए कुछ क्रियाओं को करके पौधो का बचाव कर सकते है। जैसेः– थैचिंग का प्रयोग, सिंचाई द्वारा एवं बाग मे धुँआ करना।

पुराने अनुत्पादक बागों का जीर्णोद्धार–

पेड़ो के जीर्णोद्धार का अर्थ पौधो का नया जीवन प्रदान करने से है। .फल–उद्यान मे ऐसे पेड़ जो अधिक पुराना होने या किसी अन्य कारण से फल कम मात्रा मे पैदा करने लगते है तथा आर्थिक दृष्टिकोण से बेकार हो जाते है, ऐसे वृक्षों की सभी अवांछित शाखाओ को छतरीनुमा आकार मे काट देते है। पहले शाखा को निचली सतह से तथा फिर ऊपर से काटना चाहिए जिससे शाखा फटे नही। काटने के बाद कटे भाग पर फफूँदीनाशक दवा (कॉपर आक्सी क्लोराइड) को पानी एवं अण्डी के तेल मे मिलाकर लगाते है। मार्च–अप्रैल में कटी हुई शाखाओं से नयी शाखाएं निकलती है। स्वस्थ पर्णीय विकास के लिए इन वृक्षों में खाद, पानी एवं कीट– व्याधियों का सामायिक प्रबन्धन करते है, तथा नए प्ररोहो का विरलीकरण करते है। एक तने पर 4–6 शाखाओं को ही बढ़ने देते है। एन्थ्रेकनोज बीमारी के लिए कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (3 ग्रा./ली. पानी में) एवं पत्ती काटने वाले कीट के लिये कार्बेरिल (3 ग्रा./ली. पानी में) या मोनोक्रोटोफॉस (1.25 ग्रा./ली. पानी में) का छिड़काव तथा तना छेदक कीट के लिये 0.5 प्रतिशत डी.डी.वी.पी. के घोल मे रूई भिगो कर छिद्रो मे डालना प्रभावी होता है। नयी शाखाओं में कृन्तन उपरांत दो वर्षो मे पुष्पन एवं फलन आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार आम, अमरूद, लीची, कटहल, बेल, सेब, नाशपाती इत्यादि के पुराने एवं अनुत्पादक बाग पुनः फल उत्पादन देने योग्य हो जाते है।

सघन बागवानी–

फलो की कम उत्पादकता का प्रमुख कारण बाग लगाने के 10–15 वर्षो तक कम या नगण्य उपज है क्योंकि वृक्षों की परस्पर दूरी 8–10 मीटर रखी जाती है। इसके कारण बाग से कई वर्षो तक लाभकारी उपज नही मिलती है और बाग में पेड़ों के बीच की भूमि पर फसल द्वारा सीमित उपज मिलता है। परन्तु पेड़ो के बीच की भूमि पर कम उपज होने एवं सस्य क्रियाओं में व्यवधान के कारण अन्तःसस्यन से अधिक लाभ नही मिल पाता है। अतः फल बागवानी मे इन समस्याओं को देखते हुए इस समय सघन बागवानी पर जोर दिया जा रहा है। आम, अमरूद, पपीता, केला, नींबू, सेब, आडू इत्यादि मे सघन बागवानी सफलतापूर्वक कुछ महत्वपूर्ण क्रियाओं को करते हुए कर सकते है। उदाहरण के तौर पर आम मे आम्रपाली की प्रजाति के साथ सघन बागवानी 2.5 x 2.5 मीटर की दूरी पर सफलतापूर्वक की जा सकती है। आम्रपाली मे इस दूरी को रखने पर 1600 पौधे एक हैक्टेयर मे लगाये जा सकते है। जबकि पारम्परिक तरीके से केवल 100 पौधो को प्रति हैक्टेयर क्षेत्र मे लगाया जा सकता है।

सूक्ष्म सिचाई एवं फर्टीगेशन–

मैदानी एवं पर्वतीय क्षेत्रों मे कृषि उत्पादकता बढ़ाने मे पानी की कमी सबसे बड़ी बाधा है। ऊँची नीची सतह होने के कारण पहाड़ी क्षेत्रों मे सिंचाई करना बहुत कठिन होता हैं एवं पौधों की आवश्यक्ता के अनुसार पानी भी उपलब्ध नही हो पाता है। इसके निराकरण के लिए सूक्ष्म सिचाई विधि बहुत ही लाभदायक है। बूँद (ट्रिकल), स्प्रे एवं फोगर आदि विधि, सूक्ष्म सिंचाई पद्धिति के अंतर्गत आते है। सूक्ष्म सिंचाई विधि में पानी को बहुत कम दाब पर बार–बार एवं सीधे पौधो की जड़ मे दिया जाता है। इस विधी मे पानी की मात्रा को लम्बे समय के लिए कम अंतराल पर बार–बार दिया जाता है जिससे पौधे की जड़ में सारे समय के लिए नमी की सही मात्रा रखी जा सकती है। सिंचाई की इस विधि से पानी की निश्चित बचत, श्रम के साथ पैसे की बचत, खरपतवार की समस्या का निदान इत्यादि लाभ है। फर्टीगेशन का अर्थ सिंचित जल और खाद के पौष्टिक तत्वों को सूक्ष्म सिंचाई विधि की सहायता से पौधों तक पहुचाना, जिसके द्वारा खाद को पौधें की जड़ मण्डल मे सही समय मे प्रयोग करने एवं उसके देने के समय को निर्धारित करने मे सहायता मिलती है।

◆◆◆

शकरकंद, अरबी एवं आलू की वैज्ञानिक खेती

डा० एस०के० मौर्य
सहायक प्राध्यापक (सब्जी विज्ञान)
गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल : drskm23@gmail.com

शकरकंद–

शकरकंद गर्म जलवायु की फसल है तथा इसकी सूखा सहन करने की क्षमता भी कम हैं। हल्का पाला भी इसकी पत्तियों को हानि पहुंचाता है। यदि भूमि का तापक्रम 10^0 सें. ग्रे. या उससे कम होता है तो उस स्थिति में पौधों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। प्रारम्भ की वृद्वि के समय अच्छी वर्षा होने से पैदावार में बढ़ोतरी होती है। सबसे अच्छी वृद्धि 22 से 25^0 से. ग्रे. तापक्रम पर होती है तथा स्टार्च की मात्रा भी अच्छी होती है। जड़ बनते समय 18 से 22^0 से.ग्रे. तापक्रम सबसे उत्तम समझा जाता है। इस तापमान पर अच्छी गुणवत्ता वाली जडें प्राप्त होती है।

उन्नत किस्में– जवाहर शकरकंद 114, जवाहर शकरकंद 145, पूसा सुनहरी, पूसा लाल, पूसा सफेद, किरन, राजेन्द्र शंकरकंद 35, राजेन्द्र शंकरकंद 43, कालमेध, राजेन्द्र शकरकंद 5, को–2, को–1, श्रीवर्धन, श्रीनन्दिनी।

भूमि का चुनाव व तैयारी– बलुई या बलुई दोमट भूमि जिनमें नत्रजन की पर्याप्त मात्रा हो तथा जल निकासी की अच्छी व्यवस्था हो पैदावार एवं गुणवत्ता के हिसाब से सर्वोत्तम समझी जाती है। जमीन में कंकड, पत्थर तथा कड़ी सतह नहीं होनी चाहिये। भूमि का पी–एच 5.8 से 6.7 उत्तम होता है। भूमि की तैयारी के लिये पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करें बाद में 3–4 जुताई देशी हल या हैरो से करें। भूमि को समतल बनाने के लिये आवश्यकतानुसार पाटा भी चलायें। तैयारी के समय 150 से 200 कुन्टल गोबर की सड़ी खाद प्रति हैक्टर की दर से मिला दें।

खाद एवं उर्वरक– उपरोक्त गोबर की सड़ी खाद के अलावा 30 किलोग्राम नत्रजन, 60 किलोग्राम फास्फोरस तथा 80 से 100 किलोग्राम पोटाश प्रति हैक्टर की दर से जमीन की आखिरी जुताई पर मिला दें। 30 किलोग्राम नत्रजन लतायें रोपने के 35–40 दिन बाद खड़ी फसल में डालें। खड़ी फसल मे यूरिया डालने के बाद हल्की सी मेड़ों पर मिटटी चढ़ायें।

पौध तैयार करना– प्रति हैक्टर क्षेत्रफल की रोपाई के लिये 0.15 से 0.2 है. पौधशाला एवं दो से तीन से. मी. व्यास वाले लगभग 500 किलोग्राम कंदों की आवश्यकता होगी। पौधशाला में इनकी बोआई अप्रैल में कर देनी चाहिये तथा आवश्यकतानुसार निकाई व सिंचाई करते रहें। लता रोपण के लगभग 2 माह पूर्व ही पौधशाला में कदों की बुआई का उचित समय है। लगभग 700 से 1000 किलोग्राम वजन की लतायें एक हैक्टेयर फसल की रोपाई के लिये पर्याप्त होगी।

रोपाई का समय एवं विधि– देश के विभिन्न भागों में इसकी रोपाई का समय भिन्न–भिन्न हैं। मध्य भारत में इसकी रोपाई अक्टूबर में की जाती है। कुछ स्थानों पर इसे रबी फसल के रूप में उगाया जाता है। कुछ स्थानों में खरीफ के रूप में उगाया जाता है।

उत्तर भारत में इसकी रोपाई मेड़ों पर जुलाई के पहले पखवाडें में की जाती है। मेड़ 60 से.मी. की दूरी पर बनायें और उन मेंडों पर 20–25 से.मी. की दूरी पर लताओं की रोपाई करें। रोपाई के तुरन्त बाद हल्की सी सिंचाई करना आवश्यक है। बरसात के समय रोपाई लाभदायक है। रोपाई के लिये 30 से.मी. से 50 से.मी. लम्बाई की लतायें उचित रहती है।

खाद एवं उर्वरक– खाद एंव उर्वरकों की मात्रायें भूमि में उपलब्धता के ऊपर निर्भर करती है। सामान्य भूमि में 100 से 150 कुन्टल गोबर की सड़ी खाद रोपाई के 20 दिन पूर्व जमीन में मिलायें। बाद में आखिरी जुताई पर 30 किलोग्राम नत्रजन, 60 किलोग्राम फास्फोरस तथा 60 किलोग्राम पोटाश प्रति हैक्टेयर की दर से मिला दें। शेष 30 किलोग्राम नत्रजन रोपाई के 35 से 40 दिन बाद खड़ी फसल में डालें। यूरिया डालते समय खेत में पर्याप्त नमी होनी चाहिए।

सिंचाई एवं जल निकास– सिंचाई की आवश्यकता भूमि पर निर्भर करती है। कुल मिलाकर फसल को 75 से 80 से मी. पानी की आवश्यकता होती है। पहली सिंचाई रोपाई के समय, बाद में आवश्यकतानुसार 10–15 दिन के अंतराल से सिचाई करें। यदि वर्षा समय से हो रही है तो सिंचाई के अंतराल में परिवर्तन कर सकते हैं। अधिक पानी फसल के लिये हानिकारक है। अतः सिंचाई या वर्षा का पानी आवश्यकता से अधिक है तो जल निकासी की उचित व्यवस्था करें।

खरपतवार नियंत्रण– प्रारंभ में खरपतवार निकालना अत्यन्त आवश्यक है। बाद में लतायें फैलाना शुरू करती है, उस समय खरपतवार स्वंय ही दब जाते है तथा धीरे–धीरे नष्ट हो जाते है।

खुदाई– साधारणतः रोपाई के 120 से 135 दिन बाद इसकी खुदाई की जा सकती है। वैसे उस समय पत्तियाँ पीली पड़कर मुरझाना शुरू हो जाती है तथा कंद सख्त हो जाता है। उस समय पहले पत्तियाँ जमीन की सतह से काटकर हटा दें बाद में फावड़े की सहायता से उसकी खुदाई करें। खुदाई के बाद मध्यम तथा बडें आकार के कंद को बाजार भेजने की व्यवस्था करें तथा 2–3 से.मी. व्यास वाली कंद को इकटठा कर आगामी वर्ष के लिये पौध तैयार करने के लिये रखें।

पैदावार– पैदावार को भूमि, किस्म तथा फसल प्रबंध आदि प्रभावित करते है। सूखाग्रस्त क्षेत्रों में इसकी औसतन पैदावार 60 से 90 कुन्तल/है., जबकि सामान्य वर्षा एवं सिंचित क्षेत्रों में औसतन 200–250 कुन्तल/है. उपज मिलती है।

अरबी एवं आलू–

भूमि का चुनाव व तैयारी– विभिन्न सब्जियों का उत्पादन भिन्न–भिन्न प्रकार की मृदा में किया जा सकता है, परन्तु बलुई दोमट या दोमट मिट्टी जिसका पी.एच.मान लगभग उदासीन (6–7 के बीच) हो तथा जल धारण क्षमता के साथ जल निकासी का प्रबन्ध अच्छा है, सबसे उपयुक्त होती है जिस खेत में सब्जी की खेती करनी होती है उस खेत को तैयार करने के लिए मिट्टी पलट हल से एक जुताई करने के पश्चात एक या दो जुताई तवा हल से करके पाटा लगा देना चाहिए जिससे खेत समतल हो जाए।

उन्नतशील प्रजातियाँ– स्थान विशेष के लिए संस्तुत किस्मों को ही बुवाई के समय (अगेती, मध्य या पछेती) मौसम (जायद, रबी या खरीफ) तथा उद्देश्य को देखते हुए बुवाई करना चाहिए। उन्नतशील किस्में सारणी–1 में दी गयी है।

बुवाई का समय, बीज की मात्रा तथा बुवाई/रोपाई दूरी– सब्जी से अधिकतम उत्पादन के लिए उसे अपने समयानुसार बोया जाना चाहिए। बुवाई का समय, बीज की मात्रा तथा दूरी सारणी–2 में दर्शायी गयी है।

खाद व उर्वरक– अच्छी पैदावार के लिए सड़ी खाद को खेत में बुवाई से लगभग 2 सप्ताह पहले खेत में मिला देना चाहिए साथ ही साथ मृदा जाँच कराकर उर्वरकों की सही मात्रा देना श्रेयकर होता है। नत्रजन की आधी मात्रा, फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा अन्तिम जुताई के समय खेत में प्रयोग कर लेना चाहिए। शेष आधा भाग नत्रजन को दो भागों में बाँटकर विभिन्न सब्जियों में लगभग 20–30 दिन तथा 45–60 दिन के पश्चात बुरकना चाहिए।

सिंचाई– जिन सब्जियों की बुवाई सीधी की जाती हो, उनकी बुवाई के समय खेत में पर्याप्त नमी होनी चाहिए तथा जिसमें प्रतिरोपण किया जाता है, प्रतिरोपण के

सारणी 1: उन्नतशील प्रजातियाँ/किस्में

अरबी	सामान्य किस्में	नरेन्द्र अरबी–1, नरेन्द्र अरबी–2, फैजाबादी, श्री रश्मि, श्री पल्लवी, सतमुखी	
आलू	संकर किस्में	अगेती समय	कुफरी चन्द्रमुखी, कुफरी अशोका, कुफरी जवाहर
		मध्य समय	कुफरी ज्योति, कुफरी गिरिराज, कुफरी बहार, कुफरी बादशाह, कुफरी सतलज, कुफरी पुखराज, कुफरी चिपसोना–1, चिपसोना–2, कुफरी लालिमा
		पछेती समय	कुफरी स्वर्णा, कुफरी सिन्दुरी, कुफरी देवा

सारणी–2: बुवाई /रोपाई का समय, बीज दर व रोपण दूरी

सब्जी	बुवाई का समय	बीज दर (है.)	दूरी
अरबी	**मैदानी, तराई व भावर क्षेत्र**: अगेती किस्म: मार्च–अप्रैल पछेती किस्म– जून–जुलाई **पर्वतीय क्षेत्र**: मार्च–अप्रैल एवं मई–जून	8–10 कुन्टल	60X25
आलू	**मैदानी, तराई व भावर क्षेत्र**: अक्टूबर का दूसरा पखवाड़ा **पर्वतीय क्षेत्र**: सिंचित घाटी (3000 फुट): मध्य सितम्बर–मध्य अक्टूबर सिंचित घाटी (5000 फुट): जनवरी–फरवरी असिंचित घाटी, अधिक ऊँचाई, उत्तरी दलान 7000 फुट तक मार्च–अप्रैल	25–30 कु0 (25–30 ग्राम आकार के)	60X20

सारणी–3: विभिन्न सब्जियों की खाद, उर्वरक एवं उपज

सब्जी फसल	खाद (टन/है.)	उर्वरक (किग्रा./है.)			औसत उपज (क्विंटल /है.)
		नत्रजन	फॉस्फोरस	पोटाष	
अरबी	20–25	60	60	80	150–200
आलू	20–25	120–180	80	80	150–350

तुरन्त पश्चात हल्की सिंचाई करनी चाहिए उसके पश्चात आवश्यकतानुसार मौसम व फसल की आवश्यकता को देखते हुए सिंचाई करनी चाहिए।

खरपतवार नियन्त्रण– शुरू से ही खरपतवार रहित वातावरण मिलने से सब्जी फसल का विकास अच्छा होता है तथा अधिक उत्पादन मिलता है। बाजार में विभिन्न तरह के खरपतवारनाशी रसायन उपलब्ध है जिसका प्रयोग बुवाई से पूर्व या कुछ दिन बाद (दवा के अनुसार) किया जा सकता है। कुछ सब्जियाँ जब 30–40 दिन की हो जाए जरूरत के अनुसार जड़ के पास मिट्टी चढ़ा देना चाहिए। इससे पौधों को सहारा मिल जाता है और विकास तथा बढ़वार अच्छी होती है।

उपज– दोनों सब्जियों की उपज सारणी–3 में दी गयी है।

आलू में एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन–

अगेता झुलसा– फफूंदी द्वारा होने वाले इस रोग का लक्षण पहले पुरानी पत्तियों पर दिखाई देता है। प्रभावित पत्तियों पर छोटे–छोटे गहरे भूरे रंग के गोलाकार सकेन्द्रीय (छल्लेनुमा) धब्बे बनते हैं जो मौसम की अनुकूलता पाकर आपस में मिल जाते हैं जिससे पत्तियां झुलसकर लटक जाती है।

पछेता झुलसा– फफूंदी जनित इस रोग से प्रभावित पौधों की पत्तियों तथा टहनियों पर भूरे रंग के अनियमित गीले या जलसिक्त धब्बे दिखाई पड़ते हैं जो बाद में मौसम अनुकूल होने पर फैलकर पूरे पर्णीय भाग को झुलसा देते हैं। फलों पर जैतूनी रंग के चिकनाई युक्त धब्बे बनते हैं जो बढ़कर पूरे फल पर फैल जाते हैं और फल फट जाता है तथा उनमें मृदुगलन प्रारम्भ हो जाता है एवं दुर्गन्ध भी आती है।

प्रबन्धन–

1. उपरोक्त दोनों व्याधियों की रोकथाम निम्नलिखित तरीके से की जा सकती है–
2. नर्सरी में बोने से पूर्व बीज की थीरम 3 ग्राम प्रति किग्रा. बीज की दर से उपचारित करें।
3. खड़ी फसल में रोग नियंत्रण हेतु मैन्कोजेब 2. 5 ग्राम या 3 ग्राम कॉपर आक्सीक्लोराइड/ लीटर की दर से 10 दिन के अन्तर पर 2 से 3 छिड़काव करना चाहिए।
4. पौध अवशेषों को एकत्र कर जला देना चाहिए।

◆◆◆

अदरक एवं हल्दी की व्यावसायिक खेती

डा० ललित भट्ट
सहायक निदेशक (सब्जी अनुसंधान केन्द्र)
गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल : drbhattlalit@gmail.com

उपयोग–

अदरक एवं हल्दी प्रमुख मसाले वाली फसलें है। भारत इन दोनों का बड़ा उत्पादक देश है। अदरक का प्रयोग गरम मसालों के अतिरिक्त सब्जी, अचार, चटनी, सॉस आदि बनाने में तथा खाद्य पदार्थो में सुगन्ध के लिए किया जाता है। अदरक को अपने औषधीय गुणों के लिए जाना जाता है। अदरक सौंठ या अवलेह के रूप में भी उपयोगी है जो गैस एवं पेट के रोग के लिए लाभदायक है। अदरक में पोषक तत्व जैसे प्रोटीन, वसा, रेषा एवं खनिज पदार्थ जैसे कैल्शियम और फॉस्फोरस पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। इसकी गाँठों में विटामिन 'सी', 'ए' व 'बी' अधिक मात्रा में पाए जाते हैं, जो कि गर्म तासीर वाला, पाचक, उत्तेजक, क्षुधावर्धक, कृमिनाशक तथा त्रिदोषनाशक (कफ–पित्त–वात नाशक) होता है। इसके अलावा इसका तेल 'जिन्जैशल' का प्रयोग दवाइयों में भी किया जाता है।

हल्दी मुख्यतः मसाले के रूप मे उपयोग की जाती है। परन्तु यह रंग और औषधि के रूप में भी प्रयोग मे लायी जाती है। मसाले के रूप मे हल्दी खाद्य पदार्थो का स्वाद बढाने के साथ साथ उनको अपने रंग से आकर्षक बनाती है। रंग के रूप में हल्दी ऊन, रेशम व सूत को रंगने के काम मे ली जाती है। आयुर्वेद मे हल्दी का उपयोग कई प्रकार की दवाओं को बनाने मे करते है। हल्दी की गुणवत्ता का आधार इसमें पाये जाने वाले रंगीन पदार्थ क्युकुरमिन (2.5 से 9.3 प्रतिशत), वाष्पाशील तेल (3.5 प्रतिशत) की मात्रा है।

उत्तराखण्ड की भौगोलिक परिस्थितियाँ तथा जलवायु अदरक एवं हल्दी उत्पादन के लिए उपयुक्त होने के कारण यहाँ की प्रमुख नगदी फसल है, जिससे किसानों को सीमित भूमि पर अधिक लाभ मिलता है। उपयुक्त जलवायु होने के कारण भी उत्तर भारत के उत्पादकों को अदरक एवं हल्दी की खेती से अधिक लाभ नहीं मिल पा रहा है, जिसके प्रमुख कारण हैं :

1. जलवायु एवं भूमि के अनुसार अच्छी व उन्नत किस्मों का अभाव
2. सस्य क्रियाओं के मानकीकरण का अभाव
3. अदरक बीज पर अधिक व्यय
4. कीट–रोग से सुरक्षा का अभाव तथा कन्द सड़न व पीत रोग एवं भण्डारण में सड़न जैसे रोगों का प्रकोप
5. फसल चक्र का न अपनाया जाना
6. किसानों में अदरक एवं हल्दी की खेती के तकनीकी ज्ञान का अभाव

उन्नत उत्पादन तकनीक–

जलवायु– अदरक एवं हल्दी की सफल खेती के लिए गर्म व नम जलवायु की आवश्यकता होती है। समुद्र तल से 1500 मीटर की ऊँचाई तक इसकी खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है, परन्तु 300–1000 मीटर ऊँचाई वाले क्षेत्र इसकी खेती के लिए उपयुक्त हैं। वर्षा का सामान्य रूप से लगातार फसल पकने से एक माह पूर्व तक होना अच्छा होता है लेकिन खेत में पानी नहीं ठहरना चाहिए। छाया भी इसकी अच्छी पैदावार के लिए आवश्यक होती है। अतः अदरक एवं हल्दी की खेती फलोद्यानों में अन्तः फसल के रूप में भी की जा सकती है।

मृदा– अदरक एवं हल्दी की खेती विभिन्न प्रकार की मृदा में की जा सकती है, परन्तु अच्छी पैदावार के लिए उचित जल निकास वाली दोमट या बलुई दोमट मिट्टी जिसमें कार्बनिक पदार्थ काफी मात्रा में हो इसके लिए अच्छी होती है।

भूमि की तैयारी– जिस खेत में अदरक एवं हल्दी की बुवाई करनी हो उसकी पहले एक गहरी जुताई करने के बाद 3–4 साधारण जुताई करके खरपतवार निकाल कर फिर पाटा चलाना चाहिए। खेतों को अच्छी तरह

समतल करते हुए खेत का ढलान अन्दर की ओर रखना चाहिए, जिससे खेत में अधिक जल संरक्षण होगा व भूमि का कटाव भी कम होगा। जहाँ पर जल निकास की उत्तम सुविधा का अभाव हो वहाँ पर एक मीटर चौड़ी एवं 15 सेमी. ऊँची एवं सुविधानुसार 10–15 मीटर लम्बी क्यारियाँ बनाए। दो क्यारियों के बीच 30 सेमी. चौड़ी नालियाँ जल निकास एवं सिंचाई के लिए पर्याप्त होती है।

खाद एवं उर्वरक– अदरक एवं हल्दी की फसल को काफी मात्रा में खाद एवं उर्वरकों की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि यह भूमि से काफी अधिक मात्रा में पोषक तत्वों को ग्रहण करती है। बोने से पहले 25 से 30 टन गोबर की सड़ी हुई खाद या कम्पोस्ट प्रति हैक्टेयर खेत तैयार करते समय डालें। इसके अतिरिक्त अच्छी उपज के लिए 100 किग्रा. नाइट्रोजन, 80 किग्रा. फास्फोरस एवं 80 किग्रा. पोटाश प्रति हैक्टेयर की आवश्यकता होती है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा व फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय डाले। शेष नाइट्रोजन दो बार में अंकुरण के एक दो महीनों के अन्तराल पर गुड़ाई के समय डालें।

उन्नत किस्में–

अदरक–

- **रियो–डी–जेनेरियो–** यह कम ऊँचाई वाले क्षेत्रों के लिए एक अच्छी किस्म है। इसमें रेशे की मात्रा अन्य किस्मों की अपेक्षा अधिक पायी जाती है। इसकी भंडारण क्षमता अधिक एवं औसत उपज 170–230 कुन्तल प्रति हैक्टेयर है।
- **सुप्रभा–** अदरक की इस किस्म में अधिक फुटाव होता है साथ ही इसके कंद लम्बे, अण्डाकार सिरों वाले तथा चमकीले भूरे रंग के होते हैं। यह पर्वतीय क्षेत्रों के लिए एक उत्तम किस्म है।
- **सुरूचि–** यह अधिक पैदावार देने वाली किस्म है। इसके कंद हरापन लिए हुए पीले रंग के होते हैं। इसमें रेशे की मात्रा कम तथा तेल व ओलिओरेजिन पदार्थ की मात्रा सुप्रभा किस्म से अधिक होती है। इस किस्म की रोग प्रतिरोधक क्षमता अधिक है।
- **सुरभि–** यह एक अधिक पैदावार देने वाली किस्म है। इसमें कंद अधिक संख्या में बनते हैं, जिनका छिलका गहरे चमकीले रंग का होता है। इसमें तेल की मात्रा अन्य किस्मों से अधिक पायी जाती है।
- **हिमगिरी–** यह किस्म उच्च कोटि की हरी अदरक के लिए निचले एवं औसत ऊँचाई वाले हिमालयी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। यह 230 दिन में तैयार हो जाती है तथा इसकी औसत उपज 130–140 कुन्तल प्रति हैक्टयर तक होती है।

हल्दी–

- **पंत पीताभ–** यह किस्म 210 दिन में परिपक्व हो जाती है तथा 250 क्विंटल/हैक्टेयर, उपज देती है। इसमें प्रकन्द बड़े व आकर्षक होते है।
- **स्वर्णा–** यह किस्म जल्दी पकने वाली है जो 200 दिन में परिपक्व तथा 175 क्विंटल/हैक्टेयर उपज देती है।
- **राजेन्द्र सोनिया–** इस किस्म की फसल 225 दिन में तैयार हो जाती है तथा 480 क्विंटल/हैक्टेयर, उपज देती है। यह किस्म पत्ती धब्बा रोग हेतु रोगरोधी है।
- **प्रभा–** इस किस्म की परिपक्वता अवधि 200 दिन तथा प्रति हैक्टेयर 375 क्विंटल उपज देती है।
- **रोमा–** यह किस्म 250 दिन में परिपक्व होती है। उत्पादन 207 क्विंटल/हैक्टेयर, शुष्क हल्दी 31. 10 प्रतिशत, आलियोरोजिन 13.20 प्रतिशत, इरोन्सियल आयल 4.4 प्रतिशत सिंचित एवं असिचिंत दोनों के लिए उपयुक्त होती है।
- **सूरमा–** इसकी परिपक्वता अवधि 250 दिन एवं उत्पादन 290 किंवटल/हैक्टेयर, शुष्क हल्दी 24. 8 प्रतिशत, आलियोरोजिन 13.5 प्रतिशत, इरोन्सियल आयल 4.4 प्रतिशत होता है।
- **सोनाली–** इसकी अवधि 230 दिन एवं उत्पादन 270 किंवटल/हैक्टेयर, शुष्क हल्दी 23 प्रतिशत, आलियोरोजिन 11.4 प्रतिशत, इरोन्सियल आयल 4.6 प्रतिशत होता है। इस वर्ग की कोयम्बटूर–1, 35एन, पीटीएस–43, पीसीटी–8 जातियॉ भी है। इसके अतिरिक्त दवा के लिए सफेद हल्दी कुर्कुमा

अमाड़ा एवं प्रसाधन सामग्री हेतु कुर्कुमा एरोमोटिका की भी कई प्रजातियाँ तैयार की गयी है।

बीज की मात्रा एव बीज उपचार–

एक हैक्टयर क्षेत्रफल की बुवाई के लिए 3–4 सेमी. लम्बे या 15–20 ग्राम के एक या दो आँख वाले लगभग 15–18 कुन्तल प्रकंदों की आवश्यकता पड़ती है। अदरक एवं हल्दी का बीज उन्नत किस्म का तथा बीमारी रहित होना चाहिए। बुवाई से पूर्व बीज के उपचार हेतु इन्डोफिल एम–45 (0.25 प्रतिशत) एवं बाविस्टिन (0.1 प्रतिशत) के घोल से आधा घण्टा तक कन्दों को उपचारित कर छाया में सुखाकर बुआई करनी चाहिए। जैविक बीज उपचार के लिए अदरक को *ट्राइकोडर्मा हारजियानम* तथा *स्यूडोमोनास फ्लोरीसेन्स* (8–10 ग्राम प्रति लीटर) के घोल में आधे घंटे तक डुबाकर उपचारित करें।

बुवाई का समय व विधि–

मैदानी क्षेत्रों एवं निचले पर्वतीय क्षेत्रों में मई–जून तथा मध्य पर्वतीय क्षेत्रों में अप्रैल–मई माह में बुवाई की जाती है। अगेती बुवाई से अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है परन्तु जिन स्थानों में खेती वर्षा पर आधारित होती है। वहाँ पर पहली वर्षा के बाद इसकी बुवाई करनी चाहिए। बुवाई के समय खेत में पर्याप्त नमी होना आवश्यक है। कन्दों को कतारों में 30 से.मी. एवं पौधे से पौधे की 15–20 से.मी. दूरी तथा 5 सेमी0 गहरी भूमि में दबा देना चाहिए तथा बीज को मिट्टी से अच्छी प्रकार से ढक देना चाहिए।

पलवार या मल्च–

पलवार का अदरक एवं हल्दी में बहुत महत्व है। मल्च खरपतवार नियंत्रण, तापमान नियंत्रण, भूमि का कटाव रोकने तथा नमी बनाए रखने के लिए जरूरी है। क्यारियों को सूखी घास, सूखे पत्ते, हरी पत्तियाँ, फसल अवशेष या गोबर की सड़ी खाद से ढक कर रखना चाहिए। यदि पहली मल्च सड़ जाये तो 40 दिन के बाद दूसरी बार मल्च की तह लगानी चाहिए। गन्ने की पत्ती व गेहूँ के भूसेका प्रयोग नहीं करना चाहिए इसमें दीमक का प्रकोप ज्यादा होता है, जिससे फसल को नुकसान होता है।

खरपतवार नियंत्रण एवं सिंचाई–

अदरक एवं हल्दी के खेत को भुरभुरा खरपतवार रहित रखने के लिए फसल में 2–3 बार निराई–गुड़ाई करनी चाहिए। इस समय भूमि के बाहर निकली गांठों पर भी बिना क्षति पहुचायें मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए। फसल में बराबर नमी बनी रहे इसके लिए खेत की आवश्यकतानुसार सिचांई करते रहना चाहिए। अप्रैल–मई में लगायी गयी फसल को वर्षा से पूर्व 2–4 सिंचाई की आवश्यकता होती है। बरसात में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती, परन्तु जल निकास का उचित प्रबन्ध होना चाहिए। खुदाई से एक माह पूर्व सिचांई बंद कर देनी चाहिए।

खुदाई एवं उपज–

अदरक की बुवाई के लगभग 7–8 माह बाद जब पत्तियाँ सूखने लगे तब फसल खुदाई के लिए तैयार हो जाती है। सौंठ के लिए फसल को पूर्ण पक जाने पर ही खोदना चाहिए। पाला पड़ने से पहले ही अदरक को निकाल लेना चाहिए अन्यथा पाला कन्दों को नुकसान पहुँचाता है। फावड़े अथवा खुर्पी की सहायता से कन्दों को बिना हानि पहुँचाये खोद कर निकालना चाहिए। हरे अदरक की खुदाई 5–6 माह में कर सकते है। हरी अदरक की औसत उपज 20–30 टन प्रति हैक्टेयर होती है।

हल्दी की अगेती फसल 7 माह, मध्यम 8 माह, पछेती 9 से 10 माह में पककर तैयार हो जाती है। फसल के पकने पर पत्तियॉ पीली तथा सूख जाती है। इस समय धन कंद पूर्ण विकसित हो जाते है। धनकंद की खुदाई से 4 से 5 दिन पहले हल्की सिंचाई कर देते है। जिससे प्रकंद पुंजों को आसानी से खोदकर निकाला जा सके। प्रकंद पुंजों को भूमि से निकालने से पूर्व ऊपर की पत्तियॉ काट कर अलग कर देते है। तत्पश्चात् प्रकंद, भूमि से कुदाली या फावड़ों की सहायता से आराम से निकाल लेते है, फिर प्रकंदो को अच्छी तरह से पानी से धो लेते है, तत्पश्चात् प्राथमिक (मातृ प्रकंद) व द्वितीयक (फिन्गर्स) प्रकंद अलग कर लेते है और विधि पूर्वक उबलने के उपरांत हल्दी बनाकर विपणन कर देना चाहिए।

वैज्ञानिक विधि से हल्दी की खेती करने पर सिंचित क्षेत्रों मे शुद्ध फसल से 250 से 400 क्विंटल और सिंचित क्षेत्रों से 200 से 350 क्विंटल प्रति हैक्टेयर कच्ची हल्दी प्राप्त की जाती है। सुखाने के बाद कच्ची

हल्दी की यह उपज 15 से 25 प्रतिशत तक होती है।

फसल सुरक्षा–

(1) कंद गलन– रोगग्रस्त पत्तियाँ पीली पड़ जाती है और पौधा धीरे–धीरे सूख जाता है। पौधे के तने एवं जड़ पर पानीयुक्त चिपचिपा एवं रंग रहित पदार्थ जम जाता है, जो कंद को सड़ा देता है। रोकथाम के लिए कन्दों को बुवाई से पहले उपचारित कर लें एवं रोग नियंत्रण के लिए फफूँदीनाशक जैसे बाविस्टीन (0.1 प्रतिशत) को जड़ के पास मिला देते हैं।

(2) पर्ण चित्ती– पत्तियों पर रंग रहित लकीरें बनती हैं फिर पीले रंग के लम्बे या लाल रंग के गोल धब्बे बन जाते हैं, जो बाद में भूरे रंग के हो जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए बीमारी शुरू होते ही ताम्रयुक्त किसी भी फफूँदनाशक रसायन जैसे ब्लाइटाक्स 50 या कॉपर ब्लू के 0.3 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।

◆◆◆

प्रमुख औषधीय एवं सगंध पौधों की वैज्ञानिक खेती

डा० वी०पी० सिंह
संयुक्त निदेशक (औषधीय एवं सगंध पौध शोध केन्द्र)
गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल : hortvp@gmail.com

उपयोग– लैमनग्रास की व्यापारिक खेती तेल के लिए की जाती है। इसके तेल का मुख्य घटक सिट्रल होता है, जिसकी उपस्थिति के कारण तेल में नींबू जैसी तीखी सुगंध आती है। इसके तेल का उपयोग मुख्यतः इत्र बनाने तथा नींबू की ताजगी वाले साबुनो में किया जाता है। यह विटामिन–ए का बहुत अच्छा स्रोत है, जिसका उपयोग दवा आदि बनाने में किया जाता है। इसके अलावा इसकी पत्ती को चाय में डालकर पीने से ताजगी आती है, तथा सर्दी से राहत मिलती है।

लैमनग्रास

पादप विवरण– लैमनग्रास बहुवर्षीय, मधुरगन्धी लम्बी घास है, जिसकी ऊँचाई लगभग 1.5–2.0 मीटर होती है। पौधा हरा झुंड के आकार का होता है। पत्तियों की लम्बाई लगभग 125 से0मी0 तथा चौड़ाई 1.7 से0मी0 होती है। तने पर लाल रंग की धारियाँ होती है।

रासायनिक संगठन– लैमनग्रास का मुख्य सक्रिय घटक सिट्रल है जो कि इसके तेल में 80–90 प्रतिशत तक होता है। तेल में उपस्थित सिट्रल से अल्फा आयोनेन तथा बीटा आयोनेन तैयार किये जाते है। बीटा आयोनेन–ओ को आगे संश्लेषित करके विटामिन ए तैयार किया जाता है।

भूमि तथा जलवायु– लैमनग्रास की खेती के लिए रेतीली दोमट हल्की मिट्टी जिसका पी0एच0 मान 6.0–7.0 तक हो सर्वाधिक उपयुक्त होती है। भूमि में जल निकास की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। लैमनग्रास की फसल के लिए उष्ण तथा समशीतोष्ण जलवायु जहाँ पर्याप्त सूर्य का प्रकाश, आर्द्र जलवायु तथा 2000–2500 मि0मी0 वार्षिक वर्षा हो सर्वाधिक उपयुक्त होती है।

प्रजातियाँ– लेमनग्रास की उन्नत किस्मों में प्रगति, प्रमाण, सुगन्धी, कावेरी, कृष्णा, आर0एल0एल0–16, जी0आर0एल0, ओ0डी0–19, एस0डी0–16, सी0के0पी0–25, चिरहरित एवं नीमा प्रमुख है।

खेत की तैयारी– लेमनग्रास एक बहुवर्षीय फसल है अतः एक बार लगा देने के बाद लगभग 4–5 साल तक लगातार फसल ली जा सकती है, अतः फसल को बोने से पूर्व खेत की दो–तीन बार हैरो से आड़ी तिरछी जुताई करनी चाहिए, तथा आखिरी जुताई के समय गोबर की खाद या कम्पोस्ट मिट्टी में अच्छी प्रकार मिला देना चाहिए।

खाद– लेमनग्रास की फसल के लिए खेत तैयार करते समय 20–25 टन प्रति है. गोबर की खाद या कम्पोस्ट जैव उपचारित करने के बाद डालनी चाहिए, इसके बाद प्रत्येक कटाई के उपरान्त 5 टन प्रति है. कम्पोस्ट या गोबर की खाद डालनी चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग नहीं करना चाहिए फिर भी औसतन 60 किग्रा. नत्रजन, 16 किग्रा. फास्फोरस तथा 16 किग्रा. पोटाश देने से उपज को बढ़ाया जा सकता है। नत्रजन का 1/3 भाग बुआई के समय तथा शेष मात्रा फसल की प्रत्येक कटाई के उपरान्त डाले।

प्रवर्धन– लेमनग्रास की बुवाई बीज तथा स्लिप से की

जाती है। स्लिप से की गयी बुआई अधिक लाभकारी होती है। सर्वप्रथम लेमनग्रास के लगभग एक वर्ष पुराने पौधों को उखाड़कर उनके साथ लगी सूखी पत्तियों को तथा ऊपर की हरी पत्तियों को काट देते है बाद में स्लिप्स को अलग कर लिया जाता है यही स्लिप्स प्लाटिंग मेटेरियल के रूप में प्रयोग की जाती है। पौधों की आपस की दूरी 2×2 फुट रखनी चाहिए। प्रति हेक्टेयर लगभग 30,000–40,000 पौधों की आवश्यकता होती है।

रोपाई का समय– लेमनग्रास की रोपाई का उचित समय फरवरी–मार्च तथा जुलाई–अगस्त है लेकिन सिंचाई की उचित व्यवस्था होने पर नवम्बर से जनवरी को छोड़कर किसी भी मौसम में इसकी रोपाई की जा सकती है।

रोपाई की विधि– रोपाई करने से पहले स्लिप से सभी पुरानी पत्तियाँ हटा देनी चाहिए। हल्की सिचाई के बाद एक छोटी कुदाल से या लकड़ी से उचित दूरी पर 5–10 से0मी0 गहरे छिद्र बना लेने चाहिए, लगाने से पूर्व स्लिप्स को गोमूत्र में 2 घंटे डुबोकर छिद्रो में रोपाई चाहिए। स्लिप को अच्छी प्रकार खड़ी करके रोपे तथा उसकी जड़ें मुड़े नहीं इसके लिए उसकी पुरानी जड़ों को काट देना चाहिए। स्लिप लगाने के बादे निचले हिस्से को मिट्टी से अच्छी तरह दबा दें। रोपाई के बाद खेत में पानी छोड़ें।

सिचाई– अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए फसल में समय–समय पर सिचाई करते रहना चाहिए। गर्मी के मौसम में 15–20 दिन तथा सर्दियों में 30–40 दिन के अन्तराल पर सिचाई करते रहना चाहिए। यदि खेत में मल्चिंग कर दी जाय तो सिचाई तथा निराई–गुड़ाई के व्यय को बचाया जा सकता है। इसके लिए आसवित घास को लेमनग्रास के पौधों के बीच में बिछा दिया जाता है। जिससे नमी बनी रहती है, तथा इसके सड़ने पर पौधों को खाद भी मिल जाती है तथा खेत में खरपतवार भी कम निकलती है।

निराई–गुड़ाई– नींबू घास को रोपाई के 45–50 दिन तक ही निराई–गुड़ाई की आवश्यता होती है इसके बाद प्रत्येक कटाई के बाद फावड़े से गुड़ाई करनी चाहिए।

कीट एवं रोग– इस फसल में रोग एवं कीटों का प्रकोप कम होता है। वैसे कभी–कभी पर्ण विन्दु (लीफ स्पॉट) तथा अंगमारी (लीफ व्लाइट) रोग दिखाई पड़ते है। इस रोग में पत्तियों पर छोटे–छोटे गुलाबी बिन्दु दिखते है तथा पत्तियाँ पीली पड़कर सूख जाती है। रोकथाम के लिए मैकोजेब या डायफोलेटान का 0.3 प्रतिशत घोल पत्तियाँ पर छिड़कना चाहिए। खेत में दीमक की सम्भावना हो तो बुवाई के समय 1 टन प्रति है. की दर से नीम की खली डालनी चाहिए।

कटाई– बुवाई के लगभग 120 दिन बाद फसल कटाई के लिए तैयार हो जाती है। कटाई के समय फसल लगभग 3–3.5 फीट ऊँची होनी चाहिए। कटाई हमेशा जमीन से 15–20 से0मी0 ऊपर से करनी चाहिए। प्रथम कटिंग से उपज बहुत कम प्राप्त होती है लेकिन पहली कटाई के बाद फसल तेजी से बढ़ती है तथा 90–100 दिन के अन्तराल पर अन्य कटाइयाँ ली जाती है। यह क्रम अगले 3–4 साल तक लगातार चलता रहता है। लेमनग्रास की कटाइयों की संख्या भूमि की उर्वरता तथा पानी की उपलब्धता पर निर्भर करती है। समस्त परिस्थितियाँ अनुकूल होने पर एक वर्ष में 4–5 कटिंग ली जा सकती है।

पत्तियों से तेल प्राप्ति– लैमनग्रास की पत्तियों से तेल निकालने के लिए इसकी पत्तियों का आसवन किया जाता है। फसल को काटने के बाद छाया में डालकर हल्का सुखा लिया जाता है। इसके बाद घास को टुकड़ों में काटकर आसवन टैंक में डालकर तेल निकाला जाता है। आसवन की प्रक्रिया ढ़ाई से तीन घंटे में पूरी हो जाती है।

उपज– वैज्ञानिक विधि से खेती करने पर 2 या 3 कटाइयों से अधिकतम 100–150 किग्रा. प्रति है. तेल प्रथम वर्ष में प्राप्त किया जा सकता है। जबकि शेष 3–4 वर्षो तक प्रति वर्ष चार कटाइयों से 200–250 किग्रा. तेल प्रति है. प्राप्त किया जा सकता है। पत्तियों में तेल की मात्रा 0.5–1.0 प्रतिशत तक होती है।

ब्राह्मी

पादप विवरण– ब्राह्मी का पौधा छोटा, छत्तेदार, रेंगने वाला, बहुवर्षीय शाक होता है। तना जमीन में दूर–दूर तक फैला हुआ होता है। जिसकी प्रत्येक गाँठ पर अनेक मूल, फूल और फल आते है। इसकी शाखायें मुलायम छोटे–छोटे तथा पत्ते गूदेदार होते है। इस पर

सफेद व बैगनी रंग के फूल लगते है।

उपयोग– औषधीय पौधों में ब्राह्मी का विशेष स्थान है। ब्राह्मी का उपयोग मस्तिष्क टॉनिक के रूप में किया जाता है। इसका पौधा बलवर्द्धक, वीर्य–विकारों को दूर करने वाला तथा स्वरमाधुर्यकारक होता है। परीक्षणों के आधार पर यह कैंसर रोधी, प्रतिदाहक, हृदय तथा तंत्रिका बलवर्धक, पीड़ाहारी तथा सूजनहारी आदि गुणों से भी भरपूर पाया गया है।

भूमि तथा जलवायु– ब्राह्मी की खेती के लिए दोमट भूमि जिसमें पर्याप्त मात्रा में कार्बनिक पदार्थ हो, सर्वोत्तम होता है। यद्यपि इसकी खेती लगभग हर प्रकार की भूमियों में की जा सकती है। हल्की दलदली भूमि में इसकी वृद्धि अच्छी देखी गयी है। फसल के लिए 32^0–40^0 से0 तापमान तथा 65–80 प्रतिशत आद्रता अच्छी होती है।

प्रजातियाँ– इसकी अभी तक दो प्रजातियाँ प्रज्ञाशक्ति तथा सुबोधक खेती के प्रयोग में ली जा रही है। इनके अलावा नई किस्म निकालने के लिए शोध कार्य भी किये जा रहे है।

रोपाई– ब्राह्मी की रोपाई तने की कटिंग के द्वारा सीधे खेत में की जाती है। कटिंग लगाने के लिए मार्च–जून का महीना सर्वोत्तम है लेकिन पानी की उपलब्धता पर फसल कभी भी लगायी जा सकती है। यह दूब घास की तरह जल्दी जड़ें पकड़ लेती है। कटिंग के लिए पौधे के 4–5 से0मी0 लम्बे टुकड़े काट लिये जाते है, कटे हुए टुकड़ों को खेत में रोपाई के तुरन्त बाद पानी लगा दिया जाता है। इसकी रोपाई 30X30 से0मी0 पर करनी चाहिए। रोपण सामग्री की मात्रा कम होने की स्थिति में रोपाई 40X30 या 40X40 से0मी0 पर भी की जा सकती है। एक बार फसल बोने के बाद कई वर्षो तक इसकी पैदावार ली जा सकती है।

सिचाई– ब्राह्मी की फसल वाले खेत में लगातार नमी बनी रहनी चाहिए, इसलिए 10–12 दिन के अन्तराल पर सिचाई करते रहना चाहिए। यह भी ध्यान रहे कि खेत में लगातार पानी भी नहीं भरा रहे अन्यथा फसल गलने लग जायेगी। वर्षा के दिनो में पानी की आवश्यकता बहुत ही कम होती है।

खरपतवार नियंत्रण– चूँकि ब्राह्मी का पौधा बहुत छोटा होता है इसलिए इस फसल को खरपतवारों से बचाने के लिए रोपाई के प्रारम्भिक दिनो में निराई करके जो खरपतवार उगे उन्हें निकालते रहना चाहिए। फसल से अधिक उत्पादन लेने के लिए फसल को खरपतवारों से बचाना बहुत आवश्यक है। बाद में इसकी फसल जमीन के ऊपर एक मोटी घनी चटाई सी बना देती है जो अधिक खरपतवारों को नही उगने देती है।

खाद एवं उर्वरक– ब्राह्मी की फसल के लिए अच्छी सड़ी हुई गोबर की जैव उपचारित खाद 35–40 टन प्रति है. की दर से खेत में डालनी चाहिए तथा यह मात्रा खेत की तैयारी के समय ही खेत में मिला देनी चाहिए। किसी भी प्रकार के रासायनिक उर्वरक का प्रयोग न करें।

कीट एवं रोग– फसल पर कभी–कभी निम्न कीट जैसे ग्रासहॉपर, तम्बाकू कटवार्म, स्पोडोप्टेरा लिटूरा आदि का प्रकोप देखने को मिल जाता है। इन सभी कीटों के नियंत्रण के लिए फसल पर नीम के निस्सार का छिड़काव करके फसल को कीटों से बचा सकते है। फसल पर किसी भी रासायनिक कीटनाशी या खरपतवारनाशी का प्रयोग नही करना चाहिए क्योंकि फसल का पूरा पौधा औषधि के रूप में प्रयोग किया जाता है।

फसल की कटाई– फसल रोपाई के 3–4 महीने बाद पहली कटाई के लिए तैयार हो जाती है। फसल की कटाई हसियों से जमीन से 2 इंच ऊपर से करनी चाहिए। पहली कटाई के बाद फसल को 3 माह के अन्तराल पर काटना चाहिए। फसल को 3–4 वर्ष बाद पूर्ण रूप से कटाई करके नई कटिंग लगानी चाहिए।

फसल को भण्डारण करने से पहले अच्छी तरह सुखा लेना चाहिए तथा सुखाने के बाद फसल को साफ बोरों में भरकर नमी रहित भण्डार ग्रह में रखें।

उपज– फसल की प्रथम कटाई से लगभग 50–60 कु0 प्रति है. सूखे शाक प्राप्त होती है तथा दूसरी कटाई से लगभग 35–40 कु0/है. सूखे शाक प्राप्त की जा सकती है। इस तरह दो कटाईयों से लगभग 90–100 कु0 सूखी शाक प्रति है. प्रति वर्ष प्राप्त की जा सकती है।

सर्पगंधा

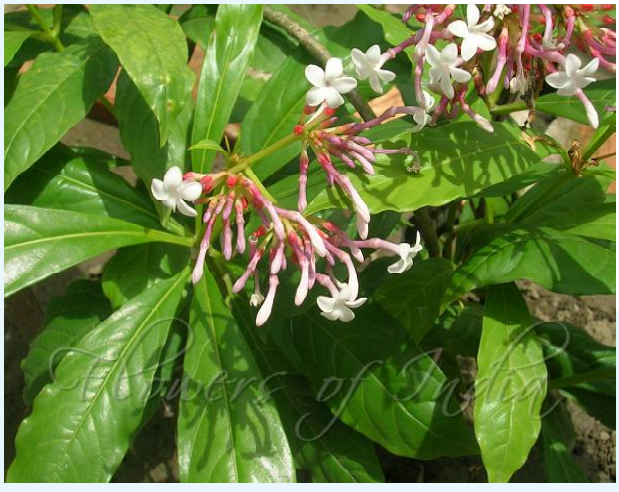

पादप विवरण– पौधा सीधा, बहुवर्षीय, झाड़ीनुमा जिसकी ऊँचाई 30 से 50 से0मी0 तक होती है। मुख्य जड़ कन्दरूप नर्म तथा कड़वी होती है। पत्तियाँ चिकनी, भालाकार होती है जिसकी लम्बाई 9–16 से0मी0 तथा चौड़ाई 3–7 से0मी0 होती है। पत्ती की ऊपरी सतह चमकीले हरे रंग की तथा निचली सतह पीले हरे रंग की होती है। पौधे की जड़ में एल्केलाइडस अधिक मात्रा में पाये जाते है।

उपयोग– इसकी जड़ें दर्द निवारक तथा निद्रा कारक होती है। परम्परागत चिकित्सा में सर्पगंधा बहुधा ''पागलबूटी'' अथवा ''पागलपन'' की दवा के रूप में भी जानी जाती है। निम्न रक्तचाप वाले रोगी तथा गर्भवती महिलाओं को इस औषधि का प्रयोग नही करना चाहिए।

भूमि तथा जलवायु– सर्पगंधा की खेती के लिए उचित जीवाँश वाली बलुई दोमट से चिकनी दोमट मृदा जिसका पी0एच0 मान 5–6.5 के आस–पास हो तथा जिसमें जल निकास की उचित व्यवस्था हो, उचित है। पौधा 10^0 से.ग्रे. से लेकर 45^0 से.ग्रे. के तापमान व 250–500 से0मी0 वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

प्रजातियाँ– सर्पगंधा की आर0एस0–1 प्रजाति जवाहर लाल नेहरू कृषि विश्वविघालय, जबलपुर से विकसित की गयी है, जो इसकी खेती हेतु पूर्णतया उपयुक्त है।

प्रर्वधन–सर्पगंधा का प्रर्वधन बीजों, तने की कलमों तथा जड़ों की कलम द्वारा किया जाता है।

तने की कलम– इस विधि में सर्पगंधा की 6–9 इंच लम्बी, सख्त लकड़ी जिसमें कम से कम 3 गाठें हो काटी जाती है। इन कलमों को इन्डोल एसिटिक एसिड (IAA) के 30 पी0पी0एम0 के घोल में 12 घंटे रखने के बाद रोपना चाहिए। सर्पगंधा की नर्सरी मई–जून में तैयार करनी चाहिए, नर्सरी में नमी बनाये रखना जरूरी है। इस विधि में 40–70 प्रतिशत तक पौधों का उगाव होता है तथा पौध रोपाई के लिए 70–75 दिन में तैयार हो जाती है।

जड़ों की कटिंग द्वारा– इस विधि में 2.0 से 2.5 इंच लम्बी मुख्य जड़ों की कटिंग को जैव कवक नाशी से उपचारित करके खाद, मिट्टी तथा रेत के मिश्रण से भरी पौलीथिन की थैलियों में लगा दिया जाता है। कटिंग, जिसकी मोटाई 0.25 से0मी0 हो, मई–जून में लगानी चाहिए। इस विधि में 50–80 प्रतिशत तक पौधों का उगाव होता है।

बीज द्वारा– सर्पगंधा में बीजों के द्वारा प्रवर्धन करना सबसे अच्छा होता है। लेकिन सर्पगंधा के बीज में अंकुरण की समस्या होती है, और बीज जितने पुराने होते जायेंगे उनमें उगने की क्षमता भी घटती जाती है। नर्सरी में बीज की बुवाई का उपयुक्त समय अप्रैल–मई होता है। बीज बोने से पहले बीज को जैव कवकनाशी (ट्राइकोडर्मा या स्यूडोमोनास) 4 ग्राम/किग्रा से उपचारित कर लेना चाहिए। एक हैक्टेयर के लिए 6 किग्रा बीज पर्याप्त रहता है।

पौध रोपण– चार से छः पत्तियों वाली पौध रोपाई के योग्य हो जाती है। पौध रोपण का उचित समय जुलाई–अगस्त का महीना होता है। रोपाई लाइनों में करनी चाहिए तथा पौधों से पौधों की दूरी 30 से0मी0 तथा लाइन से लाइन की दूरी 50 से0मी0 रखनी

चाहिए। रोपाई के तुरन्त बाद सिंचाई कर देनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक– 30–40 टन गोबर की खाद प्रति है. के हिसाब से देने पर फसल में अच्छी उपज व गुणवत्ता प्राप्त होती है। खाद भूमि की तैयारी के समय मिला देनी चाहिए।

सिचाई– अच्छी फसल लेने के लिए सिचाई का साधन होना अति आवश्यक है सिचाई तभी करनी चाहिए जब पौधा मुरझाने लगे। गर्मी के मौसम में 20 दिन तथा सर्दी में 30 दिन के अन्तराल पर सिचाई देनी चाहिए।

निराई–गुड़ाई– अच्छी फसल लेने के लिए खेत में से खरपतवार निकालना अति आवश्यक है। इसके लिए पहले वर्ष 4–5 निराई–गुड़ाई करनी चाहिए तथा दूसरे वर्ष 2–3 निराई–गुड़ाई की जानी चाहिए।

कीट एवं रोग– सर्पगंधा की जड़ों पर कई प्रकार के कृमि तथा नीमाटोडस विकसित हो सकते है। इनकी सुरक्षा के लिए प्रति है. 1 टन नीम की खली का प्रयोग रोपण से पूर्व करना चाहिए।

कटाई तथा सुखाई– फसल जब 18 महीने की हो जाय तो फसल की खुदाई कर लेनी चाहिए। क्योंकि इसी समय जड़ों में एल्केलॉइड्स की मात्रा सर्वाधिक होती है। खुदाई में सुविधा के लिये 8–10 दिन पहले सिचाई कर लेनी चाहिए, तथा पौधो को फावड़े से खुदाई करके उखाड़ना चाहिए। चूँकि सर्पगंधा की जड़ें सामान्यतः 40–45 सेन्टीमीटर गहराई तक जाती है। अतः खुदाई भी इतनी ही गहराई तक करनी चाहिये। जड़ों की खुदाई के बाद उनको बहते हुए पानी में धोना चाहिए। जिससे जड़ों पर से मिट्टी हट जाये। धुली हुई जड़ों को छायादार साफ स्थान में सुखाकर नमी रहित स्थान पर भण्डारित करना चाहिए।

उत्पादन एवं उपज– सर्पगंधा में विभिन्न विधियों से लगायी गयी फसल की उपज में भी काफी भिन्नता पायी जाती है। बीजों के द्वारा लगाई गयी फसल में जड़ों की मात्रा सर्वाधिक होती है। सामान्तया 18 माह की फसल में पर्याप्त मात्रा में एल्केलॉइडस विकसित हो जाते है लेकिन फसल को यदि अधिक समय के लिए खेत में रखा जाता है तो इनमें एल्केलॉइडस की मात्रा भी बढ़ती जाती है। दो वर्ष की फसल से 20–25 कु./है. सूखी जड़े तथा तीन वर्ष की फसल से 30–40 कु./है. सूखी जड़े प्राप्त की जा सकती है।

घृतकुमारी

उपयोग– कफ, ज्वर, यकृत विकार, रक्त शोधक, मधुमेह, कृमिनाशक आदि रोगों में प्राकृतिक माष्चराइजर व बालों में चमक लाने हेतु

भूमि व जलवायु– बलुई दोमट मृदा व शुष्क जलवायु उपयुक्त असिंचित दिशा में पौधों में औषधीय गुण प्रचुर मात्रा में।

खेत की तैयारी व पौध रोपण– 2–3 जुताई तथा गोबर की सड़ी खाद

रोपण– रूट सकर (कन्द) द्वारा जुलाई से अगस्त माह में पौधो के कन्दों की दूरी 60X45 सेमी0 प्रति हैक्टेयर पौधों की आवश्यकता 50–60 हजार

पत्तियों की तुड़ाई– रोपण के एक वर्ष एवं वर्षा ऋतु के बाद प्रत्येक पौधे की तीन पत्तियों को छोड़कर बाकी अन्य पत्तियों को तेज धार वाले चाकू से काट लेना चाहिए

उपज– 350 से 500 कुन्तल प्रति हैक्टेयर।

ग्वार पाठा

उपयोग–

इसका उपयोग यकृत व प्लीहा से सम्बन्धित रोगों के इलाज में किया जाता है। आयुर्वेद में कुमारी आसव नामक औषधि ग्वार पाठा से ही बनाई जाती है। शरीर के किसी भी भाग के जल जाने पर ग्वार पाठा का प्रयोग लाभप्रद है। इसके पत्ते का रस जलने वाले स्थान पर लगाने से जलन दूर होने के साथ ही फफोले नहीं पड़ते है तथा घाव शीघ्र भर जाता है। कमर दर्द की षिकायत में ग्वार पाठा का 10 से 20 ग्राम गूदा शहद के साथ और 2 से 4 ग्राम सौंठ चूर्ण के साथ सुबह शाम सेवन करने से लाभ होता है। त्वचा के विभिन्न रोग जैसे कील मुंहासे, खुजली, फोड़े–फुंसी, घाव आदि को दूर करने में भी इसका प्रयोग किया जाता है। चेहरे की झुर्रियां दूर करने, रंग निखारने और त्वचा को सुंदर व स्वस्थ बनाए रखने के लिए ग्वार पाठा का प्रयोग किया जाता है।

सजगता– ध्यान रहे कि गर्भवती महिलाओं और बच्चों को दूध पिलाने वाली माताओं को ग्वार पाठा का सेवन नहीं करना चाहिए। इसी तरह आंतों के घावों या सूजन की स्थिति और एपेन्डिसाइटिस की षिकायत में ग्वार पाठा का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

कालमेघ

- कालमेघ अथवा कड़ चिरायता तथा हरा चिरायता
- पौधे की बनाबट मिर्च के पौधे से मिलती जुलती
- रंग कालिमा लिये गहरा हरा
- पुश्प्प सफेद बैंगनी आभा लिये
- बीज पौधे पर बारीक फलियां आती है जिसमे छोटे चपटे बीज लगते है
- पौधे की गुणवत्ता इसमें पाये जाने वाले रसायनों पर निर्भर करती है

उपयोग– यकृत के लिए औषधि निर्माण में

उत्तम जलवायु– गर्म 35–45 डिग्री सेग्रे0

भूमि चुनाव– दोमट मिट्टी जिसमे पानी का उचित निकास हो

खेत तैयार करना एवं बैड्स बनाना– 2–3 फीट चौड़ी 10–15 सेमी0 ऊंची, पौधे से पौधे की दूरी 45 सेमी0 तथा लाइन से लाइन की दूरी 30–60 सेमी0. 500–1000 ग्राम बीज प्रति हैक्टेयर

बुवाई समय– जून से सितम्बर

सिंचाई– वर्षा न होने पर 15 दिन के अन्तराल पर

कटाई– रोपण के 3–4 महीने बाद कलियां आ जाने पर पौधे की बढ़वार रूक जाती है। इस अवस्था में पौधे को जमीन सतह से काटकर छाया में सुखा दें।

उपज– 60–70 कुन्तल प्रति/है.

◆◆◆

जैविक खेती

डा० धनंजय कुमार सिंह
प्राध्यापक (सस्य विज्ञान)
गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल : dhanajayrahul@rediffmailcom

जैविक खेती हमारे देश के किसान प्राचीन काल से करते रहे है क्योंकि खेतों को उपजाऊ बनाने के लिए जैविक खेती के अलावा कोई अन्य साधन उपलब्ध नही था। गोबर की खाद तथा सड़ी–गली पत्तियों की खाद होती थी, जो कि रासायनिक पदार्थो से मुक्त होती थी, फलस्वरूप फसलों से प्राप्त अन्न का प्रयोग करने पर स्वास्थ पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ता था। परन्तु कृत्रिम उर्वरक के प्रचलन के बाद विशेषतः वर्ष 1960 के बाद जिस तरह से उर्वरको एवं कृषि रसायनों के प्रयोग में वृद्धि आयी, वहीं दूसरी ओर देशी एंव परम्परागत खादें का उपयोग कम हो गया। परिणाम स्वरूप भूमि की उर्वरा शक्ति, भूमिगत जल, पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। लैम्पकिन ने 1990 में जैविक खेती को परिभाशित करते हुए बताया की जैविक खेती एक ऐसा उत्पादन तंत्र है, जिसमें रसायनिक खाद, वृद्धि नियन्त्रकों एंव पशुओं को खिलाये जाने वाले रासायनिक पूरकों का प्रयोग नहीं किया जाता। जैविक कृषि तंत्र के अर्न्तगत फसल चक्र परिवर्तन, फसल अवशेष, पशुओं के अवशेष से उत्पन्न खाद, दलहनी फसलों, हरी खाद एवं कृषि अवशेष का प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा जैविक नियन्त्रकों का प्रयोग भी किया जाता है, जिससें कीटों, रोगों एवं खरपतवार के नियन्त्रण के अतिरिक्त मृदा की उत्पादन क्षमता में भी वृद्धि होती है।

जैविक खेती का उद्देश्य टिकाऊ खेती करना है जिससे उत्तम गुणवत्ता के खाद्यान्न, फल, सब्जी इत्यादि का उत्पादन हो तथा साथ ही पर्यावरण प्रदूषण न हो एवं कृषि के आवश्यक संसाधनो जैसे मिट्टी तथा जल की गुणवत्ता मे किसी प्रकार की कमी न हो। इसके लिए कई जैविक स्त्रोत का उपयोग किया जाता है जैसे वर्मी–कम्पोस्ट, हरी खाद, जैव उर्वरक, दलहनी फसलों का फसल चक्र में समावेश तथा फसल अवशेषों का उपयोग।

पोषक तत्वों का प्रबंधन–

फसलों की अच्छी वृद्धि के लिए मुख्यतः 17 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है, जिनमें नाइट्रोजन एवं फास्फोरस अति आवश्यक तत्व है। ये तत्व पौधों को तीन प्रकार से उपलब्ध हो सकते हैं।

(क) रासायनिक खाद
(ख) गोबर की खाद
(ग) नाइट्रोजन स्थिरीकरण एवं फास्फोरस विलेयक जीवाणु

जैविक खाद एवं कम्पोस्ट–

खेत में हरी खाद, फसलों के अवशेष, बायोगैस प्लान्ट से निकाला मलवा, खली, केंचुए और कम्पोस्ट खाद के इस्तेमाल से भूमि की उर्वरता को बढ़ाया जा सकता है। भूमि का परिष्कार करने वाली इन उत्पादों का उपयोग मिट्टी की सूक्ष्मरंध्रता, वायु संचार, तापमान, जलशोषक क्षमता तथा सूक्ष्म जीवों (जीवाणुओं) में बढ़ोत्तरी में किया जाता है, जिससे जलमण्डल (राइजोस्फियर) के वातावरण में बदलाव के साथ–साथ फसलों के लिए आवश्यक तत्व जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम के साथ–साथ सूक्ष्म पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते है। जैविक खादों में गोबर की खाद तथा कम्पोस्ट, हरी खाद, मैले की खाद, अखाद्य खलियाँ (चूलू की खली) तथा शहरी कचरे आदि है।

हरी खाद–

अप्रैल महीने के अन्तिम सप्ताह से लेकर मई के प्रथम पखवाड़े तक हरी खाद देने वाली उक्त फसलों की बुवाई की जा सकती है, जो जैविक धान एवं अन्य फसलों के लिए फायदेमंद है। ढ़ैचा या सनई की 25–30 किग्रा. प्रति हेक्टर मात्रा हरी खाद उगाने के लिए प्रयाप्त है सामान्यतः छिटकवा विधि से ही हरी

खद को उगाया जा सकता है। अच्छी हरी खाद उगाने के लिए 45 से0मी0 की दूरी पर पंक्तिबद्ध बुआई की जा सकती है। हरी खाद में जल प्रबन्धन हेतु बुआई से पूर्व एक सिचाई करनी चाहिए उसके पश्चात् खेत तैयार करने के लिए 2 बार हैरो से जुताई कर 1–2 सिंचाई कर देनी चाहिए। हरी खाद की फसल को बुवाई के 55–60 दिन बाद खेत में मिला दें।

नेडेप कम्पोस्ट–

टांका (होज) का नाप एवं निर्माण विधि–

जमीन के ऊपर जहाँ पानी इकट्ठा नही होता हो, वहाँ 10 फुट लम्बे, 6 फुट चौड़े तथा 3 फुट गहरे आयताकार को पक्का ढांचा (हौज/टांका) तैयार किया जाता हैं दीवार की मोटाई 9 इंच से 12 इंच रखी जाती है तथा उसमें हवा के आने जाने के लिए प्रत्येक दीवार में 4X4 इंच वर्गाकार छिद्र रखे जाते हैं। टाँके की दीवारों व फर्श पर गाय के गोबर एवं मिट्टी से लिपाई कर दी जाती है।

टांका भरने की आवश्यक सामग्री–

- खेतों के अनावष्यक कार्बनिक पदार्थ– खरपतवार, फसल अवशेष, सूखी पत्तियाँ, बचा चारा इत्यादि 1500–2000 किग्रा.।
- कच्चा गोबर 60–100 किग्रा.।
- सूखी छनी खेत की बारीक मिट्टी– 1500 किग्रा।
- पर्याप्त पानी– 1200–1500 लीटर।

टांका भरने की विधि–

प्रथम भराई–

- पहले गोबर (8–10 किग्रा.) को 100–125 लीटर पानी में घोल बनाकर ढ़ाचें के अंदर की दीवारों व फर्श पर छिड़कें।
- पहली परत– फसल अवशेषों की 15 सेमी0 मोटी परत बनाये।
- दूसरी परत– 4–6 किग्रा. गोबर को 125–150 लीटर पानी में घोलकर पहली परत पर इस प्रकार छिड़के कि पहली परत पूरी तरह भीग जाये।
- तीसरी परत– छनी हुई बारीक खेत की मिट्टी की लगभग एक इंच मोटी परत (60–70 किग्रा.) दूसरी परत के ऊपर लगा देते हैं तथा पानी छिड़ककर गीला कर देते है।
- इसी क्रम में टाके को भरते चले जाते है तथा टाके की सतह के ऊपर एक–डेढ़ फुट ऊँचाई तक झोपड़ी की तरह ढलवां आकृति बनाई जाती हैं
- ढलवां आकृति पर 5–7 सेमी0 मोटी परत बारीक रेत की बनाते है। तथा मिट्टी–गोबर के मिश्रण का लेप लगाकर टांके को सील कर देते है।

द्वितीय भराई–

पहली भराई 15–20 दिन बाद गड्ढा बैठ जाये तब पहले के क्रमानुसार 1.5 फुट ऊँचाई तक परत दोबारा लगाते है तथा मिट्टी गोबर से पहले की भॉति लेपकर बन्द कर देनी चाहिए। दरारों पर पानी छिड़क कर लीप कर बन्द कर देना चाहिए। समय–समय पर पानी छिड़क कर नमी बनाये रखनी चाहिए। 100–120 दिनों में खाद/पदार्थ सड़कर तैयार (भूरे रंग का) हो जाता है। इस विधि द्वारा एक गड्ढे से 12–15 टन तक कम्पोस्ट खाद प्रति वर्ष प्राप्त की जा सकती है।

वर्मी कम्पोस्ट–

एक जैविक प्रक्रिया, जिसमें केचुएं कार्बनिक पदार्थों व गोबर को एक उचित वातावरण में रहकर खाद के रूप में परिवर्तित करते है। इस प्रकार की तैयार खाद वर्मी कम्पोस्ट कहलाती है।

केंचुए की विशेषता–

1. भूमि की अन्तः सतह पर कार्बनिक पदार्थों/अवशिष्टों को खाते है तथा उपयोगी खाद (कम्पोस्ट) में बदलते है।
2. लाभदायक सूक्ष्म जीवाणुओं की संख्या को बढावा देते है तथा मृदा को पोषक तत्वों से तष्प्त करते है।
3. मृदा में वायु संचार को बढ़ाकर इसे भुरभुरा बनाते है।
4. भूमि को प्राकृतिक जुताई प्रदान करते है।
5. भूमि को पोला–नरम बनाते है तथा जल निकास में वृद्धि करते है।
6. भूमि की जलधारण क्षमता को बढाते है।
7. एन्जाइम हार्मोन्स, विटामिन्स तथा एन्टीबायेटिक्स को उत्पादित कर पौधों में रोगरोधी क्षमता को बढाते है।

आवश्यक सामग्री–

1. जैव/कार्बनिक पदार्थ – 700–800 किग्रा.

2. बारीक जैव पदार्थ – 200–300 किग्रा.
3. सड़ी हुई गोबर की खाद – 300–400 किग्रा.
4. केंचुए – 1000 प्रति वर्गमीटर
5. पानी – आवश्यकतानुसार

विधि–

स्थान– पानी के स्रोत या धारे के पास हो परन्तु पानी इकट्ठा होकर ठहरना नहीं चाहिए।

- 12 मी0 लम्बा 5 मी0 चौड़ा तथा 2 मी0 ऊँचा छप्पर तैयार करें। छप्पर की लम्बाई के अनुरूप 3 फुट चौड़ा तथा 1 फुट गहरी क्यारियॉ बनायें। दो क्यारियॉ के बीच 1 फुट चौड़ा रास्ता रखें।
- तैयार क्यारी में सर्वप्रथम 15 से0मी0 मोटी परत कार्बनिक पदार्थ (मोटी व बारीक) की लगायें।
- कार्बनिक पदार्थों के ऊपर 15 से0मी0 मोटी परत सड़े हुए गोबर की खाद की लगायें।
- कार्बनिक पदार्थ व सड़ी गोबर की पर्तो के ऊपर पर्याप्त पानी का छिड़काव करें और उसे 48 तक छोड़ दें।
- 48 घंटे बाद 1000 केचुएं प्रति वर्ग मीटर की दर से ऊपर फैलायें।
- केंचुए की परत पर 20 से0मी0 मोटी परत कार्बनिक पदार्थों की पुनः लगायें।
- इसको कपड़े/बोरी से ढके एवं पानी छिड़कर कर गीला करें। नमी बनाये रखने के लिए पानी प्रतिदिन छिड़कते रहें।
- एक माह बाद पूरी सामग्री को पलटें तथा कपड़े/बोरी से पुनः ढकें एवं नमी बनाये रखें।
- लगभग दो माह में सम्पूर्ण सामग्री कम्पोस्ट (वर्मी कम्पोस्ट) में परिवर्तित हो जायेगी।

जब वर्मी कम्पोस्ट तैयार हो जाये तो पानी का छिड़काव बन्द कर दें, जिससे केचुएं नीचे की ओर चले जायेंगे। ऊपरी पर्तो को इक्ट्ठा कर खाद को अलग कर लें। अन्त में बारीक छलनियों से छानकर कम्पोस्ट तथा केचुएं व अण्डों को अलग–अलग करें तथा उपरोक्त विधिनुसार खाली क्यारियों में दोबारा भरते रहें।

जैव उर्वरक या जीवाणु खाद–

प्राकृतिक रूप से मिट्टी में कुछ ऐसे जीवाणु पाये जाते हैं, जो वायु मण्डलीय नत्रजन को अमोनिया में एवं स्थिर फास्फोरस को मिट्टी में उपलब्ध अवस्था में बदल देते हैं। जीवाणु खाद ऐसे ही जीवाणुओं की उत्पाद है, जो पौधों को नत्रजन एवं फास्फोरस आदि की उपलब्धता बढ़ाता है।

जैव उर्वरकों के प्रकार–

राइजोबियम	एजोटोबैक्टर
एजोस्पाइरिलम	एसीटोबैक्टर
फास्फोटिका	नील हरित षैवाल

राइजोबियम जैव खाद–

यह काले रंग का नमी धारक पदार्थ एवं जीवाणु का मिश्रण है जिसके प्रत्येक ग्राम भाग में 10 करोड़ से अधिक राइजोबियम जीवाणु होते हैं। यह जैव उर्वरक केवल दलहनी फसलों में ही प्रयोग किया जाता है तथा फसल विशिष्ट होता है अर्थात अलग–अलग फसल के लिए अलग–अलग प्रकार के राइजोबियम जैव उर्वरक का प्रयोग होता है। राइजोबियम जैव उर्वरक से बीज उपचार करने पर ये जीवाणु बीज पर चिपक जाते हैं। बीज अंकुरण होने पर ये जीवाणु मूल रोम द्वारा पौधे की जड़ों में प्रवेष कर ग्रन्थियों का निमार्ण करते हैं। ये ग्रन्थियां नत्रजन स्थिरीकरण इकाइयां होती है तथा पौधों की बढ़वार इनकी संख्या पर निर्भर करती है। अधिक ग्रन्थियों के होने पर पैदावार भी अधिक होती है।

प्रयोग विधि–

राइजोबियम कल्चर 200 ग्राम मात्रा 10 किग्रा. बीज हेतु पर्याप्त होता है। बीज को किसी साफ सतह पर इक्ट्ठा कर जैव उर्वरक के घोल (400–500 मि.ली. पानी में 150 ग्राम गुड या जगरी को 20 मिनट तक गर्म करें, पुनः ठंडा हो जाने दें, तदोपरान्त 200 ग्राम राइजोबियम डालकर अच्छी तरह घोल लें) को बीजों पर धीरे–धीरे डालें और हाथ से तब तक उलटते पलटते जायें जब तक कि सभी बीजों पर जैव उर्वरक की समान परत न बन जाये। अब उपचारित बीजों को किसी छायादार स्थान पर फैलाकर 10 मिनट तक सुखा लें तथा बुवाई करें।

राइजोबियम जीवाणु के प्रयोग से लाभ–

1. इससे 50–120 किग्रा. प्रति हैक्टर रासायनिक नत्रजन प्रति हैक्टर की बचत एवं उपज 25 से 30 प्रतिशत तक बढ़ जाती है।
2. यह जीवाणु कुछ हारमोन एवं विटामिन भी बनाते हैं, जिससे पौधों की बढ़वार अच्छी होती है और

जड़ों का विकास भी अच्छा होता है।
3. इन उपचारित फसलों के बाद बुवाई की गयी अगली फसल से अधिक पैदावार मिलती है।

एजोटोबैक्टर, एसीटोबैक्टर एवं एजोस्पारिलम जैव उर्वरक–

यह जैव उर्वरक एजोटोबैक्टर, एसीटोबैक्टर या एजोस्पारिलम जीवाणु का एक नम काले रंग का चूर्ण रूप उत्पाद है। इसके 1 ग्राम में लगभग 10 करोड़ जीवाणु होते है। एजोटोबैक्टर एवं एजोस्पाइरिलम जैव उर्वरक दलहनी जाति की फसलों को छोड़कर किसी भी अनाज वाली फसल, सब्जी, फल–फूल, घासों आदि में भी प्रयोग किया जा सकता है एवं एसीटोबैक्टर का उपयोग केवल गन्ने की फसल में किया जाता है। यह जैव उर्वरक नाइट्रोजन स्थरीकरण करते है और पौधों को नाइट्रोजन उपलब्ध कराते हैं।

एजोटोबैक्टर, एसीटोबैक्टर एवं एजोस्पारिलम जीवाणु से लाभ–

1. इसके प्रयोग से फसल की उपज में 10–15 प्रतिशत तक की वृद्धि हो जाती है।
2. इसके प्रयोग करने से 15 से 20 किग्रा. नत्रजन प्रति हैक्टर की बचत की जा सकती है।
3. इसके प्रयोग करने से अंकुरण षीघ्र और स्वस्थ पौध प्राप्त होती है तथा जड़ों का विकास अधिक एवं षीघ्र होता है।

फास्फोरस जैव उर्वरक–फास्फेटिका–

फास्फोरस जैव उर्वरक भी स्वतन्त्रजीवी जीवाणु का एक नम चूर्ण रूप उत्पाद है। इसके भी एक ग्राम में लगभग 10 करोड़ जीवाणु होते है। यह जैव उर्वरक प्रयोग करने से मृदा में उपस्थित अघुलनशील फास्फोरस घुलनशील अवस्था में जीवाणुओं द्वारा बदल दी जाती है। साधारणतया मिट्टी में फास्फेटिक जीवाणु मौजूद रहते है परन्तु यह आवश्यक नहीं कि मिट्टी में उपस्थित जीवाणु सुक्ष्म एवं असरदार हों। अतः कल्चर के माध्यम से किसानों को असरदार जीवाणु उपलब्ध कराये जाते हैं।

फास्फेटिका जीवाणु के लाभ–

1. इन जीवाणुओं का खाद में प्रयोग करने से 15–20 प्रतिशत पैदावार में बढ़ोत्तरी होती है।
2. इस खाद के प्रयोग से करीब 20–30 प्रतिशत फास्फोरस की बचत होती है।
3. जड़ों का विकास अधिक होता है, जिससे पौधा स्वस्थ बना रहता है।

कीट एवं रोग प्रबन्धन (उन्नत तकनीकें)–

जैविक कृषि पद्वतियों को यदि उचित तरीके से अपनाया जाये तो पादपों में कीट एवं रोग हेतु प्रतिरोधक क्षमता का स्वतः विकास हो जाता है। इस पद्वति के अर्न्तगत कृषि प्रक्षेत्र में एक स्वच्छ वातावरण तैयार होता है जिसके फलस्वरूप कीट एवं रोगों का आक्रमण कम हो जाता है। कीट एवं रोग नियन्त्रण हेतु सर्वप्रथम ऐसी पद्वति का चुनाव किया जाता है, जिसके तहत् कृषि प्रक्षेत्र में कीटों व रोगों को आश्रय देने वाले पादप निकालकर नष्ट कर दिये जाते है।

जैविक खेती में प्रबंधन–

जैविक नियन्त्रण–

जैविक नियन्त्रण वह प्रक्रिया है, जिसमें कुछ लाभदायक जीवों (जैविक नियन्त्रकों/रोगनाशकों) द्वारा हानिकारक एंव रोगकारक जीवों का आंशिक अथवा पूर्णरूपेण विनाश किया जाता है। यह पूर्ण रूप से जैविक क्रिया है इसमें रासायनिकों का प्रयोग नहीं होता है। रोगकारकों का विनाश करने वाले जीव रोग नियन्त्रक या (Antagonist) एन्टागोनिस्ट कहलाते है। ये रोग नियन्त्रक कवकीय या जीवाणुवीय उत्पत्ति के होते है। जैसे–

कवकीय (Fungal)– ट्राइकोडर्मा प्रजाति (*Trichoderma* spp.), ग्लियोक्लेडियम वाइरेन्स, एसपरजिलस प्रजाति (*Aspergillus* spp.), इत्यादि।

जीवाणुवीय (Bacterial)– स्यूडोमोनास प्रजाति (*Psudomonas* spp.), बैसीलस प्रजाति (*Bacillus* spp.) एग्रोवैक्टीरीयम प्रजाति (*Agrobacterium* spp.), स्ट्रैप्टोमाइसीज प्रजाति (*Steptomyces* spp.) इत्यादि।

ये रोग नियन्त्रक विभिन्न प्रकार के रोग कारकों की रोकथाम में सहायक होते है। जैसे, राइजोक्टोनिया (Rhizoctonia), फ्यूजेरियम (*Fusarium*) पीथियम (*Pythium*), फाइटोपथोरा (*Phytophthora*), स्केलेरोशियम (*Sclerotium*), मैकोफोमिना (*Macrophomina*), इत्यादि जो कि फसलों में विभिन्न

प्रकार की बीमारियों मुख्यतः मृदोढ़जनित जैसे– जड़गलन, आर्द्रगलन, उकठा रोग, बीजसड़न, अंगमारी, आदि के लिए जिम्मेदार होते है।

जैविक नियन्त्रण की क्रिया विधि–

जैव नियन्त्रक विभिन्न प्रकार की क्रियाओं द्वारा रोगजनक जीवों का विनाश करते है। इनमें निम्नलिखित क्रियायें महत्तवपूर्ण है।

- प्रतिस्पर्धा (Competition)
- प्रतिजैविकता (Antibiosis)
- कवक–परजीविता (Myco-parasitism)

प्रतिस्पर्धा (Competition)–

यह वह क्रिया है, जिसमें वातावरण में उपलब्ध कुछ साधनों जैसे स्थान, पोषक पदार्थ, जल, हवा, इत्यादि के उपयोग के लिये एक जीव दूसरे जीव पर हानिकारक प्रभाव डालता है।

प्रतिजैविकता (Antibiosis)–

इस प्रक्रिया में रोगनाशक जीव अथवा जैवनियन्त्रक विभिन्न प्रकार के प्रतिजैविक पदार्थ करते है जो कि रोगकारकों के लिए विष की तरह काम करते है, अर्थात् इन पदार्थो की वजह से रोगकारको की संख्या नष्ट हो जाती है। प्रतिजैविकता मुख्यतः दो प्रकार के, वाष्पशील व अवाष्पशील गौण–उत्पादों के कारण होती है। जैव नियन्त्रकों से अब तक विभिन्न प्रकार के प्रतिजैविक पदार्थ अलग किये जा चुके है। जैसे– ट्राइकोडर्मा प्रजाति से–ट्राइकोडर्मिन, ग्लियोक्लेडियम एवं ग्लियोवाइरिन, स्यूडोमोनास से फेनजिन, पायोल्यूटियोरिन, ट्रोपोलोन इत्यादि।

कवक– परजीविता (Myco-parasitism)–

इसमें जैव नियन्त्रक रोगकारक जीव के षरीर से चिपक कर उसकी बाहरी परत को कुछ प्रतिजैविक पदार्थो द्वारा गलाकर उसके अन्दर का सारा पदार्थ उपयोग कर लेता है। जिससे रोगकारक जीव नष्ट हो जाता है। यह प्रक्रिया मुख्यतः कवकीय जैव नियन्त्रकों द्वारा प्रदर्षित की जाती है, लेकिन कुछ जीवाणुवीय जैव नियन्त्रक भी इसको प्रदर्शित करते है।

जैव–नियन्त्रकों की प्रयोग विधि–

जैव नियन्त्रक, रासायनिक नियंत्रकों की तरह से विभिन्न प्रकार की विधियों द्वारा उपयोग में लाये जाते है। जैसेः

बीज उपचारण–

3–4 ग्राम जैव नियन्त्रक/किग्रा बीज

पौध उपचारण–

पौध को खेत में लगाने से पहले उसकी जड़ को जैव नियन्त्रण के घोल से उपचारित करते है। इसके लिए पौध को पौधशाला से उखाड़कर उसकी जड़ को पानी से अच्छी तरह से साफ कर लेते है, फिर इसको जैव नियन्त्रक के घोल में एक रात के लिए रख देते हैं और उसके अगले दिन खेत में रोपाई करते है। पौध उपचारण मुख्यतः सब्जियों जैसे – टमाटर, बैगन, गोभी, मिर्च, इत्यादि तथा धान की पौध के लिए करते है।

छिड़काव–

2 ग्राम पाउडर प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर छिड़काव करते है। जैव नियन्त्रकों का छिड़काव अगर बीमारी आने से पहले किया जाता है तो ये ज्यादा प्रभावी होते है। जीवाणुवीय जैव नियन्त्रक कवकीय की अपेक्षा प्रभावशाली होता है।

जैव नियंत्रक प्रयोग सम्बन्धी निर्देश–

- जैव नियन्त्रकों को निर्धारित समय सीमा के अन्दर ही उपयोग में लाना चाहिए। ये मुख्यतः बनाने के दिन से छः माह के अन्दर उपयोग में लाये जा सकते है।
- कवकीय जैव नियन्त्रक हल्की अम्लीय मृदा के लिए अधिक उपयुक्त होते है, जबकि जीवाणुवीय क्षारीय मृदा में अच्छा असर दिखाते है।
- जैव नियन्त्रकों का प्रयोग करने के समय खेत में

जैविक नियन्त्रण प्रयोगशाला, पादप रोग विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, गोविन्द बल्लभ कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पन्तनगर (उत्तरांचल) द्वारा विकसित जैव –नियन्त्रक :–

1. पन्त बायोकन्ट्रोल एजेन्ट–1	ग्लियोक्लेडियम वाइरेन्स (*Gliocladium virens*)
2. पन्त बायोकन्ट्रोल एजेन्ट–2	ट्राइकोडर्मा हारजियेनम (*Trichoderma harzianum*)
3. पन्त बायोकन्ट्रोल एजेन्ट –3	स्यूडोमोनास फ्लोरेसेन्स (*Pseudomonas fluorencens*)

उचित नमी होनी चाहिए।

कीट नियंत्रण की अन्य विधियाँ–

प्रकाश प्रपंच द्वारा कीट नियंत्रण–

फली भेदक, तना छेदक एवं अन्य प्रकार की सूढ़ियों के प्रौढ़ प्रकाश पुंज की ओर आकर्षित होते है। इनकी इसी आदत का लाभ प्रकाश जाल से उठाते है। प्रकाश जाल तरह–तरह के आकार के और विभिन्न प्रकार के होते है। इसमें नर और मादा वयस्क एकत्रित हो जाते है। सामान्यतया प्रकाश प्रपंच के नीचे मिट्टी के तेल मिला पानी एक बर्तन में रखा जाता है। जिसमें फंस कर कीट मर जाते है।

फेरामोन (यौन रसायन) प्रपंच द्वारा कीट नियंत्रण–

इसमें मादा पंतगा के यौन स्राव रसायन की गंध से मिलता जुलता संश्लेषित रसायन प्रयोग करते है, जो नर पंतगा को संभोग करने हेतु आकर्षित करता है, जिससे उस क्षेत्र के नर भ्रमवष यह समझकर कि जाल के अन्दर मादा वयस्क है आकर्षित होकर एकत्रित हो जाते है। इस प्रकार नर पतंगो की जाल में उपस्थिति से चना भेदक, बैगन, टमाटर, व धान के तना छेदक के खेत में अण्डा देने के स्थिति का पूर्वज्ञान हो जाता है, जिससे उपयुक्त कीट प्रबन्धन प्रणाली अपनाई जा सकती है। यौन रसायन आकर्षण जाल के दो मुख्य अंग है–

(क) जाल (ट्रैप)–

यह एक टिन अथवा प्लास्टिक की कीप के आकार का होता है, जिसे डण्डे से बाधंकर फसल में 2 फीट की ऊँचाई पर खेत में लगा देते है। इसमें नीचे पॉलीथीन का थैला लगा रहता है, जिसमें नर पतंगे एकत्र होते रहते हैं।

(ख) यौन रसायन संतृप्त गुटका (फेरोमोन सेप्टा)–

मादा पतंगा, नर पतंगा को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए यौनांगो से एक विशेष प्रकार की गंध छोड़ती है, जिससे नर पंतगा मादा पतंगा की ओर आकर्षित होकर प्रजनन क्रिया को सम्पन्न करते है। इस प्राकृतिक जैव रसायन से मिलता–जुलता कृत्रिम संश्लेषित रसायन किया जाता है। इसको फेरोमेन ट्रैप के बीच में बने गड्ढे में अथवा तार के फंदे में फंसाकर रख देते है, जिससे नर पंतगा आकर्षित होकर कीप के नीचे पॉलीथीन के थैले में इकट्ठा होते रहते हैं।

जाल के प्रयोग करने की विधि–

चना, अरहर, बैगन, टमाटर, धान के एक हैक्टेयर क्षेत्र में 3–4 जाल लगाने चाहिए। जाल में फंसे नर वयस्कों की नियमित निगरानी रखनी चाहिए। दिसम्बर–फरवरी में जाल मे कम पतंगा आते है। फरवरी के बाद जैसे–जैसे तापमान बढ़ता जाता है, जाल में पकड़े गये पतिंगो की संख्या भी बढ़ती जाती है। जैसे ही 3 से 5 नर पतंगा यौन रसायन आकर्षण जाल में 3–4 दिन लगातार आने लगें तो फसल बचाने के लिए जैविक कीटनाशकों के छिड़काव/भुरकाव अथवा नियंत्रण विधि के लिए तैयार हो जाना चाहिए, क्योंकि 6 से 10 दिन बाद मादा पतिंगे अण्डे देने लगते है, जिनसे निकली सूड़िया फसल को क्षतिग्रस्त करती हैं। यदि फसल पक कर तैयार हो गई है और फलियां कड़ी हो गयी है तो किसानों को फसल की सुरक्षा के लिये चिंतित नही होना चाहिये, क्योंकि चना फली भेदक की सूडी पकी हुई कडी फलियों में नुकसान नही कर पाती है। इसी प्रकार धान की फसल पकने पर नुकसान नही होता है।

◆◆◆

फसल उत्पादन में जैव उर्वरकों की भूमिका

डा० अनिल कुमार शर्मा, प्राध्यापक (जीव विज्ञान), निदेशक प्रसार शिक्षा एवं समेटी–उत्तराखण्ड एवं
डा० सुविज्ञा शर्मा, पोस्ट डाक्टरल फैलो, प्रसार शिक्षा निदेशालय
गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल : direxteduqbp@gmail.com

सदियों से मानव जाति अपने अस्तित्व बनाये रखने व जीवन यापन हेतु कृषि पर निर्भर रही है। यद्यपि् वैष्वीकरण का प्रभाव, वातावरण में बदलाव और नवीन प्रौद्योगिकी कृषि पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहे हैं। वर्ष दर वर्ष खेती के रकबा में कमी के परिणाम स्वरूप खाद्य वस्तुओं की मांग में भारी वृद्धि हो रही है। बढ़ती वैष्विक जनसंख्या को सुरक्षित व पर्याप्त भोजन की जरूरत हो रही है परन्तु बढ़ते प्रदूषण के कारण मृदा स्वास्थ्य चिंता का विषय बन चुका है। कृषि जलवायु परिस्थितियों में अनिश्चितता, असमय मानसून, तेजी से बढ़ती मानवीय गतिविधियाँ, कृषक समुदाय में उचित जागरूकता की कमी आदि कृषि विफलता के प्रत्यक्ष कारण हैं। विगत दशकों में अनियोजित उर्वरक प्रयोग ने मृदा स्वास्थ्य, पर्यावरण, मानव स्वास्थ्य आदि पर अत्यन्त प्रतिकूल प्रभाव डाला है। जहरीले उत्पाद के सेवन से नवजात बच्चे से लेकर बड़े–बूढ़े सभी प्रभावित हुए हैं। इसके विकल्प के रूप में वैज्ञानिकों ने जैव उर्वरक के प्रयोग से खेती की तकनीक विकसित की है, जिससे मृदा स्वास्थ्य और पर्यावरण भी दूषित नहीं होता और उच्च गुणवत्ता के उत्पाद मिलते रहेंगें। अब यह स्पष्ट हो चुका है कि सूक्ष्म जीव आधारित तकनीक द्वारा एक नए युग का प्रादुर्भाव हुआ है, साथ ही प्रौद्योगिकी और कृषि उत्पादन में पिछले दो दशकों में विशेष रूप से अत्यधिक वृद्धि दर्ज हुई है।

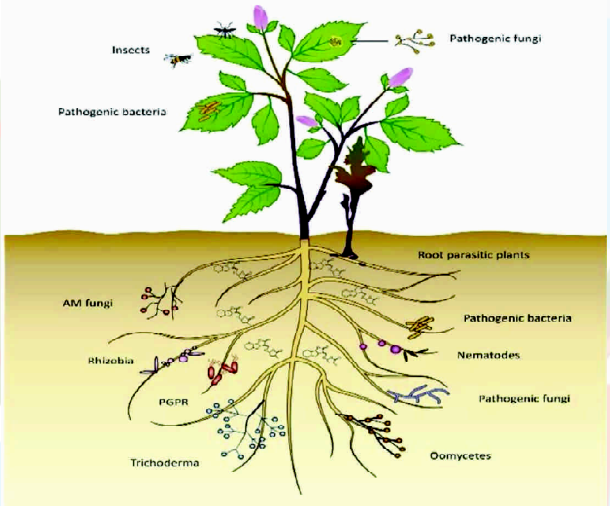

पौधे का सूक्ष्म जीवों से धरती के ऊपर तथा राइजोस्फियर में संचार

जैव उर्वरकों का उपयोग जैसे पौधों की वृद्धि करने वाले बैक्टीरिया (Plant Growth Promoting Rhizobacteria) और अर्बस्कुलर माइकोराईज़ल कवक (Arbuscular Mycorrhizal Fungi) फसल की उपज बढ़ाने, निशेचन और मृदा स्वास्थ्य के सुधार हेतु अंतहीन लाभ प्रदान करते हैं। इनके प्रयोग से मृदा की अपनी मूल माईक्रोबियल विविधता को बढ़ावा मिलता है। जैव उर्वरकों का उपयोग अस्थिर तत्वों जैसे C, S,Ca, K, Mn, Cl, N तथा स्थिर तत्वों जैसे P, Zn, Cu आदि के अवषोशण प्रक्रिया को बढ़ावा देने में लाभकारी होता है।

पोधे का सूक्ष्म जीवों से धरती के उपर तथा राइजोस्फियर में संचार

जैव उर्वरक मिट्टी के पर्यावरण को नत्रजन स्थिरीकरण, फॉस्फेट तथा पोटैशियम घुलनशीलता तथा खनिज करण के माध्यम से समृद्ध करने में मददगार होते है, साथ ही पौध वृद्धि के लिए जरूरी पदार्थ, एंटीबायोटिक आदि का उत्पादन भी करते हैं। मिट्टी में जैव उर्वरकों की उपस्थिति से कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ती है, जो फसल उत्पादन की क्षमता को गति प्रदान करती है।

जैव उर्वरक का इतिहास–

जैव उर्वरक का इतिहास प्राचीन काल से माना जाता है। सन् 1835 में बस्सी की खोज ने दुनिया को ब्यूवेरिया के विषय में ज्ञात करया, अपने शोध से उन्होंने रेशम कीट में *ब्यूवेरिया बसेनिया* का संक्रमण दिखलाया। उनकी इस खोज से पौधों के रोगों को सूक्ष्म जीवों की सहायता से रोकथाम का जन्म हुआ।

Bt toxin (*Bacillus thurengensis*) की खोज ही शोधकर्ताओं को रसायनों के विकल्प रूप सूक्ष्म जीवों के उपयोग करने के विषय में सोचने के लिए प्रेरित किया। जैव उर्वरकों का व्यावसायिक उत्पादन अठारहवीं सदी के अंत में शुरू हुआ था तथा समय के साथ आज ये जैव उर्वरक काफी लोकप्रियता हासिल कर रहे हैं।

जैव उर्वरक के प्रकार–

इनके अभिव्यंजक लक्षणों के आधार पर विभिन्न प्रकार के जैव उर्वरक अब विभिन्न सूत्रीकरण में उपलब्ध है। व्यावसायिक रूप से उपलब्ध जैव उर्वरक की श्रृखंला कृषि के लिए अत्यन्त लाभप्रद है। इन जैव उर्वरकों की शेल्फ जीवन के गुणवत्ता नियंत्रण की गारंटी एक मुख्य विषय होता है। इन सूक्ष्म जीव आधारित उत्पादों को इनके द्वारा निभाई जाने वाली भूमिका के आधार पर कई श्रेणियों में रखा जा सकता है।

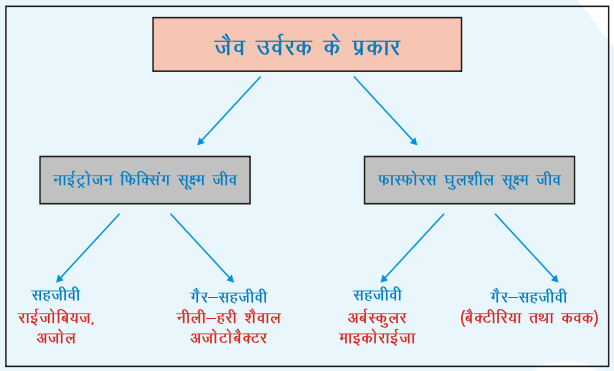

जैव उर्वरक तैयार करने की विधि–

जैव उर्वरक, फसल उत्पादन को बढ़ा सकते हैं क्योंकि वे सूक्ष्म जीवों से बने होते है, जिनमें विशेष कार्यात्मक विशेषताएं होती हैं। ये विशिष्ट और चयनित सूक्ष्मजीव प्रजातियां बड़े पैमाने पर प्रयोगशाला आधारित उद्योग में सुसंकृत होते हैं और निकाले जाते हैं व इनको मिश्रित करने के लिए सूखे कैरियर सामग्री जैसे Powder, Bentonite आदि का उपयोग किया जाता है। इनकी गुणवत्ता और शेल्फ जीवन बढ़ाने के लिए इनमें Organic elements जैसे Sea-weed, Humic acid, Fulvic acid आदि को भी मिलाया जाता है।

1. बीज उपचार विधि–

यह विधि भिण्डी, तोरई–टिण्डा आदि फसलों के लिए उपयोग में लायी जाती है जिनके बीज बिना पौध तैयार किये सीधे खेत में बोये जाते है। जिन सब्जियों की पौध तैयार की जाती है उनमें इनका उपयोग दो बार किया जाता है पहली बार नर्सरी में और दूसरी बार रोपण के समय। बीच उपचार हेतु पहले एक लीटर पानी में गुड़ या षक्कर मिलाकर उबाला जाता है। इस घोल का ठण्डा कर इसमें जैव उत्पाद का पाउडर डाल कर भली–भाँति मिलाते हैं। प्राप्त घोल को बीजों के उपर छिड़कर इस प्रकार मिलाते हैं कि सभी बीज के उपर घोल की समान परत चढ़ जाये। उपचारित बीजों को छाया में सुखाकर बोया जाता हैं।

2. जड़ों के घोल में डुबोना–

इस विधि का प्रयोग प्याज, टमाटर, बैंगन तथा मिर्च आदि उन शाकीय फसलों में किया जाता है जिनकी पहले से नर्सरी में पौध तैयार की जाती है। ऐसी फसलों में जैव उर्वरक का प्रयोंग करने के लिये पाँच लीटर पानी में जैव उर्वरक का एक पैकेट मिलाकर घोल बनाते है। नर्सरी से उखाड़े गये पौधों की जड़ों को इस घोलमें 2–3 मिनट तक डुबोकर पौधारोपण किया जाता है।

3. मृदा में छिड़काव–

यदि उपरोक्त दोनों विधियों का प्रयोग न हो पाये तो जैव उर्वरको को गोबर की सड़ी खाद में मिलाकर पौध रोपड़ से पूर्व छिड़क कर मिला सकते हैं। सामान्यतः एक किग्रा. जैव उर्वरक एक हैक्टेयर क्षेत्र हेतु रोपी जाने वाली पौघ के उपचार हेतु प्रर्याप्त होता है।

जैव उर्वरकों के प्रयोग से लाभ–

- जैव उर्वरको के उत्पादन में लागत कम होती है।
- जैव उर्वरक द्वारा वायुमण्डलीय अप्राप्य नत्रजन से प्रतिवर्ष 50 से 200 किग्रा. प्राप्य नत्रजन प्रति हैक्टेयर मिट्टी में स्थिर कर दी जाती है, जिससे मिट्टी की उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त इनके प्रयोग से नाइट्रोजन उर्वरकों की मात्रा में 10 से 20 किग्रा. प्रति हैक्टेयर की

कमी करके फसलोत्पादन की लागत भी घटाई जा सकती है।

- एजोटोबैक्टर तथा फॉस्फेट घुलनशील जैव उर्वरको द्वारा उपचारित शाकीय फसलों में क्रमशः 15 से 35 और 12 से 30 प्रतिशत अधिक उपज प्राप्त होती है।
- शुष्क तथा वर्षा आधारित खेती में रासायनिक उर्वरको की अपेक्षा जैव उर्वरको के प्रयोग से मृदा स्वास्थ्य सुधार और साथ ही भरपूर उपज भी ली जा सकती है।
- जैव उर्वरकों के प्रयोग से नाइट्रोजन एवं फॉस्फोरस के अतिरिक्त विशेष प्रकार के हॉर्मोन्स तथा विटामिन्स भी पौधों को उपलब्ध हो जाते हैं, जिससे बीजों की अंकुरण क्षमता तथा पौधों की वृद्धि बढ़ जाती है।

◆◆◆

पोषक तत्वों का महत्व, कमी के लक्षण एवं उपचार

डा० एस०पी० पचौरी
वरिष्ठ शोध अधिकारी (मृदा विज्ञान)
गो०ब० पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल : satyapratappachauri@gmail.com

पौधों की वृद्धि के लिए 18 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। ये पोषक तत्व मिट्टी, पानी एवं वायुमण्डलीय गैसों द्वारा पौधों को प्राप्त होते है। यदि मिट्टी में इन मुख्य पोषक तत्वों की कमी हो जाती है तो पौधे अपना जीवन–चक्र सफलतापूर्वक पूरा नहीं कर पाते है। पौधों में पोषक तत्वों की कमी या असन्तुलन के फलस्वरूप बाहरी भूख के लक्षण दिखाई पड़ते है जो कि सावधानी से प्रेक्षण तथा अध्ययन करने से मालूम किये जा सकते है। यह लक्षण उस समय विशेष प्रकार के होते है, जब अल्पता तीव्र होती है और एक ही पोषक तत्व के द्वारा होती है। आमतौर पर उनकी पहचान करने के लिए काफी अनुभव की आवश्यकता होती है। पौधों में पोषक तत्वों की कमी के लक्षण तथा सुधार निम्नवत् हैं:

नाइट्रोजन की कमी के लक्षण–

1. पौधों की पत्तियों का रंग पीला या हल्का हरा हो जाता है।
2. पौधों की वृद्धि ठीक प्रकार से नहीं हो पाती है या रूक जाती है।
3. दाने वाली फसलों में सबसे पहले पौधों की निचली पत्तियाँ सूखना प्रारम्भ कर देती है और धीरे–धीरे ऊपर की पत्तियाँ भी सूख जाती है।
4. गेहूँ तथा अन्य फसलें जिनमें टिलर फारमेषन (कल्ले निकलना) होता है। इसकी कमी से कल्ले कम बनते है।
5. फलों वाले वृक्षों में अधिकतर फल पकने से पहले ही गिर जाते है। फलों का आकार भी छोटा होता है। परन्तु फलों का रंग बहुत अच्छा होता है।
6. पत्तियों का रंग सफेद हो जाता है और कभी–कभी पत्तियाँ जल भी जाती है।
7. हरी पत्तियों के बीच–बीच में सफेद धब्बे (क्लोरोसिस) भी पड़ जाते हैं।
8. पीला सा हरा रंग एक सुपुश्ठ और धीमी और बौनी वृद्धि/पत्तियों का सूखना या झुलसना जो कि पौधों की तली से प्रारम्भ होता है और ऊपर की ओर बढ़ता है। मक्का, अनाज और घासों जैसे पौधों में झुलसन तली की पत्तियों के अग्र भाग से प्रारम्भ होती है और केन्द्र के नीचे की ओर या मध्य शिरा के साथ–साथ चलती है।

सुधार–

1. खाद एवं नाइट्रोजनधारी उर्वरकों के उचित मात्रा में प्रयोग
2. जल निकास एवं लीचिंग को सुधार करके
3. फलीदार फसलों/दलहनी फसलों को उगाकर
4. मृदा में वायु संचार सुधार कर
5. हरी खाद उगाकर
6. नीली–हरी एल्गी उगाकर

नाइट्रोजन की अधिकता से हानियाँ–

1. पौधों में कोमलता आ जाती है और तने कमजोर हो जाते है जिससे थोड़ी सी हवा चलने पर फसल गिर जाती है।
2. कोमल पौधों पर कीड़े–मकोड़ों का आक्रमण अधिक होता है।
3. फसल देर से पककर तैयार होती है। भूसे के अनुपात में दाना घट जाता है। गेहूँ इसका ज्वलंत उदाहरण है।
4. सब्जियों और फसलों में रखने के गुण (Keeping quality) कम हो जाते है जिससे इन्हें अधिक समय तक नहीं रख सकते।
5. गन्ने की फसल में अधिक मात्रा में नाइट्रोजन का प्रयोग करने से षक्कर की मात्रा कम हो जाती है।
6. आलू तथा अन्य फसलों में अधिक मात्रा में नाइट्रोजन के कारण पत्तियों की वृद्धि अधिक होती है जिससे उत्पादन कम हो जाता है।

7. पौधों की दीवारे मुलायम एवं पतली होने के कारण गर्मी एवं कोहरे से बहुत हानि होती है।

फास्फोरस की कमी के लक्षण–

1. पौधो का रंग प्रायः गहरा हरा ही रहता है, पर उनकी निचली पत्तियाँ पीली होकर सूख जाती हैं।
2. पौधों की बढ़वार रूक जाती है और पत्तियाँ छोटी रह जाती है।
3. मूलतंत्र का विकास तथा फलों का उत्पादन कम हो जाता है और पौधे मुड़े हुए व छोटे रह जाते हैं।
4. मक्का में पत्तियाँ बैंगनी–हरी हो जाती है। फसल देर से पकती है और भुट्टे भली प्रकार नहीं बन पाते।
5. कपास के पौधों का रंग गहरा हरा हो जाता है और शाखायें एवं पत्तियाँ छोटी रह जाती है तथा उनकी बौड़िया देर से पकती है।
6. दहलनी पौधों में गहरा रंग होने के अलावा पत्तियाँ ऊपर की ओर मुड़ जाती है। पत्ते बहुत छोटे और पतले रहते हैं।
7. जड़ों की ग्रन्थियों की संख्या एवं उनका आकार कम हो जाता है।
8. आलू में पत्तियाँ सामने की तरफ मुड़ जाती है और पत्तियों के किनारे झुलस जाते हैं। आलू के भीतरी भाग में धब्बे पड़ जाते हैं।
9. नीबू वर्ग के पौधों की बढ़वार रूक जाती है। सबसे पहले उनकी पुरानी हरी पत्तियों का रंग फीका पड़ता है। उनका रंग पीला–हरा या कांसे जैसा हो जाता है। ऐसी पत्तियों पर निक्रोसिस रोग के चकत्ते पड़ जाते है।
10. पौधों की पत्तियाँ, तना तथा शाखायें, नील–लोहित हो जाती है। वृद्धि धीमी होती है तथा परिपक्वता देर से होती है। छोटा वृत्तीय तना होता है और अनाज, फल तथा बीज की कम पैदावार होती है।

सुधार–

1. खाद एवं फास्फोरस युक्त उर्वरकों के उचित मात्रा में प्रयोग।
2. अम्लीय मृदाओं का पी.एच. अधिक या नियन्त्रण कर।
3. उचित जल निकास।

पोटैशियम की कमी के लक्षण–

1. लक्षण सर्वप्रथम पौधों की पुरानी पत्तियों पर दिखाई देते है। इन पत्तियों के किनारे झुलसे हुए दिखाई देते है।
2. टिलर पर बालियाँ नहीं आती है तथा दानों का विकास नहीं हो पाता है।
3. कपास में पीली सफेद कुर्वुरण (Yellow white mottling) रोग हो जाता है जिससे रेषों का गुण उच्च कोटि का नहीं होता है।
4. दलहनी पौधों में इसकी कमी का पहला लक्षण पत्तियों के किनारों पर चकत्तों के रूप में देखा जाता है। बाद में यह जगह जल्दी ही सूख जाती है। पौधों की वृद्धि नहीं होती और पौधे बौने रह जाते हैं।
5. तम्बाकू के पौधों की पत्तियों की नसों के बीच में उनके सिरों पर या किनारों पर छोटे–छोटे धब्बे पड़ जाते हैं। पत्तियों का रूप खराब हो जाता है और जलने की क्षमता भी कम हो जाती है।
6. नींबू वर्गीय पौधों में फूल आने के समय पत्तियाँ बहुत ज्यादा झड़ती हैं। कोपलें और नई पत्तियाँ पकने और कड़ी होने से पहले ही झड़ जाती है।
7. निचली पत्तियों पर छोटे–छोटे घाव होते हैं या वे किनारों तथा शिरों पर जली सी होती है। कटे–फटे किनारों को छोड़ते हुए मृत क्षेत्र गिरकर अगल हो सकते हैं। खरपतवार और धान्य (अनाजों) में झुलसन पत्तियों के अग्र भाग से प्रारम्भ होती है और मध्य शिरा को छोड़ते हुए अक्सर किनारे से नीचे की ओर बढ़ती है।

सुधार–

पोटैशियम की कमी मृदा में खाद एवं पोटाशधारी उर्वरकों के प्रयोग से तथा लीचिंग को नियन्त्रित करके दूर की जा सकती है।

कैल्शियम की कमी के लक्षण–

1. अंतस्थ कलिका में नई पत्तियाँ 'हुकदार' षक्ल की हो जाती है या देखने में सिकुड़ी हुई लगती है।
2. नई पत्तियों के किनारों और अग्र भागों पर मृत धब्बे होते हैं।
3. जड़ें छोटी और बहुत शाखाओं वाली होती है।
4. पत्तियों के किनारों के साथ–साथ हल्की हरी

पट्टी दिखाई देती है।
5. आलू के पौधे झाड़ी की तरह हो जाते हैं।
6. नीबू वर्गीय पौधों की पत्तियों का हरा रंग उनके किनारों की ओर से फीका पड़ना आरम्भ होता है और बढ़ते–बढ़ते नसों की बीच की जगहों तक पहुँच जाता है।

सुधार–

1. मृदा सुधारकों जैसे जिप्सम, चूना के प्रयोग से
2. सड़ी गोबर की खाद से
3. सुपर फॉस्फेट, कैल्शियम आयोनियम नाइट्रेट जैसे उर्वरक के प्रयोग से।

मैग्नीशियम की कमी के लक्षण–

1. शिराओं के बीच हरे रंग की सामान्य हानि होती है जो कि निचली पत्तियों से प्रारम्भ होती है और बाद में वृत्त की ओर बढ़ती है।
2. पत्तियों की शिरायें हरी बनी रहती है।
3. हरी शिराओं के बीच में कपास की पत्तियाँ अक्सर लाल–नील लोहित में बदल जाती है।
4. शिराओं के बीच में मृत क्षेत्र बहुत ही शीघ्रता से विकसित हो जाते है।
5. आलू की पत्तियाँ खस्ता और जल्दी टूटने वाली हो जाती है।
6. नीबू वर्गीय पौधों में पत्तियों पर अनियमित आकार के पीले धब्बे हो जाते हैं। ये पीली पत्तियाँ बाद में गिर जाती है।

सुधार–

मृदा में मैग्नीशियम की कमी को दूर करने के लिए प्रायः मृदा सुधारक जैसे डोलोमाइट, पोटैशियम, मैग्नीशियम, सल्फेट और मैगनीसाइट आदि का प्रयोग करते है।

सल्फर की कमी के लक्षण–

1. पत्तियाँ हल्की हरी होती है और समीप की शिराओं के बीच के भागों से शिरायें हल्की होती है।
2. पत्तियों में कुछ मृत धब्बे पाये जाते है।
3. पुरानी पत्तियों का कुछ या बिल्कुल नहीं सूखना।
4. फलों के पकने से पहले टूटना या हल्का हरा रहना।
5. बहुत से पौधों में सल्फर की कमी के लक्षण लगभग उसी प्रकार के होते हैं जैसे कि नाइट्रोजन की कमी के लक्षण होते हैं जिसकी वजह से कभी–कभी संशय हो जाता है, क्योंकि दोनों दशाओं में पत्तियाँ लगभग समान रूप से पीली या हरिमाहीन होती है। अन्तर यह है कि सल्फर (गंधक) की कमी होने पर पौधे की ऊपरी पत्तियाँ पहले पीली पड़ती है। जबकि नाइट्रोजन की कमी होने पर निचली पत्तियाँ पहले पीली पड़ती है। जब दोनों की कमी होती है। तब पौधों की ऊपरी और निचली दोनों पत्तियाँ पीली पड़ जाती है।

सुधार–

सल्फर उर्वरकों जैसे अमोनियम सल्फेट, जिप्सम, सुपर फास्फेट आदि के प्रयोग से सल्फर की कमी दूर की जा सकती है।

आवश्यक संस्तुतियाँ–

1. अम्लीय मिट्टी में यूरिया का प्रयोग न करें सम्भव हो तो कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट उर्वरक का प्रयोग करें क्योंकि अमोनियम नाइट्रेट उर्वरक में नाइट्रोजन के साथ–साथ कैल्शियम व मैग्नीशियम भी होता है और अम्लीय मृदा में इसका प्रयोग अधिक लाभदायक होता है।
2. सिंचित दशा में फसलों के लिए नाइट्रोजन की कुल अनुमोदित मात्रा 2/3 भाग व फास्फोरस तथा पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय प्रयोग करें। शेष नाइट्रोजन भी मात्रा को दो भागों में बाँट कर पहली सिंचाई पश्चात् तथा दूसरी फूल आने के पूर्व करें।
3. खड़ी फसल में नत्रजन उर्वरक देते समय खेत में उचित नमी होनी चाहिए। उर्वरक का प्रयोग समान रूप से करें न कहीं ज्यादा न कहीं कम।
4. फास्फोरस व पोटाश की खादों को कूँड में, बीज से 5 से.मी. गहराई पर अवस्थापन करें।
5. नत्रजन व पोटाश उर्वरकों को कभी भी बीज के साथ मिलाकर नहीं बोना चाहिए, जिससे अंकुरण पर विपरीत प्रभाव न पड़े।
6. असिंचित क्षेत्रों में पोटाश के समुचित प्रयोग से फसलों की जलाभाव अथवा सूखे को सहन करने की क्षमता को बढ़ाया जा सकता है।
7. अधिक अम्लीय मिट्टी में चूने का प्रयोग करें तथा मन्द अम्लीय मिट्टी में जिप्सम का प्रयोग करें।

8. तिलहनी फसलों में सल्फर 20–50 किग्रा. प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें।
9. सड़ी गोबर की खाद व अन्य फसल अवशेष मिट्टी की उर्वरता बनाने रखने के लिए उपयोगी है। ये मृदा की जलधारण क्षमता को भी बढ़ाती है।

सावधानियाँ–

पाला, सूखा, झुलसा, पौधों के कीड़े–मकोड़े और रोगों के आक्रमण, जलाक्रान्ति, मृदा की क्षारीयता, रसायनों की फुहारों से क्षति या अत्यधिक खनिज पोषकों के विषैले प्रभावों के कारण अल्पता के लक्षण जटिल हो सकते है। विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि पोषक तत्वों की अल्पता के लक्षणों के कुशल प्रयोग के साथ–साथ निदान के अन्य विधियों जैसे पौधे और मृदा परीक्षण, सही उर्वरक निर्धारण प्रक्रिया के लिए अच्छा कदम सिद्ध हो सकता है।

जस्ता या जिंक–

धान– धान की नर्सरी में जिंक की कमी के लक्षण बीज के अंकुरण से 2–3 सप्ताह की पौध में ही दिखने लगते हैं। लक्षण की शुरूआत पत्तियों के मुरझाने व पत्तियों के आधार पर हरिमाहीनता से होती है जो बाद में पत्तियों पर कत्थई रंग के धब्बों में परिवर्तित हो जाती है। इसे धान के खैरा रोग के नाम से जाना जाता है। रोग का प्रकोप बढ़ने पर कभी–कभी पौधाला भी खत्म हो जाती है। खड़ी फसल में यदि खेत में पानी अधिक समय तक भरा रहे तो लक्षण बने रह सकते हैं तथा पौधा मर भी सकता है। ऐसे में यदि फसल से पानी का निकास कर दें तो फसल पुनः ठीक हो सकती है परन्तु फसल परिपक्वता की अवधि 3 से 4 सप्ताह तक बढ जाती है।

खेतों में रोपाई के 10–15 दिन बाद यह पैच के रुप में देखने को मिलता है, जिसमें प्रायः तीसरी पत्ती के आधार पर पीलापन आता है। इसके अतिरिक्त पौधों की वृद्धि रूक जाती है, पत्तियों की शिराओं के मध्य स्थान में हरिमाहीनता के साथ–साथ भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। ये धब्बे निचली पत्तियों में भी पाये जाते हैं और अन्त में पत्तियॉ सूख जाती हैं। जड़ों की बढ़वार रूक जाती है तथा जड़ का षीर्श भाग भी भूरा पड़ जाता है। पौधों पर कोई बाली नही आती है।

मक्का– कमी के लक्षण भिन्न–भिन्न प्रकार के हो सकते हैं परन्तु शुरूआती अवस्था में लक्षण पत्ती के आधार से शुरू होकर पत्ती की नोंक तक जाते हैं जिसमें पत्ती के किनारे व मध्य शिरा के बीच वाला भाग हल्का हरा या फिर सफेद पट्टी के रूप में दिखायी देता है तथा पत्ती के किनारे, मध्य शिरा के आस–पास वाला क्षेत्र व पत्ती की नोंक हरी रहती है। तने की अन्तः गॉठे छोटी हो जाती है जिससे पौधा बौना दिखायी देता है। जिंक की अत्याधिक कमी से नयी पत्ती पूर्ण रूप से सफेद पड़ जाती है। अगर तने को लम्बवत दो भागों में काटे तो गॉठो के आस पास वाला क्षेत्र भूरा पड़ जाता है। मक्का में जिंक के अभाव के कारण पौधों की बढ़वार रूक जाती है।

गन्ना– नई पत्ती के आधार पर शिराओं के मध्य क्षेत्र में हरिमाहीनता शुरू होती है, पत्ती छोटी हो जाती है तथा अत्यधिक कमी से पत्तियों में उतक क्षय पत्ती की नोक से आधार तक फैलता है एवं कल्ले कम निकलते हैं।

गेहूँ– पत्तियों पर पीली धारी बनती है। अधिक कमी होने पर पत्ती का रंग धूसर सफेद होकर सूख जाता है।

चना– जिंक की कमी के लक्षण बुवाई के 3 से 4 सप्ताह की फसल में देखने को मिलते हैं, जिसमें पत्ती पर लाल–भूरा रंग दिखाई पड़ता है।

टमाटर– नई पत्ती का आकार छोटा हो जाता है व शिराओं के मध्य वाला क्षेत्र हल्का हरा व पीला हो जाता है। पुरानी पत्ती में अन्त शिराओं वाला क्षेत्र मृत हो जाता है ।

नींबू– प्रायः सभी नींबू वर्गीय फसलों जैसे माल्टा, संतरा, मौसमी इत्यादि में जस्ता अभाव से नई पत्तियों की शिराओं का मध्य भाग पीला पड जाता है, जिसे पीली धब्बेदार पत्ती रोग कहते हैं। नई पत्तियों का आकार छोटा हो जाता है। जिंक की अत्याधिक कमी से पत्तियॉ झड़ जाती है, तथा शाखायें ऊपर से नीचे की ओर सूखना (डाईबैक) प्रारम्भ कर देती है। फल का आकार छोटा हो जाता है।

अमरूद– जिंक के अभाव के कारण पत्तियॉ छोटी व गुच्छों के रूप में प्रकट होती हैं। पत्तियों में अंतः शिराएं पीली पड़ने के साथ–साथ पत्तियाँ चमड़े जैसी हो जाती हैं। शाखाओं का षीर्श भाग मृत हो जाता है। फूल कम

निकलते हैं तथा फल फटने लगते हैं और फल की गुणवत्ता खराब हो जाती है।

जिंक को अनेको स्रोतों द्वारा पौधों को दिया जा सकता है परन्तु जिंक सल्फेट हेप्टाहाइड्रेट एक सस्ता तथा मुख्य स्रोत है जो कि राज्य बीज विक्रय केन्द्रों एवं सहकारी समितियों पर आसानी से उपलब्ध हो जाता है। मिट्टी की जॉच में प्राप्त मान के आधार पर ही उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। सामान्यतः 25 से 50 किग्रा जिंक सल्फेट हेप्टाहाइड्रेट (21 प्रतिशत जिंक तत्व) प्रति हेक्टेयर अथवा 16 से 32 किग्रा जिंक सल्फेट मोनोहाइड्रेट (33 प्रतिशत जिंक तत्व) एक आर्दष दर है। मोटे गठन वाली मिट्टी जिसमें पानी अधिक समय के लिए भरा रहता है 50 किग्रा जिंक सल्फेट हेप्टाहाइड्रेट प्रति हेक्टेयर अथवा 32 किग्रा जिंक सल्फेट मोनोहाइड्रेट प्रति हेक्टेयर प्रयोग कर सकते है। हल्के गठन वाली मिट्टी जिसमें पानी अधिक समय के लिए नहीं भरा रहता है 25 किग्रा जिंक सल्फेट हेप्टाहाइड्रेट प्रति हेक्टेयर अथवा 16 किग्रा जिंक सल्फेट मोनोहाइड्रेट प्रति हेक्टेयर प्रयोग कर सकते है। अगर मिट्टी में अनुमोदित मात्रा में जिंक का प्रयोग किया गया है तो 4 से 6 फसलों में जिंक का प्रयोग करने की आवश्यकता नही पडती है। खड़ी फसल में एक हेक्टेयर खेत के लिए 5 किलो जिंक सल्फेट व 2.5 किग्रा. बुझा चूना अथवा 20 किग्रा. यूरिया के साथ 1000 लीटर पानी में घोल बनायें और 10 से 15 दिनों के अन्तराल पर 2 से 3 छिडकाव फसल के बोने या रोपाई के 15 से 20 दिन बाद करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त कार्बनिक खादें, हरी खादें, मुर्गी की खाद इत्यादि भी जिंक के स्रोत होते हैं। कुछ फफूँदी जैसे वैम (VAM) मृदा मे जिंक की गतिशीलता बढाती है तथा खैरा रोग के प्रति प्रभावषाली पायी गई हैं। प्रतिवर्ष खेतों में 10से 15 टन गोबर की खाद अथवा 5 टन मुर्गी की खाद प्रति हेक्टेयर का प्रयोग करने से सूक्ष्म तत्वों की पूर्ति हो जाती है तथा कोई अन्य जिंक उर्वरक को डालने की आवश्यकता नही पड़ती। हरी खाद के प्रयोग से मिट्टी में मौजूद सूक्ष्म तत्वों की सुलभता बढ़ जाती है। बाजार में जिंकेटिड यूरिया या जिंकेटिड सुपर उपलब्ध है जिसका प्रयोग मिट्टी में जिंक की कमी की प्रारम्भिक दशा में ही उपयोगी है।

लोहा– इसकी कमी नई पत्तियों में प्रायः देखने को मिलती है पत्तियों की नसें हरी रहती है किन्तु दो नसों के मध्य वाला भाग सफेद या पीला पड़ जाती है।

धान– धान की नर्सरी में लोहे की कमी के लक्षण उपरी पत्तियों के पीला पड़ने पर या सफेद प्रकट होने से होते हैं ऐसी स्थिति में कृषक यूरिया का छिड़काव करते है किन्तु यूरिया के छिड़काव से भी यह पीलापना दूर नही होता हैं। खेतो में कमी के लक्षण सूखे की स्थिति होने पर अधिक दिखाई देती है। नर्सरी में यदि गोबर की खाद का प्रयोग किया गया हो और जल की आपूर्ति पूरी होती रहे तो ये लक्षण प्रकट नही होते हैं।

गन्ना– गन्ने की पेड़ी में लोहे की कमी के लक्षण प्रायः देखे जाते है। इसकी कमी से नई पत्तियों में शिरा के बीच पीलापन आता हैं और पत्ती षीर्श से आधार की ओर सूखने लगती है।

प्रबंधन–

प्रायः लोहे के उर्वरकों का प्रयोग मिट्टी में नही किया जाता है क्योंकि फैरस आयन फैरिक आयन में बदल जाता है और यह पौधों को उपलब्ध नही हो पाता है। फैरस सल्फेट या चिलेटिड लौह उर्वरक पर्णीय छिडकाव के लिए इस्तेमाल किये जाते है। फेरस सल्फेट 10 से 20 ग्राम/ली0 का पर्णीय छिडकाव 10–15 दिनों के अन्तराल पर करने से लोहे की कमी को दूर किया जा सकता है। धान में फैरस सल्फेट की दक्षता बढाने के लिए सिट्रिक अम्ल या नींबू के रस को मिला कर पर्णीय छिडकाव करें। सूखे की स्थिति में खेत में पानी भरे रखे। मिट्टी में लौहे के प्रयोग की दक्षता को बढाने के लिए 10 टन प्रति है. कार्बनिक खादों का प्रयोग करें।

मैंग्नीज–

गेहूँ– गेहूँ की फसल में मैंग्नीज की कमी होने पर पुरानी पत्तियों पर छोटे गोल धूसर सफेद धब्बे पड़ते है। जो बाद में जुड़कर धारी का रूप ले लेते है।

गन्ना– गन्ने की फसल में पत्तियों की शिराओं के बीच षीर्श से मध्य की ओर पीलापन आता है। जिन खेतों मे मैंग्नीज की कमी हो बुवाई से पूर्व 30 किलाग्राम मैंग्नीज सल्फेट प्रति हेक्टेयर प्रयोग करना चाहिए। खड़ी फसल में मैंग्नीज की कमी के लक्षण दिखने पर

5 ग्राम मैंग्नीज सल्फेट के साथ 20 ग्राम यूरिया प्रति लीटर घोल का 2 से 3 बार छिड़काव करना चाहिए।

बोरॉन–

पौधो में इसकी कमी के लक्षण नई पत्तियों व कलिकाओं में देखने को मिलते है। बोरॉन की कमी से फूल कम आते है और परागकणों के नपुसंक होने के कारण फूल से फल व बीज बनने की प्रक्रिया पर विपरीत प्रभाव पडता है। इस कारण फल, सब्जी तथा अन्य फसलों के उत्पाद की गुणवत्ता व उपज पर विपरीत प्रभाव पडता है। बोरॉन की कमी से पौधों में षर्करा का परिवहन कम होता है और फलों की मिठास कम हो जाती है। पौधों द्वारा इस तत्व का अवषोशण वाष्पन–वाष्पोंत्सर्जन प्रक्रिया पर निर्भर होता है। द्विपत्र बीजीय फसलों में बोरॉन की आवश्यकता एकपत्र बीजीय फसलों की अपेक्षा अधिक होती है। इसी प्रकार दलहनी फसलों में बोरॉन की आवश्यकता धान्य फसलों से अधिक होती है। फसलों को बोरॉन की आवश्यकतानुसार तीन वर्गो में बाटॉ जा सकता है–

- **अधिक मांग वाली फसलें**

  बरसीम, सेब, ब्रोकली, फूलगोभी, सरसों, मूँगफली, चुकंदर, सूरजमुखी, शलजम, आम, लीची, अंगूर, कटहल

- **मध्यम मांग वाली फसलें**

  गाजर, मक्का, कपास, पत्तागोभी, चेरी, ऑडू, नाशपाती, मूली, पालक, तम्बाकू , टमाटर

- **कम मांग वाली फसलें**

  जौ, बीन्स, नींबू, ककडी, प्याज, आलू, खीरा, जई, मटर, स्ट्राबेरी, गेहूँ।

बोरॉन की कमी के लक्षण

हल्की गठन, अच्छे जल निकास वाली मिट्टियों व अधिक वर्षा वाले क्षेत्रो में पायी जाती है। अम्लीय (कम पी0एच0 वाली) व अधिक जैवांश वाली मृदा या कम जैवांश वाली मृदा व चूनापत्थर युक्त मृदाओं में भी बोरॉन की कमी पायी जाती है। अम्लीय मृदाओं में चूने के अधिक प्रयोग से भी बोरॉन की कमी हो जाती है। जल अभाव में मृदा मे सुलभ बोरॉन की पर्याप्त मात्रा होते हुए भी पौधे बोरॉन का अवषोशण नही कर पाते हैं। बोरॉन की कमी से पौधो के षीर्शस्थ भाग की वृद्धि रुक जाती है। नई पत्तियों का आकार बिगड जाता है, फूल खिलनें से पहले गिर जाते है, कच्चे फलों का गिरना बढ जाता है, फलों का आकार टेढ़ा–मेढ़ा हो जाता है। पत्तियॉ मोटी, गहरे नीले–हरे रंग की तथा भृंगुर हो जाती है। जड़ों की वृद्धि रुक जाती है। फल तथा तनें फट जाते है तथा फलदार वृक्षों के तनें से गोंद जैसा पदार्थ निकलने लगता है।

बरसीम– पुरानी पत्तियों हरी तथा नई पत्तियॉ किनारें से पीली–लाल, अन्तरगॉठे छोटी व पौधा बौना, फूल नही आता व झड़ जाता है।

ब्रोकली– पत्तियों की मध्य शिरा फट जाती है, तनें कार्क के समान कठोर, तना मध्य से खोखला, फूल पर पनीलें धब्बें, तथा फूल काटने के बाद तने पर कैलस धीमी गति से बनता है

गाजर व मूली– जड़ लम्बाई के अनुरुप फट जाती है, जड़ें छोटी व खुरखुदरी तथा मध्य सफेद हो जाता है।

फूलगोभी– फूल छोटा व देर से बनता है उस पर पनीलें धब्बें पडते है। तनें का लम्बाई के अनुरुप फटना व मध्य से सड़ना प्रारम्भ हो जाता है। फूल ढ़ीला व बीच में पत्तियॉ निकल आती है।

पत्तागोभी– बन्द नही बनता या ढीला व देर से बनता है ।

मक्का– नई पत्ती की नसों के मध्य अनियमित आकार के सफेद धब्बे, बाद में ये धब्बे मिलकर 2.5 से 5.0 से0मी0 लम्बे हो जाते है तथा सतह से उभरी हुई मोम जैसी सफेद पट्टी बन जाती है। भुट्टे में दाने कम बनते है।

आलू– शीर्षस्थ भाग की वृद्धि रुक जाती है, अन्तरगॉठे छोटी तथा पौधा झाड़ीनुमा, पत्तियॉ मोटी तथा किनारे से ऊपर की ओर मुडी हुई (वायरस के कारण भी ऐसे लक्षण देखने को मिलते है), एक ही स्थान से एक साथ कलियां निकलती है। आलू छोटे बनते है व फट भी जाते है।

सोयाबीन– वृद्धि वाला षीर्शस्थ भाग मृत, पत्तियॉ मोटी तथा भंगुर, फूल खुलने से पहले झड जाते है। जड़ो में बनने वाली ग्रथिंयॉ कम व छोटी रह जाती है। नई पत्तियों का पीला या लाल हो जाना फूल कम या नही बनते है।

गन्ना– नई पत्तियों का सूखना ओर नई पत्तियों के शिराओं के बीच अर्ध पारदर्शी धब्बे पड़ने लगते है।

टमाटर– पौधों की शाखाओं का षीर्श अंदर की ओर मुड़ जाता है और मृत हो जाता है। पत्तियॉ छोटी एवं टेढ़ी–मेढ़ी एवं बदरंग होती है। फल फटने लगते है।

नीबू– बोरॉन की कमी से पत्तियॉ टेढ़ी एवं मोटी हो जाती हैं। कच्चे फल गिरने एवं फटने लगते है। फलों के बीच वाले भाग में गोंद जैसा जमा होना बोरॉन की कमी का सूचक है।

लीची– पत्तियों एवं फलों का आकार घट जाता है। कच्चे फल गिरते एवं फटते है। फलों में मिठास कम होती है।

आम– कच्चे फलों का गिरना एवं फूलों का निचले हिस्से से भूरा पड़ना बोरॉन की कमी का सूचक है। फलों की मिठास कम हो जाती है।

सेब– फलों का अंदर से भूरा पड़ना व कच्चे फलों का गिरना बोरॉन की कमी दर्शाता है।

प्रबंधन–

मिट्टी परीक्षण के उपरांत ही बोरॉन युक्त उर्वरकें का उचित मात्रा में प्रयोग करना चाहिए। खेतों में जैवाषं की उचित मात्रा बनाये रखने के लिए हरी खाद, गोबर की खाद, वर्मीकम्पोस्ट इत्यादि का प्रयोग करना चाहिए। खरपतवार नियंत्रण व अन्य सस्य क्रियाऐं अपनानी चाहिए। खेत में उचित नमी बनाये रखने के लिए सिचाई की व्यवस्था करनी चाहिए व सिंचाई जल की गुणवत्ता की जांच अवश्य करानी चाहिए। अम्लीय मृदा का पी0एच0 मान 6.3 से 6.5 के मध्य रखने के लिए उचित भूमि सुधारको का प्रयोग करना चाहिए।

धान, सब्जियों एवं तिलहन वाली फसलों के लिए बोरॉन की कमी वाली खेतों में 10 कि0ग्रा0 बोरेक्स प्रति हेक्टेयर का प्रयोग बुवाई से पूर्व करना चाहिए। मृदा प्रयोग हेतु बोरक्स की आवश्यक मात्रा को बुवाई पूर्व भुरभुरी मिट्टी मे मिलाकर समान रूप सें बिखेरकर खेत में मिलाना चाहिए। बोरॉन उर्वरक का प्रयोग प्रमुख तत्वों वाले उर्वरको के साथ मिलाकर कर सकते है। मक्का, गोभी व फल वृक्षो में पट्टी अवस्थापन विधि अच्छी है। खड़ी फसल में बोरॉन कमी के लक्षण दिखने पर,पर्णीय छिडकाव विधि अच्छी है। बोरक्स/सुहागा का 2.0 से 3.0 ग्राम उर्वरक प्रति लीटर पानी की दर से (बोरक्स/सुहागे को पहले गर्म या गुनगुने पानी में घोल लेना चाहिए) अथवा सोल्यूबोर/बोरॉन –20 का 1.0 से 1.5 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से अथवा बोरिक अम्ल का 1.5 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल बना कर छिडकाव फूल आने से 10 दिन पहले एवं फल बनने के पश्चात् करना आवश्यक होता है। पर्णीय छिडकाव साफ मौसम में प्रातः काल के समय करना चाहिए इससे पौधो द्वारा बोरॉन तत्व का अवषोशण अधिक होता है।चूंकि पौधो में बोरॉन तत्व की आवश्यक मात्रा व विषाक्ता स्तर का अन्तर बहुत कम होता है अतः बोरॉन उर्वरकों की संस्तुत मात्रा का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर ही प्रयोग करना चाहिए।

कॉपर की कमी के लक्षण–

धान्य फसलों में कॉपर की कमी से रिक्लेमेषन नामक बीमारी हो जाती है जिसमें नवीन पत्तियॉ शिथिल व हरिमाहीन जाती है और मुड़ी हुई होती है। पत्तियों की नोक सफेद पड़ जाती है। टिलर्स कमजार हो जाते है। दलहनी फसलों में पत्तियों का रंग हल्का हरा हो जाता है, पौधों की वृद्धि कम हो जाती है और पत्तियॉ सूख कर गिरने लगती हैं। नींबू वर्गीय पेड़ो की बड़ी पत्तियॉ प्रायः क्रुरूप होजाती है उनका रंग हल्का पड़ जाता है उनके फल के छाल पर गोंद जैसा चिपचिपा पदार्थ जमा हो जाता है।

मौलिब्डेनम की कमी के लक्षण–

मौलिब्डेनम की कमी से कमी के लक्षण लगभग नाइट्रोजन की कमी के लक्षणों के समान होते है। पत्तियों के शिराओं के बीच में हरिमाहीनता हो जाती है। पत्तियों का रंग पीला हरा या पीला हो जाता है तथा इस पर नारंगी रंग का चितकबरापन आ जाता है। पत्तियॉ मुरझा जाती है, ऊतकक्षय प्रारम्भ हो जाता है और अंत में पत्तियॉ गिर जाती हैं।

जौ, आलू, सरसों व तम्बाकू में बीच वाली पत्तियॉ प्रभावित होती है। दलहनी फसलों की जड़ों में ग्रन्थियों की संख्या कम व आकार छोटा हो जाता है। नीबू जाति के पौधों में इसकी कमी से पत्तियों में पीला धब्बा पड़ जाता है, जिसे यलोस्पॉट नामक रोग कहते हैं।

◆◆◆

खरपतवार प्रबन्धन, प्रकार एवं शाकनाशी नियमन

डा० वी० प्रताप सिंह
प्राध्यापक (सस्य विज्ञान)
गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल : vpratapsingh@rediffmail.com

किसी भी फसल में स्वतः उगने वाले पौधे खरपतवार कहे जाते हैं। खरपतवार, फसल पौधा के साथ पानी, पोषक तत्व एंव प्रकाश आदि के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। यही नहीं खरपतवार के प्रकोप से फसल में अनेक कीट एवं बीमारियाँ बढ़ जाती हैं। कुछ खरपतवार जहरीले पदार्थ पैदा करते हैं जो फसल उत्पादन तथा उनकी गुणवत्ता में कमी कर देते हैं। फसल की प्रारम्भिक अवस्था में खरपतवारों का फसल के साथ प्रतिस्पर्धा भी सबसे ज्यादा होती है जिससे अधिक क्षति हो जाती है। खरपतवार प्रबंधन, खरपतवारों के प्रकोप को कम करने की प्रकिया हैं जिससे आशातीत फसलोत्पादन किया जा सकें।

खरपतवार उन्मूलन–

खरपतवार उन्मूलन प्रक्रिया में खरपतवारों को समूल नष्ट कर दिया जाता है जिससे इनका प्रसार एंव फैलाव कम हो जाता है। चूँकि बहुत सारी वनस्पतियाँ लाभकारी भी होती है इसलिए सभी वनस्पतियों का उन्मूलन भी वांछनीय नहीं होता। कुछ खरपतवार ऐसे होते है, जिनका का उन्मूलन भी असम्भव होता है। अतः नियंत्रण के स्थान पर खरपतवार प्रबंधन परिकल्पना एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है।

समन्वित खरतवार नियत्रण–

विभिन्न खरपतवार नियंत्रण गतिविधियों के समन्वयन से पर्यावरण संबधित दुष्प्रभावों को कम किया जा सकता है। इस प्रक्रिया में एक से ज्यादा खरपतवार नियंत्रण की विधियों (यांत्रिक, जैविक सस्य क्रियाये तथा रसायनिक आदि) का प्रयोग कर खरपतवारों के प्रसार एंव अत्यधिक फैलाव के रोकथाम एंव प्रबंधन करने से दीर्घगामी परिणाम भी प्राप्त होते है।

फसलों में खरपतवार का उगना एक प्रमुख समस्या है जिसका फसलोत्पादन पर परोक्ष एंव अपरोक्ष दोनो ही रुप से प्रभाव पड़ता है। यहीं नहीं कुछ खरपतवार ऐसे भी होते है जो मनुष्य, पशु, पक्षी के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालने के साथ–साथ पर्यावरण तथा उत्पादन की गुणवत्ता को भी दुष्प्रभावित करते है। चूँकि फसल प्रक्षेत्र में इन खरपतवारों को उगने एवं वृद्धि के लिये उपयुक्त वातावरण उपलब्ध होता है, अतः ये फसल के अपेक्षा शीघ्र उगकर अपना जीवनकाल फसल परिपक्व होने के पहले ही पूर्ण कर लेते है। ये खरपतवार फसल के अपेक्षाकृत भूमि से नमी एवं पोषक तत्वो का शोषण भी 1.5 से 2.0 गुना तीव्र गति से करते हैं, जिससे फसल उत्पादन में गिरावट आ जाती है। वर्तमान में श्रमिको के अभाव और श्रम लागत में निरन्तर वृद्धि के कारण आमतौर से सभी फसलों में शाकनाशियों का प्रयोग किया जाने लगा है। फसल प्रक्षेत्र में खरपतवारों की अधिक सघनता के कारण फसल अपरोक्ष रुप से कीट पतंगो एवं बीमारीयों के प्रकोप से भी दुष्प्रभावित होती है और खरपतवारों के नियंत्रण हेतु अतिरिक्त धन भी व्यय करना पड़ता है जो कुल उत्पादन लागत में वृद्धि के कारक बन जाते है। यदि फसल प्रक्षेत्र में समयानुसार खरपतवारो का नियंत्रण नहीं किया जाता है तो उपज में षत प्रतिशत तक की हानि हो जाती है। ऐसी स्थिति में विभिन्न नियंत्रण विधियो को अपनाकर इस समस्या से निदान किया जाना अति आवश्यक हो जाता है। वर्तमान में ऐसे खरपतवारनाशी भी बाजार में उपलब्ध हैं, जिनका सही मात्रा, सही समय और सही तौर तरीको को अपनाकर खरपतवारों पर आसानी से नियंत्रण पाया जा सकता है।

खरपतवारों का वर्गीकरण–

1. जीवन चक्र के आधार पर खरपतवारों का वर्गीकरण (Classification of weeds based on life cycle)–

(अ) एकवर्षीय खरपतवार (Annual weed)–

ये खरपतवार अंकुरण से लेकर पकने तक के

जीवन चक्र को एक वर्ष में ही पूरा कर लेते हैं। अधिकतर ये खरपतवार बीजों द्वारा ही उत्पन्न होते हैं। मौसम के आधार पर पुनः इनका वर्गीकरण दो भागों में किया गया है।

(i) खरीफ फसल के खरपतवार (Kharif season weed)–

ये खरपतवार वर्षा ऋतु के शुरू होते ही उग आते हैं तथा अपना जीवन चक्र ऋतु के अन्त तक पूरा कर लेते हैं। अधिकतर ये खरपतवार अपनी उत्पत्ति बीजों द्वारा करते हैं जैसे– बड़ी साई, छोटी साई, मुटमुर, अमेरिकन घास, केना, भ्रंगराज, पत्थरचट्टा, हजार दाना, झिरूआ, जल मोथा आदि

(ii) रबी फसल के खरपतवार (Rabi season weed)–

इन खरपतवारों का अंकुरण बरसात समाप्त होने व शरद ऋतु के प्रारंभ में होता है। इनके पौधे रबी फसलों के साथ–साथ अपना जीवन चक्र पूरा कर लेते हैं। गेहूँ का मामा, जंगली जई, पीली सेंजी, सफेद सेंजी, चटरी मटरी, जंगली मटर, जंगली जिलेबी, लहसुआ, मुर्ग मुकुट, कृष्ण नील, खरबथुआ, बथुआ व सत्यानाशी आदि इसके उदाहरण है।

(ब) द्विवर्षीय खरपतवार (Biennial weed)–

इस श्रेणी के खरपतवार प्रथम वर्ष में अपनी वानस्पतिक वृद्धि करते हैं व दूसरे वर्ष में बीज उत्पादित कर अपना जीवन चक्र पूरा कर लेते हैं। इसके मुख्य उदाहरण पनखर, हिरनखुरी, मकोय, सत्यानाशी व विसावपय आदि हैं।

(स) बहुवर्षीय खरपतवार (Perennial weed)–

इस वर्ग के खरपतवार एक बार उगकर कई वर्षों तक फूलते–फलते रहते हैं। इन खरपतवारों का विस्तार वानस्पतिक भागों जैसे–राइजोम, ट्यूबर, नट, बल्ब, जड़ो इत्यादि से होता है। उपयुक्त जलवायु में कुछ खरपतवार बीज भी पैदा करते हैं। इस वर्ग के खरपतवारों का पुनः दो उपवर्गों में विभाजन किया गया है।

(i) काष्ठीय खरपतवार (Shrubs weed)–

इस वर्ग के खरपतवारों के तने सख्त एंव मजबूत होते हैं। विशेष रूप में इनमें बहुवर्षीय झाड़ियां व जंगली पेड़ आते हैं। प्रारम्भिक वर्षों में इस प्रकार के खरपतवार बीजों का उत्पादन न कर मात्र अपनी वानस्पतिक वृद्धि करते हैं। एक बार बीज उत्पन्न करने में पश्चात् निरंतर प्रत्येक वर्ष बीज उत्पन्न करने से सक्षम हो जाते है। इसके मुख्य उदाहरण झरबेरी, आक व लटजीरा इत्यादि हैं।

(ii) शाकीय खरपतवार (Herbs weed)–

इस वर्ग के खरपतवार प्रथम वर्ष में अपनी वानस्पतिक वृद्धि करते हैं व दूसरे वर्ष में बीजों को पैदा करना प्रारंभ करके, निरंतर आने वाले कई वर्षों तक बीजों का उत्पादन करते रहते हैं। इसके तने व शाखाऐं मुलायम होती हैं। इसके मुख्य उदाहरण मोथा व हिरनखुरी इत्यादि हैं।

2. बीजपत्र के आधार पर खरपतवारों का वर्गीकरण (Classification of weeds based on cotyledons)–

बीजपत्र के आधार पर खरपतवारों को दो प्रमुख वर्गों में विभक्त किया गया है –

(अ) एक बीजपत्रीय खरपतवार (Monocot weed)–

इन खरपतवारों के बीज को तोड़ने पर बीज दो दालों में नहीं टूटता। इस वर्ग में पोएसी कुल के खरपतवार जैसे–दूब, मोथा, प्याजी, कांस, जनखरा आदि आते हैं।

(ब) द्विबीजपत्री खरपतवार (Dicotyledons weed)–

इस वर्ग के खरपतवारों के बीज तोड़ने पर ये दो भागों में बँट जाते हैं। इस वर्ग में बथुआ, कृष्ण नील, दुद्धी मुरेला, हिरनखुरी, मकोय, सत्यानाशी व विसावपय आदि आते हैं।

3. खरपतवार का फसल संबंध के आधार पर वर्गीकरण (Classification based on crop relationship)–

इस वर्ग के खरपतवार किसी फसल विशेष के साथ ही उगते है अर्थात फसल के अनुकूलता ही इनकी जीवन चक्र की आवश्यकता होती है और फसल विशेष को क्षति पहुँचाते है। इस वर्गीकरण के आधार पर

खरपतवारों को पुनः निम्नलिखित उप–वर्गों में विभाजित किया गया है–

(अ) सम्बन्धित खरपतवार (Relative weed)–

इस वर्ग के खरपतवार फसलो के वे पौधे जो आर्थिक रूप से उपयोगी होते है परन्तु फसल प्रक्षेत्र में उगकर फसलों को परोक्ष रूप से क्षति पहुँचाकर उत्पादन में गिरावट ला देते है। जैसे– दूधी घास, जंगली चौलाई कृष्ण नील आदि।

(ब) वास्तविक खरपतवार (Absolute weed)–

इस वर्ग के अन्तर्गत सभी प्रकार के एकवर्षीय एंव द्विवर्षीय खरपतवार सम्मिलित होते है। फसलों को बहुतायत तौर पर इन खरपतवारों से ज्यादा क्षति पहुँचायी जाती है। इस प्रकार के खरपतवार फसल उत्पादन एंव उनकी गुणवत्ता में गिरावट के प्रमुख कारण है। जैसे– गेहूँ का मामा, जंगली जई, दूब घास, वनचरी, बड़ी साई, छोटी साई मुटमुर, अमेरिकन घास इत्यादि।

स) रोग खरपतवार (Rogue)–

जब किसी फसल की उसी फसल को अन्य प्रजाति का पौधा बिना बोये खेत में उगता है, तो वह रोग खरपतवार कहलाता है। उदाहरण के रूप में यदि गेहूं की एच.डी. 2260 की फसल में बिना बोये गेहूं की यू.पी. 262 प्रजाति का पौधा उग आये तो वह रोग खरपतवार कहलाएगा। किसी जाति विशेष की शुद्धता को बनाये रखने के लिए इस प्रकार के पौधों को खेत से उखाड़ना (रोगिंग) आवश्यक होता है।

4. खरपतवार के रूप के आधार पर वर्गीकरण (Classification on morphology of weed)–

इसका वर्गीकरण पौधों की विशेषताओं व जीवन–चक्र के आधार पर किया गया है:

(अ) चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार (Broad leaved weed)–

जिन खरपतवारों की पत्तियां चौड़ी आकार/स्वरूप की होती है, वे इसी वर्ग में आते हैं। जीवन–चक्र के आधार पर इनके पुनः दो उपवर्ग बनाए गए हैं –

(i) एकवर्षीय खरपतवार (Annual weed)–

ये खरपतवार अंकुरण से लेकर पकने तक के जीवन चक्र को एक वर्ष में ही पूरा कर लेते हैं। जैसे– बथुआ, मुरेला, मकोय, जंगली चौलाई, पत्थरचटा, मुनमुना, चटरीमटरी, भंगड़ा, गजरी व जंगली जूट आदि।

(ii) बहुवर्षीय खरपतवार (Perennial weed)–

इस वर्ग के खरपतवार एक बार उगकर कई वर्षों तक फूलते–फलते रहते हैं। इन खरपतवारों का विस्तार वानस्पतिक भागों जैसे–राइजोम, ट्यूबर, नट, बल्ब आदि से होता है। जैसे– हिरनखुरी व वायुसुरी आदि।

(ब) सँकरी पत्ती वाले खरपतवार (Narrow leaved weed)–

इस वर्ग में घास कुल के पौधे आते हैं जिनकी पत्तियाँ सकरी नुकीले आकार की होती है। जीवन–चक्र के आधार पर इनको भी दो उपवर्गों में बाँटा गया है –

(स) एकवर्षीय खरपतवार (Annual weed)–

ये खरपतवार अंकुरण से लेकर परिपक्व होने तक के जीवन चक्र को एक वर्ष में ही पूरा कर लेते हैं। जैसे– मकड़ा आदि।

(ii) बहुवर्षीय खरपतवार (Perennial weed)–

ये खरपतवार एक बार उगकर कई वर्षों तक फूलते–फलते रहते हैं। जैसे– जनखरा, दूब, काँस, सरपत आदि।

(स) मोथा वर्गीय खरपतवार (Sedges)–

इस श्रेणी के एकवर्षीय एवं बहुवर्षीय खरपतवार अपनी वृद्धि नट, बल्ब, ट्यूबर व राइजोम से करते हैं। साइप्रस स्पिसीज के खरपतवार मुख्यतः इसमें आते हैं। जैसे–मोथा, जल मोथा, एंव गल मोथा।

खरपतवार नियंत्रण की विधियाँ–

विभिन्न परोक्ष एवं अपरोक्ष तरीके अपनाकर फसल प्रक्षेत्र से खरपतवार नियंत्रित किया जा सकता है। खरपतवार नियंत्रण के लिए यह आवश्यक है कि किसी एक विधि को न अपनाकर समन्वित खरपतवार नियंत्रण अपनाया जाये जैसे– भूमि की तैयारी, स्टेल सीड बैड तकनीक, पलवार प्रयोग, कवर क्राप, यान्त्रिक यन्त्र उपयोग, हाथ से निराई एंव शाकनाशियों का प्रयोग। खरपतवारों की सघनता एवं प्रकार भूमि की तैयारी के अनुरूप भी बदलता रहता है।

1. रोकथाम की विधि– रोकथाम क्रियान्यवयन से खरपतवारों के बीज खेत में नहीं आ पाते और उन्मूलन

या नियन्त्रण की आवश्यकता ही नही पड़ती। ऐसे सभी उपाय जिससे खरपतवारों के फैलने एवं आगमन पर रोक लगा सकें, रोकथाम विधि में आते है। जैसे–

- खरपतवार रहित, शुद्व प्रमाणित बीज का प्रयोग करें।
- गोबर की गली सड़ी खाद और कम्पोस्ट खाद का प्रयोग करें।
- फसल चक्र तथा फसलों की मिश्रित खेती को अपनाये।
- कृषि में प्रयोग होने वाले यन्त्र व मशीनें साफ सुथरा रखे।
- खेत की मेडो पर बीज उत्पन्न करने वाले खरपतवारों को फूल आने से पहले उखाड़े दें।
- बीज बन गये हुए खरपतवारों को पशुओं को न खिलाएं।
- सामूहिक रूप से खरपतवारो को खेत प्रक्षेत्र मेड़ो, नालियों एंव गांव के समीपस्थ न उगने दे।
- खादों का उचित व सही प्रयोग करें।

2. उन्मूलन– यदि कोई खरपतवार फसल प्रक्षेत्र में कम सघनता के साथ उग चुका हो तो उसे खेत प्रक्षेत्र से समूल नष्ट कर देना चाहिए, जिससे उसका पुनः फैलाव न हो सकें।

नियंत्रण–

हाथ से निकाई करना एक आसान पारम्परिक खरपतवार नियंत्रण प्रक्रिया है परन्तु तभी सम्भव है जब खेत प्रक्षेत्र में इनकी सघनता कम हो अन्यथा समय अधिक लगने के साथ– साथ अत्याधिक व्ययकारी हो जाता है। आमतौर पर बड़ी जोत क्षेत्रफल में खेती करने वाले किसानों के लिए समय से इस विधि द्वारा खरपतवार नियंत्रण कर पाना सम्भव नहीं हो पाता।

1. सस्य क्रियाएं–

(1) फसलों का चुनाव– खरपतवार नियंत्रण हेतु ऐसी फसल का चुनाव करना चाहिए, जो खरपतवार को उगने और उनके वृद्धि करने पर विपरीत प्रभाव डाले। अतः कम समय में तेजी से वृद्धि करने वाली फसल की बोआई करनी चाहिए व फसल पौधों में कीट व बीमारियों को सहन करने की क्षमता भी होनी चाहिए। फसलों की जड़े गहरी व फैलने वाली होनी चाहिए। फसल को कम से कम पोषक तत्वों की आवश्यकता होनी चाहिए।

(2) भूपरिष्करण क्रियाएँ– खरपतवारों पर नियन्त्रण के लिए गहरी व बार–बार कृशि क्रियाएँ नहीं करनी चाहिए। यद्यपि फसलों की वृद्धि के लिए गहरी या बार–बार जुताई लाभदायक होती है परन्तु इससे मिट्टी में मिले हुए खरपतवारों के बीज खेत की ऊपरी सतह पर आकर अनुकूल परिस्थितियों में बार–बार अंकुरित होते रहते हैं। अतः आवष्यकतानुसार ही बिना जुताई या कम से कम जुताई प्रक्रिया को अपनाना चाहिए।

(3) हरी एवं भूरी खाद के फसल का प्रयोग– जैविक खाद जैसे ढैचा सनई आदि सड़ने और गलने के पश्चात् कार्बनिक अम्ल का निस्तारण करते हैं। यह अम्ल खरपतवारों की वृद्धि को शिथिल कर देता है। सामान्य परिस्थितियों में कार्बनिक खादों के प्रयोग से भूमि में उगने वाली फसलों के लिए पर्याप्त वायु संचार, सुधरी हुई भूमि संरचना व अनुकूल नमी बनी रहती है। और खरपतवारो की सघनता भी कम हो जाती है।

4. रासायनिक विधि–

रासायनिक विधि से खरपतवार नियन्त्रण कम समय और कम लागत में सम्भव है और फसल एवं खरपतवारों में कम प्रति स्पर्धा के साथ–साथ उपज पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। परिणामस्वरूप, फसल एंव खरपतवार में प्रतिस्पर्धन भी कम हो जाती है। खरपतवारनाशी रसायनों को समय पर तथा उपयुक्त मात्रा मे डालने से खरपतवारों का नियन्त्रण किया जा सकता है। इस विधि से लागत कम आती है, खरपतवार प्रक्षेत्र में उग नही पाते तथा उगे हुये खरपतवारों पर शाकनाशी का प्रयोग कर उनके बढ़वार को रोक दिया जाता है या खरपतवार समूल नष्ट हो जाते है। विभिन्न प्रकार के शाकनाशी वर्तमान में उपलब्ध है, जिसको नियमन आधार पर निम्नवत् वर्गीकृत किया गया है।

शाकनाशियों के फार्मूलेशन के प्रकार–

1. पायसीकरणीय सान्द्र Emulsifable Consentrate (EC)–

ये शाकनाशी पानी में अत्यन्त घुलनशील होते है और इनके घुलते ही पानी एकदम सफेद दूध जैसा हो जाता है। यह शाकनाशी अन्य शाकनाशियों के

तुलना में सस्ते एंव अत्यन्त प्रभावकारी होने के साथ–साथ खरपतवारों पर अत्यन्त प्रभावकारी भी होते है। **उदाहरण–** प्रोपेनिल, एलाक्लोर, एनिलोफास।

2. विलम्बन सान्द्र Suspension Concentrate (SC)–

ये शाकनाशी खरपतवारों पर प्रभावकारी होने के साथ–साथ बहुत ही सुरक्षित होते हैं क्योंकि इनमें घुलनशील पाउडर मिला होता है। इस प्रकार के शाकनाशी प्रक्षेत्र में छिड़काव के पश्चात फसल में बहुत ही लंबे समय तक अपना प्रभाव बनाये रखने में सक्षम होते है। इस प्रकार के शाकनाशी को किसी भी दूसरे शाकनाशीयों के साथ भी मिलाकर एवं किसी भी मौसम में इस्तेमाल कर सकते है, अर्थात विपरित मौसम में भी ये अत्यन्त प्रभावकारी होते है। **उदाहरण–** बिस्पाइरीवैक सोडियम, फ्लूमिक्साजिन, मेटामिट्रोन, पिनाक्सुलम।

3. घुलनशील पाउडर Wettable Powder (WP)–

इस प्रकार के शाकनाशी एक पाउडर रूप में निर्मित किये जाते है जो पानी में अत्यन्त घुलनशील होते है। ये शाकनाशी छिड़काव के पहले पानी के साथ मिश्रित होकर निलम्बन रूप जल में रहते है। ये शाकनाशी बारीक दानेदार होने के कारण सर्फक्टेन्ट के साथ मिश्रित कर छिड़काव किया जाना ज्यादा उपयुक्त होता है। इसमें आर्दक पदार्थ (वेटिंग एजेंट) का उपयोग किया जाता है, जो पानी में मिलने के बाद इस रसायन को पौध पर फैलाने का काम करते है और मशीन के निचले सतह में एकत्रित नही होने देते। **उदाहरण–** सीमाजिन, एट्राजिन, 2.4–डी सोडियम लवण, क्लोडिनाफाप प्रोपरजिल, मेट्रीब्यूजिन आदि।

4. घुलनशील तरल Soluble Liquid (SL)–

इस प्रकार के सूत्रीयकरण पदार्थ पानी में सरलता से घुल जाते है। इसके सभी अवयवों को छिड़काव के लिए जलीय मिश्रण मे अच्छी तरह घोल लिया जाता है। इसको सिर्फ सक्रिय तत्वों के लिए उच्च घुलनशीलता के साथ तैयार किया जाता है। घुलनशील तरल पदार्थ की सारी शाकनाशी पाउडर फॉर्म मे होती है। **उदाहरण–** वेन्टाजोन, 2,4–डी डाईमिथायल अमाइनसाल्ट, ग्लाइफोसेट अमोनियमसाल्ट, इमेजाथापर।

5. जलीय फैलाव योग्य दानेदार Water Dispersible Granules (WG)–

यह शाकनाशी ठोस एंव दानेदार होता है, जो स्प्रे टैंक में अत्यन्त शीघ्रता से मिश्रित होकर घोल का रूप ले लेता है छिड़काव करने में काई परेशानी भी नही होती **उदाहरण–** पाइरोक्सासल्फोन हेलोसल्फ्यूरोनमिथायल, मेटसल्फ्यूरोनमिथायल, पाइरजोसल्फ्यूरान इथाइल, इथोक्सी सल्फ्यूरोन, डिक्लोसुलम डाइयूरॉन 80।

6. पानी में घुलनशील कणिकायें Water Soluble Granule (SG)–

ये शाकनाशी कणिकाओं के आकार की होती है, जो पानी में तुरन्त ही घुल जाती है। इस रसायन को दूसरे किसी भी रसायन के साथ

खरपतवारनाशियों की संस्तुत मात्रा के गणना का सूत्र

$$\text{शाकनाशियों (उत्पाद) की मात्रा} = \frac{\text{शाकनाशी (सक्रिय तत्व के रूप में) की दर (किग्रा.)} \times \text{क्षेत्रफल (है.)}}{\text{सक्रिय तत्व (शाकनाशी में उपलब्ध \%)}} \times 100$$

खरपतवार सघनता के गणना का सूत्र

$$\text{खरपतवार सघनता} = \frac{\text{एकल खरपतवारों की संख्या (/m}^2\text{) (अनियंत्रित)}}{\text{कुल खरपतवारों की संख्या (/m}^2\text{) (अनियंत्रित)}} \times 100$$

खरपतवार नियंत्रण क्षमता– इसकी गणना खरपतवारों की संख्या या शुष्क भार की आधार पर की जाती है।

$$\text{खरपतवार नियंत्रण क्षमता (\%)} = \frac{\text{नियंत्रित उपचार कुल खरपतवारों की शुष्क भार} - \text{नियंत्रित उपचार में खरपतवारों की शुष्क भार}}{\text{अनियंत्रित उपचार में कुल खरपतवारों की शुष्क भार}} \times 100$$

मिलाकर छिड़काव कर सकते है। इस खरपतवारनाशी को जब स्प्रे टैंक के पानी में मिलाया जाता है तो निलम्बन रूप बना लेता है जिसका आकार 0.1 से 20 तक होता है। **उदाहरण**– ग्लाइफोसेट–अमोनियम लवण।

खरपतवारनाशियों की दर/मात्रा निर्धारण–

शाकनाशियों की दर मात्रा, सक्रिय तत्व प्रति क्षेत्रफल के अनुसार होती है। यह किग्रा. या ली0/है. में अंकित किया जाता है।

शाकनाशियों का प्रयोग करते समय सावधानियाँ–

1. खरपतवारनाशी का छिड़काव एक समरूपता में करना चाहिए।
2. खरपतवारनाशियों का प्रयोग निरन्तर कई वर्षो तक न करके बदलाव करते रहना चाहिए।
3. खरपतवारनाशी का घोल अनुमोदित मात्रा में ही बनाना चाहिए।
4. तेज हवा के चलने पर छिड़काव नहीं करना चाहिए क्योंकि शाकनाशी हवा के साथ उड़कर पास लगी अन्य संवेदी फसलों को नुकसान पहुँचा सकती है।
5. वर्षा होने की सम्भावना पर शाकनाशियों का छिड़काव नहीं करना चाहिए।
6. मिश्रित फसलों में शाकनाशियों का चयन फसलों के मुताबिक करना चाहिए।
7. हवाओं के प्रतिकूल रुख की ओर कभी छिड़काव न करे ताकि रसायन शरीर पर न पड़े।
8. शाकनाशियों का प्रयोग करते समय रक्षात्मक वस्त्र, गमबूट, दस्ताने, धूप का चष्मा, मास्क आदि का इस्तेमाल अवश्य करना चाहिए।
9. छिड़काव करने के बाद अपने हाथ, मुँह तथा ऑखों को साबुन से अच्छी तरह धो लेना चाहिए।
10. खरपतवारनाशियों को बच्चों की पहुँच से दूर रखना चाहिए।
11. गैर चयनित शाकनाशियों का इस्तेमाल करते समय स्प्रेयर के नॉजल पर सुरक्षात्मक षील्ड (हुड) लगाकर ही खरपतवारो का छिड़काव करना चाहिए।
12. शाकनाशियों के स्प्रे के लिए फ्लैट फैन नॉजल का इस्तेमाल करना चाहिए।

छिड़काव के पूर्व तथा छिड़काव के बाद स्प्रेयर को अच्छी तरह से साफ कर लेना चाहिए।

◆◆◆

तिलहनी एवं दलहनी फसलों में खरपतवार नियंत्रण

डा० तेज प्रताप
वरिष्ठ शोध अधिकारी (सस्य विज्ञान)
गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल : tpsingh_62@yahoo.com

भारतीय अर्थव्यवस्था में तिलहनी फसलों का महत्वपूर्ण स्थान है। वर्तमान में, तिलहनी फसलों की खेती लगभग 26.67 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल में की जा रही है, जिससे 36.57 मिलियन टन उत्पादन प्राप्त हो रहा है। देश मे तेल आपूर्ति के अनुसार मूंगफली, सरसों एवं राई, तिल कुसुम, अरण्डी, सूर्यमुखी एवं नाइजर सीड आदि उत्पादित किये जा रहे हैं। तिलहनी फसलों से अच्छा उपज प्राप्ति हेतु खरपतवारों का सही समय पर नियंत्रण करना आवश्यक होता है। खरपतवारों के प्रकोप से तिलहनी फसलों की उपज में 15 से 60 प्रतिशत तक की कमी हो सकती हैं। यह इस बात पर निर्भर करता है कि फसल के साथ, किस प्रकार के खरपतवार, कितनी सघनता और कितनी अवधि तक फसल पौध से प्रतिस्पर्धा करते है। आमतौर पर तिलहनी फसलों में एक वर्षीय घास कुल तथा चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों द्वारा अत्यधिक क्षति होती है।

भारत वर्ष में दलहनी फसलों का क्षेत्रफल 29. 36 मिलियन हैक्टेयर, उत्पादन 24.5 मिलियन टन एवं उत्पादकता 835 किग्रा. प्रति हैक्टेयर है। दलहनी फसलों में अच्छी उपज के लियें खरपतवारों का सही समय पर नियंत्रण करना आवश्यक होता हैं। चूँकि दलहनी फसलों का जीवन चक्र आमतौर पर अल्पावधि होता है ऐसी स्थिति में सही समय पर नियंत्रण न करने से इन फसलों की पैदावार में भारी कमी आ जाती है। खरपतवारों द्वारा दलहनी फसलों की उपज में 30 से 60 प्रतिशत तक की कमी हो सकती है यह इस बात पर निर्भर करता है कि फसल के साथ, किस प्रकार के खरपतवार, कितनी सघनता और किस अवस्था में, कितनी अवधि तक प्रति स्पर्धा करते हैं। आमतौर पर दलहनी फसलों में एक वर्षीय घासकुल तथा चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों द्वारा अधिक क्षति होती है।

सारणी 1: तिलहनी फसलों में खरपतवारों के नियंत्रण की क्रान्तिक अवस्था एवं खरपतवारों द्वारा हानियाँ

फसल	क्रान्तिक अवस्था (बुवाई के बाद दिनों में)	खरपतवारों द्वारा हानि (प्रतिशत)
सोयाबीन	30–40	40–60
मूँगफली	20–25	40–50
सूरजमुखी	20–25	30–60
सरसों एवं तोरिया	20–30	15–30
अलसी	30–35	30–40
तिल	30–50	50–70

सारणी 2: विभिन्न दलहनी फसलों में खरपतवार नियंत्रण हेतु फसल–खरपतवार प्रतिस्पर्धा की क्रांतिक अवस्था

फसल	खरपतवार नियंत्रण की क्रांतिक अवस्था (बुवाई के बाद दिनों में)
चना	40–45
मटर, मसूर	35–40
उर्द, मूंग	30–35
अरहर	50–60
राजमा	40–45
बाकला	40–50

सारणी 3: तिलहनी फसलों में शाकनाशियों की प्रयोग मात्रा एवं प्रयोग का समय

क्र० सं०	शाकनाशी खरपतवार रसायन	व्यवसायिक नाम	फसल	मात्रा स०त० (कि०ग्रा०/है.)	व्यवसायिक उत्पाद (ग्रा०/है.)	प्रयोग का समय
बुआई से पूर्व प्रयोग होने वाले शाकनाशी (प्री प्लान्ट)						
1.	फ्लूक्लोरोलिन 45 ई0 सी0	बासालिन	सोयाबीन, मूँगफली, राई, सूर्यमुखी,सरसों एवं तोरिया, तिल, अलसी, नाइजर	0.75–1.0	1500–2000	बुवाई से पूर्व भूमि में मिलाना
2.	ट्राईफ्लूरेलिन 48 ई0 सी0	टेफ्लान	तदैव	0.75–1.0	1500–2000	तदैव
खरपतवार जमाव पूर्व प्रयोग होने वाले शाकनाशी (प्री इमरजेंस)						
1.	पेन्डीमेथिलीन 30 ई0 सी0	स्टाम्प, पैडीगार्ड, पैनीडा	सोयाबीन, राई एवं सरसों, मूँगफली, सूरजमुखी, तिल, अलसी, नाइजर	0.75–1.0	2500–3330	बुवाई के तुरन्त बाद 2–3 दिन के अंदर उचित नमी पर
2.	एलाक्लोर 50 ई0 सी0	लासो	सोयाबीन, राई एवं सरसों, मूँगफली, सूरजमुखी, कुसुम	1.0–1.5	2000–3000	–तदैव–
3.	मैट्रीब्यूजिन 70 डब्लू0पी0	सेंकार	सोयाबीन	0.25	350	–तदैव–
4.	मेटलाक्लोर 50 ई0 सी0	डुअल	सूर्यमुखी, मूँगफली	0.75–1.5	2000–3500	बुवाई के 2–3 दिन के अंदर
5.	ब्यूटाक्लोर 50 ई0 सी0	मचेटी	सूर्यमुखी, मूँगफली	1.0–1.5	2000–3000	बुवाई के 2–3 दिन के अंदर
6.	ऑक्सिडायजोन 25 ई0 सी0	रॉनस्टर	मूँगफली, तिल, अलसी, नाइजर	0.75	3000	बुवाई के 2–3 दिन के अंदर
7.	ऑक्सीफ्लोरोफिन 75 डब्लू0 पी0	गोल	सूर्यमुखी, मूँगफली, राई एवं सरसों	0.1–0.2	400–800	बुवाई के 2–3 दिन के अंदर
खरपतवार जमाव पश्चात् प्रयोग होने वाले शाकनाशी (पोस्ट इमरजेंस)						
1.	फिनोक्साप्रोप–पी–इथाइल 9.3 ई0 सी0	व्हिपसुपर	सोयाबीन	0.1	1000	बुवाई के 10–15 दिन पश्चात्
2.	हैलोक्सीफॉप 10 ई0सी0	फोकस	सोयाबीन	0.125–0.25	1250–2500	बुवाई के 10–15 दिन पश्चात्
3.	फ्लूजीफॉप 12.5 ई0 सी0		सोयाबीन, मूँगफली	0.125–0.250	1000–2000	बुवाई के 20–25 दिन पश्चात्
4.	आइसोप्रोट्यूरॉन 75 डब्लू0 पी0	आइसोगार्ड	राई एवं सरसों, तिल, अलसी,नाइजर	0.5–0.75	670–1000	बुवाई के 10–15 दिन पश्चात्
5.	आक्सीफ्लोरोफिन 75 डब्लू0 पी0	गोल	सूर्यमुखी, मूँगफली, राई एवं सरसों	0.1–0.2	400–800	बुवाई के 30–35 दिन पश्चात्
6.	इमेजाथायपर 10 ई0 सी0	परसूट	मूँगफली, सोयाबीन	0.1–0.15 0.1	1000–1500 1000	बुवाई के 20–25 दिन पश्चात्
7	क्यूजेलाफॉप इथाइल 84 डब्लू0 डी0 जी0	टरगा सुपर	मूँगफली, राई एवं सरसों	0.04–0.05	800–1000	बुवाई के 15–20 दिन पश्चात्
8.	क्लोरीम्यूरॉन 25 डब्लू0 पी0	क्लोबेन	सोयाबीन	0.009	36.0	बुवाई के 15–20 दिन पश्चात्

सारणी 4: विभिन्न दलहनी फसलो में शाकनाशी की प्रयोग मात्रा एवं प्रयोग का समय

क्र0 सं0	रसायन	व्यवसायिक नाम	फसल	मात्रा स0त0 किग्रा./है.	प्रयोग का समय
बुवाई से पूर्व प्रयोग होने वाले शाकनाशी (प्री प्लाण्ट)					
1.	फ्लूक्लोरोलिन 45 ई0सी0	बासालिन	मूंग, उर्द, अरहर, मटर, चना,मसूर	0.75–1.0	बुवाई से पूर्व
2.	ट्राईफ्लूरेलिन 48 ई0सी0	टेफ्लान	मूंग, उर्द, अरहर, मटर चना,मसूर	0.75–1.0	बुवाई से पूर्व
जमाव पूर्व प्रयोग होने वाले शाकनाशी (प्री इमरजेंस)					
1.	पेन्डीमेथिलीन 30 ई0सी0	स्टाम्प, पैडीगार्ड, टाटापेनीडा, पैन्डीस्टार	मूंग, उर्द, अरहर, मटर, चना, मसूर	0.75–1.0	बुवाई के 2–3 दिन के अंदर
2.	एलाक्लोर 50 ई0 सी0	लासो	मूंग, उर्द, अरहर	2.0–2.5	तदैव
3.	मैट्रीब्यूजिन 70 डब्लू0 पी0	सेंकार	मटर	0.25–0.75	तदैव
4.	मेटोलाक्लोर 50 ई0 सी0	डुअल	मटर,चना, मसूर	1.5	तदैव
5.	प्रोमेट्रिन 50 डब्लू0 पी0	प्रोमेट्रेम्स	चना	1.0	तदैव
6.	आक्साडायजोन 50 ई0 सी0	रॉन स्टार	मूंग, उर्द, अरहर	0.25	तदैव
7.	आक्सीफ्लूरोफेन 23.5 ई0 सी0	गोल, जरगॉन	चना, मसूर, मटर, अरहर	0.1–0.2	तदैव
जमाव पश्चात् प्रयोग होने वाले शाकनाशी (पोस्ट इमरजेंस)					
1.	इमेजाथायपर 10 ई0 सी0	परशूट	मटर, मसूर, सोयाबीन	0.1–0.2	बुवाई के 10–15 दिन बाद
2.	फिनोक्साप्रोप ईथाइल 9.3 ई0सी0	व्हिपसुपर	सोयाबीन	0.1	
3.	हैलोक्सीफॉप 10 ई0 सी0	फोकस	सोयाबीन	0.125–0.25	बुवाई के 10–15 दिन बाद
4.	फ्ल्यूजीफॉप 12.5 ई0 सी0	फ्यूजीलादे	सोयाबीन, मूंगफली, मूंग, उर्द, लोबिया	125–250	बुवाई के 10–15 दिन बाद
5.	क्यूजेलाफॉप –पी–ईथाइल 5 ई0 सी0	टरगा सुपर	मूंग, उर्द, अरहर,चना, मसूर, मटर, सोयाबीन	0.04–0.05	बुवाई के 10–15 दिन बाद
6.	क्लोरीम्यूरॉन 20 डब्लू0 पी0	क्लोबेन	सोयाबीन	0.006–0.009	बुवाई के 15–20 दिन बाद

◆◆◆

खरीफ फसलों में समेकित खरपतवार प्रबन्धन

डा० बी०एस० कार्की
प्राध्यापक (सस्य विज्ञान), प्रसार शिक्षा निदेशालय
गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल : aticgbpuat@gmail.com

खरपतवार किसी विशेष पौधे का नाम नहीं है, बल्कि ये ऐसे अवांछित पौधे हैं जो हानिकारक तथा अनुपयोगी होते हैं तथा ऐसे स्थान पर उग आते है जहाँ पर इनकी आवश्यकता नहीं होती। खरपतवार शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम एक ब्रिटिश कृषक जेथ्रो टुल द्वारा सन् 1731 में अपनी पुस्तक Horse Hoeing Husbandry में किया गया। विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा खरपतवार को निम्नानुसार परिभाशित किया गया है:

- जेथ्रो टुल के अनुसार– खरपतवार वे अवांछित पौधें हैं जो किसी स्थान पर बिना बोए उग आते हैं।
- डा0 बील के अनुसार– खरपतवार एक ऐसा पौधा है जो अनचाहे स्थान पर उगता है।
- पीटर के अनुसार–खरपतवार वे पौधे हैं जिनमें लाभ की अपेक्षा हानि करने की क्षमता अधिक होती है।
- रॉस एवं सहयोगी–खरपतवार वे पौधें हैं जो प्रतिस्पर्धी, दष्ढ़ एवं विनाशकारी होते हैं तथा मनुष्य के क्रियाकलापों में व्यवधान करते हैं।

संक्षिप्त में यह कहाँ जा सकता है कि सभी खरपतवार अवांछित पौधे हैं किन्तु सभी अवांछित पौधे खरपतवार नहीं होते।

खरपतवार की विशेषताएं–

- अत्यधिक बीज उत्पादन क्षमता
- बीजों का आकार अत्यन्त छोटा होना
- बीजों का अंकुरण शीघ्र, तीव्र वृद्धि एवं अल्प समय में प्रजनन क्षमता
- प्रतिकूल मौसम में भी जीवित रहने की क्षमता
- पर्यावरण सुघट्यता
- बीज सुसुप्तावस्था
- बीजों का आकार एवं आकृति फसल के बीजों के सदृश होना
- बीजों के प्रकीर्णन के विविध साधन (एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचना)
- फसल के पौधों की तुलना में अधिक प्रतिस्पर्धी–अधिक बढ़वार

खरपतवारों से होने वाली हानियाँ–

- उपज में कमी
- उत्पादन लागत में वृद्धि
- पोषक तत्वों की हानि
- फसल हेतु जल की उपलब्धता में कमी
- स्थान एवं प्रकाश की उपलब्धता में कमी
- फार्म उत्पादों के गुणवत्ता में ह्रास
- पशुधन उत्पादों की मात्रा एवं गुणवत्ता में ह्रास
- रोगों एवं कीटों के वैकल्पिक परपोशियों के रूप में खरपतवार
- सिंचाई पानी के बहाव में अवरोध
- मनुष्य एवं पशुओं के स्वास्थ्य को हानि– खुजली, एलर्जी आदि
- भूमि के मूल्य में कमी
- हानिकारक रसायनों का स्राव
- वन क्षेत्र एवं चरागाहों को क्षति

शोध के आधार पर पाया गया है कि फसलों को विभिन्न व्याधियों में सबसे ज्यादा हानि (लगभग 37 प्रतिशत) खरपतवारों के कारण होती है तथा रोग, कीट एवं अन्य कारणों से क्रमशः 29 प्रतिशत, 22 प्रतिशत तथा 12 प्रतिशत की हानि होती है। खरपतवारों द्वारा फसलों की उपज में हानि का स्तर खरपतवार के प्रकार, उनकी संख्या/बहुलता, उनकी मौजूदगी की अवधि, खरपतवार के पौधों का फसल के साथ प्रतिस्पर्धा का स्तर तथा मौसम की परिस्थितियों आदि पर निर्भर करता है।

खरपतवारों के आर्थिक उपयोग–

खरपतवार फसलों के लिए हानिकारक होने के

साथ–साथ विभिन्न रूप में मानव जीवन हेतु उपयोगी भी होते हैं, जो निम्नवत् है :

- बथुआ, चौलाई एवं पार्चुलाका आदि खरपतवारों का उपयोग हरे साग के रूप में
- टाईफा एवं कांस का उपयोग रस्सियों एवं झोपड़ियों को बनाने में
- कांसनी की जड़ों का उपयोग कॉफी पाउडर को सुगन्धित करने में
- उत्तर भारत में कांस का उपयोग गन्ने के प्रजनन कार्यक्रम में
- पार्थेनियम, सनई, मदार एवं जलकुम्भी खरपतवारों का उपयोग मिट्टी में नेमाटोड की संख्या कम करने हेतु
- दूब, सेन्क्रस, डाईकेन्थियम, एकलिप्टा आदि खरपतवारों का पषुचारे के रूप में उपयोग
- सत्यानाशी खरपतवार का क्षारीय मृदाओं को सुधारने में उपयोग
- लैन्टाना, चौलाई, बथुआ एवं जलकुम्भी का सौन्दर्यीकरण में उपयोग
- नागफनी का उपयोग बॉयोफैन्सिंग हेतु
- कुछ खरपतवारों जैसे मदार, सत्यानाशी, फाईलेन्थस (भुई आंवला) एवं स्ट्राइगा का उपयोग क्रमशः पेट कीबीमारी, त्वचा के रोग, पीलिया एवं मधुमेह के उपचार हेतु।
- नमी के संरक्षण एवं भूक्षरण को रोकने हेतु
- मृदा में पोषक तत्वों एवं कार्बनिक पदार्थ में वृद्धि

खरीफ मौसम के प्रमुख खरपतवार–

खरीफ मौसम में उगने वाले खरपतवारों को निम्न प्रकार वर्गीकृत कर सकते हैं :

1. **चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार–** ये खरपतवार दो बीजपत्रीय होते हैं तथा इनकी पत्तियाँ प्रायः चौड़ी होती हैं जैसे कनकवा, कंटीली चौलाई, मकोय, बड़ी दुद्धी, हजारदाना, भंगड़ा, सफेद मुर्ग, जंगली रसभरी, बनरी, गाजर घास आदि।
2. **संकरी पत्ती वाले खरपतवार–** ये खरपतवार घास कुल के पौधे हैं जिनकी पत्तियाँ पतली एवं लम्बी होती हैं जैसे सांवा, कोदो, मकड़ा, बनचरी, दूब घास, तगड़ी घास (क्रैब घास), बनरा आदि।
3. **मोथा वर्गीय (सेजेज) खरपतवार–** इस कुल के खरपतवारों की पत्तियाँ लम्बी एवं तना तीन किनारों वाला ठोस होता है जिनकी जड़ों में गाठें पायी जाती हैं, जैसे–मोथा, पीला मोथा, छतरी मोथा आदि।

खरीफ फसलों के प्रमुख खरपतवार–

- धान–सांवा, कोदो, कनकवा, मोथा आदि।
- मक्का, ज्वार एवं बाजरा–दूब घास, जंगली चौलाई, भंगड़ा, मकोय, कनकवा, लूनिया, हजारदाना, सफेद मुर्ग, सांवा, मोथा आदि।
- दलहनी एवं तिलहनी फसलें–महकवा, हजारदाना, बड़ी दुद्धी, कनकवा, सफेद मुर्ग, सांवा, मोथा आदि।

खरपतवार नियंत्रण की विधियाँ–

- निवारक/परहेज की विधियाँ
- यांत्रिक विधियाँ
- सस्य/कृषिगत विधियाँ
- जैविक विधियाँ
- रासायनिक विधि

समेकित खरपतवार प्रबन्धन–

- खरपतवार प्रबन्धन वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा खरपतवारों की संख्या एवं उनकी बढ़वार को इतना न्यून करना कि उनसे फसल को कोई आर्थिक नुकसान न हो तथा पर्यावरण प्रदूषण भी कम से कम हो। खरपतवार नियंत्रण के बजाय प्रबन्धन की परिकल्पना महत्वपूर्ण है। नियंत्रण में विद्यमान खरपतवारों पर ध्यान दिया जाता है जबकि प्रबन्धन एक पद्धति आधारित प्रक्रिया है।

इसमें अग्रिम क्षेत्र योजना तैयार करके खरपतवारों के प्रवेष को भी कम करने की रूप–रेखा सम्मिलित रखती है ताकि फसलों को खरपतवारों से अधिक प्रतिस्पर्धी बनाये जाये।इस प्रकार खरपतवार नियंत्रण की विभिन्न विधियों के संयुक्त प्रयोग द्वारा खरपतवारों को प्रबन्धन करना ताकि उनके द्वारा होने वाली हानि को आर्थिक स्तर से नीचे रखा जा सके, समेकित खरपतवार प्रबन्धन कहलाता है।

समेकित खरपतवार प्रबन्धन क्यों?–

- खरपतवार नियंत्रण में रसायनों के बढ़ते प्रयोग से

वातावरण, मृदा व जल प्रदूषण, पषु विषाक्ता, मृदा में सूक्ष्मजीव हानि आदि के कारण चिंता का विषय हो गया है।

- खरपतवारों एवं परिस्थितियों को देखते हुए वर्तमान में किसी एक विधि द्वारा वांछित फसलोत्पादन प्राप्त करना संभव नहीं है।
- रसायनों की बढ़ती कीमतों से उत्पादन लागत में वृद्धि एवं आमदनी में कमी।
- उपचार से बचाव ज्यादा अच्छा।

खरपतवार प्रबन्धन हेतु महत्वपूर्ण जानकारी–

1. खरपतवार प्रतिस्पर्धा की क्रान्तिक/नाजुक अवस्था–

- फसल की वह अवधि, जिसमें खरपतवार निकालने पर फसल से अधिकतम उपज प्राप्त होती है।
- वह अवधि जिसमें खरपतवार नियंत्रण करने से प्राप्त होने वाली उपज पूरे फसल अवधि में खरपतवार मुक्त फसल से मिलने वाली उपज के बराबर हो।
- वह अवधि जिसके पहले की अवस्था में खरपतवार, फसल की उपज को बिना प्रभावित किये बढ़वार करते हैं तथा उस अवधि के बाद खरपतवार की वृद्धि फसल की उपज पर कोई हानि नहीं करती।
- खरपतवार प्रतिस्पर्धा की अवधि सामान्यतया फसल अवधि की एक चौथाई से एक तिहाई होती है।

विभिन्न खरीफ फसलों में खरपतवार प्रतिस्पर्धा की क्रान्तिक/नाजुक अवस्था एवं खरपतवारों के प्रकोप से उपज में होने वाली कमी निम्न सारणी से देखा जा सकता है:

फसल	क्रान्तिक/ नाजुक अवस्था (बुवाई के बाद दिनों में)	उपज में कमी (प्रतिशत)
धान (सीधी बुवाई)	15–45	43–78
धान (रोपित)	25–45	15–31
मक्का, ज्वार, बाजरा	15–45	25–55
सोयाबीन	20–45	30–70
मूंगफली	25–60	35–45
अरहर	15–60	30–40
उर्द, मूंग, लोबिया	15–30	30–50
मंडुवा, झंगोरा	20–40	20–25
रामदाना	20–45	20–25

2. प्रतिस्पर्धा में खरपतवारों की आर्थिक अवसीमा–

- खरपतवार कम संख्या में अपनी एक सीमा तक फसलों को नुकसान नहीं करते हैं। इस संख्या से नीचे खरपतवार नियंत्रण का व्यावसायिक लाभ नहीं मिलता है। जैसे ही इस अवसीमा से खरपतवार की संख्या बढ़ती है, फसल की उपज में कमी आना शुरू हो जाता है।
- फसल का समूल नाश व उससे कुल हानि खरपतवार की अधिकतम संख्या से कहीं पहले हो जाती है। इसलिए प्रबन्धन नीति में खरपतवारों की अवसीमा का अवलोकन स्थायी उपज प्राप्त करने के लिए अति आवश्यक है।
- खरपतवार की एक निम्न संख्या उपज में कमी करती है, परन्तु उस सीमा में उसके नियंत्रण की लागत कुल उपज बढ़ोत्तरी से कही ज्यादा हो सकती है। अतः खरपतवार की वह संख्या जब नियंत्रण लागत उपज बढ़ोत्तरी से वापस मिल जाये अथवा जिस पर नियंत्रण लागत उस नियंत्रण उपाय/विधि से प्राप्त लाभ के बराकर हो, खरपतवार की आर्थिक अवसीमा कहलाती है।

खरपतवार नियंत्रण की निवारक/परहेज विधि–

इस विधि में ये क्रियाऐं सम्मिलित है जिन्हें अपनाने से खरपतवार के बीज खेत में नहीं आ पाते, जिससे नियंत्रण की आवश्यकता कम पड़ती है। ऐसे सभी उपाय जिनसे खरपतवारों के आगमन एवं फैलने पर रोक लगाया जा सके, निवारक/परहेज की विधि में आते हैं, जो निम्नवत् है :

- बुवाई हेतु शुद्ध प्रमाणित एवं खरपतवार रहित बीज का प्रयोग
- गोबर और कम्पोस्ट खाद को अच्छी तरह से सड़ा कार ही प्रयोग करें जिससे उसमें पड़े खरपतवार के बीजों की अंकुरण क्षमता खत्म हो जाये
- फसल चक्र तथा फसलों की मिश्रित खेती को बढ़ावा

खरीफ फसलों में संस्तुत खरपतवारनाशी रसायनों का प्रयोग–

क्र.सं.	रसायन का नाम	मात्रा (सक्रिय पदार्थ/है.)	प्रयोग का समय	नियंत्रित खरपतवार
1-	व्यूटाक्लोर 50 ई.सी.	1.50 लीटर	रोपाई के 3 दिन के अन्दर	घास कुल के खरपतवार
2-	प्रेटिलाक्लोर 50 ई. सी.	0.50–0.75 लीटर	रोपाई के 3 दिन के अन्दर	घास कुल के खरपतवार
3-	एनिलोफॉस 30 ई.सी.	0.40 लीटर	रोपाई के 3–5 दिन के अन्दर	घास कुल के खरपतवार
4-	मेटसल्फ्यूरान मिथाइल 20 डब्ल्यू. पी.	0.004 किग्रा.	रोपाई के 20 दिन बाद	चौड़ी पत्ती, मोथा वर्गीय एवं तिपतिया के लिए
5-	ऑक्साडायरजिल 80 डब्ल्यू.पी.	0.10 किग्रा.	रोपाई के 3 दिन के अन्दर	संकरी एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार
6-	बिस्पाइरीबैक सोडियम 10 एस.सी.	0.020 लीटर	बुवाई/रोपाई के 15–20 दिन के अन्दर	घास कुल, चौड़ी पत्ती एवं मोथा वर्गीय खरपतवार
7-	क्लोरीम्यूरॉन इथाईल 25 डब्ल्यू.पी.	0.006 किग्रा.	रोपाई के 5–10 दिन के अन्दर	संकरी एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार

मक्का, ज्वार एवं बाजरा–

क्र.सं.	रसायन का नाम	मात्रा (सक्रिय पदार्थ/है.)	प्रयोग का समय	नियंत्रित खरपतवार
1.	एट्राजिन 50 डब्ल्यू.पी	1.0 किग्रा.	बुवाई के 3 दिन के अन्दर	सभी प्रकार के खरपतवार
2.	सिमाजिन 50 डब्ल्यू.पी.	1.0 किग्रा.	बुवाई के 3 दिन के अन्दर	सभी प्रकार के खरपतवार
3.	2,4–डी सोडियम लवण 80 डब्ल्यू.पी.	1.0 किग्रा.	खरपतवारों के 2–4 पत्ती की अवस्था पर	चौड़ी पत्ती व मोथा कुल के खरपतवार
4.	एलाक्लोर 50 ई.सी.	2.0 लीटर	बुवाई के 3 दिन के अन्दर	घास कुल के खरपतवार
5.	पेन्डीमिथेलिन 30 ई.सी.	1.0 लीटर	बुवाई के 3 दिन के अन्दर	संकरी एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार

मंडुवा एवं झंगोरा–

क्र.सं.	रसायन का नाम	मात्रा (सक्रिय पदार्थ/है.)	प्रयोग का समय	नियंत्रित खरपतवार
1.	पेन्डीमिथेलिन 30 ई.सी.	1.0 किग्रा.	बुवाई के 3 दिन के अन्दर	संकरी एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार
2.	2,4–डी सोडियम लवण 80 डब्ल्यू.पी.	0.5 किग्रा.	बुवाई के 30–35 दिन पर	चौड़ी पत्ती व मोथा कुल के खरपतवार

अरहर, उर्द एवं मूँग–

क्र.सं.	रसायन का नाम	मात्रा (सक्रिय पदार्थ/है.)	प्रयोग का समय	नियंत्रित खरपतवार
1.	पेन्डीमिथेलिन 30 ई.सी.	1.0 किग्रा.	बुवाई के 3 दिन के अन्दर	संकरी एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार
2.	एलाक्लोर 50 ई.सी.	2.0 लीटर	बुवाई के 3 दिन के अन्दर	घास कुल के खरपतवार
3.	क्वीजेलोफॉप इथाईल 5 ई.सी.	0.050 लीटर	बुवाई के 15–20 दिन बाद	संकरी पत्ती के खरपतवार
4.	फेनोक्साप्रॉप पी. इथाईल 10 ई.सी.	0.06 लीटर	बुवाई के 15–20 दिन बाद	संकरी पत्ती के खरपतवार

सोयाबीन–

क्र.सं.	रसायन का नाम	मात्रा (सक्रिय पदार्थ/है.)	प्रयोग का समय	नियंत्रित खरपतवार
1.	पेन्डीमिथेलिन 30 ई.सी.	1.0 किग्रा.	बुवाई के 3 दिन के अन्दर	संकरी एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार
2.	एलाक्लोर 50 ई.सी.	2.0 लीटर	बुवाई के 3 दिन के अन्दर	घास कुल के खरपतवार
3.	फेनोक्साप्रॉप पी. इथाईल 10 ई.सी.	0.10 लीटर	बुवाई के 15–20 दिन बाद	संकरी पत्ती के खरपतवार
4.	मेट्रीब्यूजिन 70 डब्ल्यू.पी.	0.50 किग्रा.	बुवाई के 3 दिन के अन्दर	संकरी एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार
5.	इमेजैथापायर 10एस.एल.	0.10 किग्रा.	बुवाई के 15–20 दिन बाद	संकरी एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार
6.	क्वीजेलोफॉप इथाईल 5 ई.सी.	0.050 लीटर	बुवाई के 15–20 दिन बाद	संकरी पत्ती के खरपतवार

- कृषि में प्रयोग किये जाने वाले यंत्रों/मशीनों को साफ रखना
- खेतों के मेड़ों तथा पानी की नालियों में खरपतवारों को न उगने देना तथा उगे हुए खरपतवारों को समय से नष्ट करना
- खेत में उगे हुए खरपतवारों को फूल आने से पहले उखाड़ना
- बीज बने हुए खरपतवारों को पषुओं को न खिलाना
- जिन खेतों में खरपतवार अधिक उगते हो, उन खेतों की मिट्टी दूसरे खेतों में न डालें

खरपतवार नियंत्रण की यांत्रिक विधियाँ–

यह खरपतवारों के रोकथाम की सबसे पुरानी, प्रचलित, सरल व प्रभावी विधि है जिसमें खरपतवारों की रोकथाम हेतु विभिन्न यंत्रों व मशीनों का प्रयोग

खरपतवार रसायनों की सही–सही मात्रा की गणना करने का तरीका

$$\text{खरपतवारनाशी की मात्रा (किग्रा./लीटर प्रति हैक्टर)} = \frac{\text{संस्तुत सक्रिय तत्व की दर (किग्रा./लीटर प्रति हैक्टर)} \times 100}{\text{उत्पाद में सक्रिय तत्व की मात्रा (प्रतिशत)}}$$

उदाहरणार्थ रोपित धान में बिस्पाइरीबैक सोडियम 10 ई.सी. की 0.020 लीटर सक्रिय तत्व प्रति हैक्टर मात्रा की संस्तुति के अनुसार इसकी कुल आवश्यक मात्रा= $\frac{0.020 \text{ लीटर प्रति हैक्टर}}{10} \times 100$

अर्थात 0.200 लीटर होगी।

किया जाता है। इसके अन्तर्गत निम्न क्रियाऐं अपनाई जाती हैं:

- भू–परिष्करण क्रियायें–मृदा में की जाने वाली समस्त कृषण क्रियाऐं जैसे–जुताई, हैरों या कल्टीवेटर चलाना, पाटा चलाना, खेत समतल करना आदि
- हाथ द्वारा उखाड़ना– प्राथमिकता के तौर पर पुश्पन से पहले
- निराई–गुड़ाई करना– कुदाल अथवा हैण्ड फॉर्क द्वारा
- हाथ द्वारा होइंग–हैण्ड हो की मदद से
- मोवर द्वारा–बंजर भूमि, चारागाह, सड़क के किनारें उगे खरपतवारों हेतु मोवर मशीन का प्रयोग
- जलमग्नता द्वारा खरपतवारों को दबाना
- आग से जलाना
- मृदा सौर्यीकरण–पारदर्शी प्लास्टिक (50 माइक्रॉन मोटी) का प्रयोग

खरपतवार नियंत्रण की सस्य/कृषिगत विधियाँ–

- खेत की ग्रीष्मकालीन जुताई
- फसल–चक्र अपनाना
- समय पर कृषण क्रियाऐं करना
- फसलों का चुनाव
- पलेवा करना
- बुवाई का समय, बुवाई की गहराई, बीज दर एवं अंतरण
- कार्वनिक खादों का प्रयोग
- भूमि सुधारकों का प्रयोग
- उपयुक्त उर्वरक प्रबन्धन
- खेत की तैयारी
- फसल की कटाई विधि

खरपतवार नियंत्रण की जैविक विधियाँ–

इस विधि का उद्देश्य खरपतवार के पौधों की संख्या को कीट पतंगों एवं ब्याधियों द्वारा इतना घटा देना जिससे उनका प्रभाव मुख्य फसल पर नगन्य हो जाये। हमारे देश में इस विधि का प्रयोग अभी प्रारम्भिक अवस्था में ही है, जबकि दुनिया के अन्य देशों में इस विधि का प्रचलन आम हो गया है। इस विधि में खरपतवारों को निम्न कारकों द्वारा नष्ट किया जाता है:

- लेन्टना केमेरा नामक खरपतवारों को क्रोसीडोसेमा लेन्टाना अथवा एग्रोमाइजा लेन्टानी नामक कीट के लार्वा के प्रयोग से नियंत्रित किया जा सकता है।
- गाजर घास को जाइगोग्रामा बाइकोलोराटा नामक कीट के लार्वा तथा प्रौढ़ कीट द्वारा नष्ट किया जा सकता है।
- कांस घास को घनी सनई लगाकर नियंत्रित किया जा सकता है।
- जलकुम्भी नामक खरपतवार को निकोटिआना नामक कीट द्वारा नष्ट कर नियंत्रित किया जा सकता है।
- चाइनीज ग्रास कार्प तथा सिल्वर कार्प नामक मछलियाँ जलीय खरपतवारों को खाकर नष्ट कर देती है।
- नागफनी खरपतवार को कैक्टोब्लास्टिस केक्टोरम नामक कीट के मोथ द्वारा नष्ट किया जा सकता है।

◆◆◆

रबी फसलों में समन्वित खरपतवार नियंत्रण

डा० बी०डी० सिंह
प्राध्यापक (सस्य विज्ञान), प्रसार शिक्षा निदेशालय
गो०ब० पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल : bdsingh5@gmail.com

रबी की प्रमुख फसलें उपराऊ अथवा असिंचित गेंहूँ, सिंचित गेहूँ, जौं, मसूर, मटर, लाही–सरसों, आलू इत्यादि हैं। इनमें से सिंचित गेंहूँ जो पर्वतीय क्षेत्र के घाटियों में उगायी जाती है को छोड़कर सभी फसलें वर्षाश्रित होती हैं। रबी की समस्त फसलें खरपतवार से प्रभावित होती हैं और खरपतवार की सघनता ज्यादा होने पर उपज में 30–35 प्रतिशत की कमी आ जाती है। खरपतवार की सघनता मुख्यतः नमी, खरपतवार की सघनता, वानस्पतिक विकास, उर्वरक की मात्रा आदि पर निर्भर करती है। सामान्य शब्दों में खरपतवार ऐसे अवांछनीय पौधे होते हैं जो बिना बुवाई किये फसल के साथ उग जाते हैं।

रबी फसलों के प्रमुख खरपतवार–

ये खरपतवार प्रारम्भिक अवस्था में फसल के साथ पोषक तत्व, नमी, प्रकाश, जगह आदि के लिए स्पर्धा रखते हैं। फलतः पौंध कमजोर, दाने कम और सिकुड़े रह जाते हैं। इसके अतिरिक्त समय पर खरपतवार न निकलना, रसायनों के अत्यधिक प्रयोग के कारण खरपतवार में रसायनों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता पैदा हो जाना, पर्वतीय क्षेत्र में खरपतवार को विलम्ब से यथा फरवरी– मार्च में पशुओं को खिलाने हेतु निकालना कुछ ऐसे प्रमुख कारण हैं जो पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।

क्र.सं	खरपतवार का प्रचलित नाम	वानस्पतिक नाम
	(अ) चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार	
1.	बथुआ/बेथुआ	*Chenopodium album*
2.	कृश्ण नील	*Anagallis arvensis*
3.	हिरनखुरी	*Convolvulus arvensis*
4.	एण्डुआ/एण्डु (पर्वतीय क्षेत्रों में ज्यादा)	*Ranunculus arvensis*
5.	तिपत्तिया/चिलमोड़ी/खट्टी–मीठी (पर्वतीय क्षेत्रों में ज्यादा)	*Oxalis latifolia*
6.	जंगली मटर	*Lathyrus aphaca*
7.	सफेद सेंजी	*Melilotus alba*
8.	पीली सेंजी	*Melilotus indica*
9.	अंकरी/मसूर चना/झनझनिया करी	*Vicia hirsuta*
10.	जंगली जलेबी	*Medicago denticulata*
11.	अंकरा	*Vicia sativa*
12.	जंगली गाजर/गजरी	*Fumaria parviflora*
	(ब) संकरी पत्ती/घास कुल वाले खरपतवार	
13.	गुल्ली–डण्डा/ गेहुँसा/गेहूँ का मामा	*Phalaris minor*
14.	जंगली जई	*Avena futua*
15.	पोआ घास	*Poa anua*
	(स) मोथा कुल वाले खरपतवार	
16.	मोथा	*Cyperus rotundus*

खरपतवारों के हानिकारक प्रभाव–

खरपतवारों को इनके विशेष गुणों के कारण फसलों का दुष्मन माना जाता है, जैसे इनके द्वारा बहुत अधिक संख्या में बीज पैदा करना– उदाहरण के रूप में गेहूँ के मामा घास के एक पौधे से 5–10 हजार बीज तैयार होते हैं, इनका अंकुरण फसल की तुलना में काफी शीघ्र हो जाता है, इनकी वानस्पतिक वृद्धि काफी तेज होती है, फलतः मृदा की सतह पर ये काफी स्थान घेरकर फसल के विकास को रोक देते हैं, अनियंत्रित खरपतवार खेत में अनेक प्रकार के कीट व रोग को जन्म देते हैं, कटाई–मड़ाई के समय खरपतवार के बीज फसल के बीज के साथ मिलकर फसल के गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं, इस तरह कृषक समझ सकते हैं कि ये कृषि के कितने बड़े शत्रु हैं।

खरपतवार नियंत्रण का समय–

प्रत्येक फसल की अवधि में एक ऐसी अवस्था आती है जब खरपतवार, पोषक तत्व, नमी, जगह, प्रकाश आदि के लिए प्रतिस्पर्धा रखते हुए फसल को सर्वाधिक क्षति पहुँचाते हैं, इस अवधि को ''क्रांतिक काल'' कहते हैं। अतः इस अवधि तक अवश्य खरपतवार नियंत्रित कर लिए जाय। इससे पूर्व या बाद में किया गया नियंत्रण बहुत प्रभावी नहीं रहता। भिन्न–भिन्न फसलों में यह अवधि भिन्न–भिन्न होती है। तथापि रबी फसलों में यह अवधि लगभग 25–40 दिन होती है। अतः उस समय तक खेत को खरपतवार मुक्त कर लेना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण की विधियाँ–

(1) कर्षण विधि– कर्षण क्रियाओं के अर्न्तगत फसल चक्र का अनुपालन, प्रमाणित बीज का प्रयोग करना चाहिए, अधपके टूटे–रोग ग्रसित बीज का बुवाई में प्रयोग नहीं करना चाहिए, फसलो की पंक्तियो में बुवाई करना चाहिए, इससे निराई–गुड़ाई, सिचाई उर्वरक एवं रसायन प्रयोग सुलभ हो जाता है। उर्वरकों का संतुलित प्रयोग और खासकर नत्रजन धारी उर्वरकों का ख़डी फसल में खरपतवार निकालने के पश्यात् प्रयोग करना चाहिए। इससे खरपतवार एवं फसल के मध्य पोषक तत्वों हेतु न्यूनतम संधर्श होगा। इसी तरह गोबर की खाद व केचुए की खाद को प्रोत्साहन दें, इससे पौध को सभी पोषक तत्व एक साथ प्राप्त होंगें तथा मृदा में जीवांश पदार्थ के मात्रा में भी वृद्धि होगी। खेत के मेड़ पर उग रही घासों को समय–समय पर काटते रहें इससे एक तो उनके बीज नहीं बन पायेंगें, दूसरे कीड़े–मकोड़ों को वहाँ षरण नहीं मिलेगी।

फसल	खरपतवार से होने वाला नुकसान/ पैदावार में कमी (प्रतिशत)	फसल–खरपतवार प्रतिस्पर्धा की क्रांतिक अवस्थाऐं (बुवाई के बाद दिनों में)
गेहूँ एवं जौ	20–40	30–60
चना	15–30	30–60
मटर	20–30	30–45
मसूर	20–35	30–60
सरसों	15–30	15–40
आलू	30–60	20–40

रबी की फसलों में खरपतवार से होने वाली हानि (प्रतिशत) एवं प्रतिस्पर्धा की क्रांतिक अवस्थायें–

(2) यांत्रिक विधि– इसके अर्न्तगत गर्मी में खेत की मिट्टी पलट हल से गहरी जुताई करें। इससे अनेक खरपतवार की जड़ें, कीड़े– मकोड़े उनके अण्डे–बच्चे व रोगाणु मृदा की सतह पर आकर गर्मी से सूख जाते हैं। फसल की सिंचाई के बाद बहुत सारे खरपतवार उग आते हैं जिन्हें खुरपी, कुटले या हस्तचालित हो से निकाल देना चाहिए। इनके प्रयोग से एक बहुत बड़ा लाभ यह होता है कि मृदा से नमी उड़ने के रास्ते जिन्हें रन्ध्राकोश कहते हैं, उनके मुँह या तो टूट जाते हैं या बन्द हो जाते हैं, जो वाष्पीकरण रोकने में मददगार होते हैं, फलतः खेत में लम्बे समय तक नमी संचित रहती है। इसी तरह पहली निराई के 15–25 दिन बाद एक और निराई कर फसल को खरपतवार मुक्त किया जा सकता है। खरपतवारों में दाना बनने से पूर्व निकाल देना चाहिए, अन्यथा यही खरपतवार अगले वर्ष हजारों की संख्या में नये पौध को जन्म देगा।

(3) रासायनिक विधि– यह विधि सबसे सरल, सुलभ और प्रचालित है। इस विधि से कम समय में बहुत अधिक क्षेत्रफल में रसायन छिड़क कर खरपतवार नियंत्रण संभव हो सकता है। इसके क्रियान्वयन में कई बातों का ध्यान रखना आवश्यक होता है जैसे–रसायन के डिब्बे पर लिखी प्रयोग विधि, प्रयोग में लायी जाने

रबी फसलों में प्रयोग होने वाले प्रमुख शाकनाशियों की संस्तुत मात्रा एवं छिड़काव का समय–

शाकनाशी	व्यावसायिक नाम	फसल	सक्रिय तत्व मात्रा (ग्रा./है.)	उत्पाद मात्रा (ग्रा./है.)	छिड़काव का समय	नियंत्रण होने वाले खरपतवार
बुवाई पूर्व भूमि में प्रयोग होने वाले खरपतवारनाशी						
फ्लूक्लोरेलीन . 45 ई.सी	बासालीन	चना, मसूर, सूर्यमुखी, मटर, सरसों, तोरिया, अलसी एवं नाइजर	750–1000	1500–2000	बुवाई से पूर्व भूमि में मिलायें	अधिकतर चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार
खरपतवार जमाव से पूर्व प्रयोग होने वाले खरपतवारनाशी						
पेन्डीमेथिलीन 30 ई.सी.	स्टाम्प, स्वल, एवं पेडीस्टार, धानुटॉप, टाटा पेनिडा	गेहूँ, आलू, मटर, चना, मसूर, सूर्यमुखी, सरसों, तोरिया, आदि	750–1000	2500–3330	बुवाई के बाद या 2–3 दिन के अन्दर नमी की अवस्था में	एक वर्षीय घासकुल चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार
पेन्डीमेथिलीन 30 ई.सी.	स्टाम्प, स्वल, पेडीस्टार, धानुटॉप, टाटा पेनिडा	फूल गोभी, बन्द गोभी, बैगन, टमाटर, मिर्च, चुकन्दर, मूली, गाजर, प्याज एवं लहसुन	1000	3330	रोपाई से पूर्व अथवा बुवाई के बाद या 2–3 दिन के अन्दर नमी की अवस्था में	एक वर्षीय घासकुल एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार
मैट्रीब्यूजिन 70 डब्ल्यू.पी.	सैंकोर, टाटामेट्री, वैरियर	गेहूँ	175–210	250–300	बुवाई के 3 दिन के अन्दर	गुल्ली–डंडा एवं अधिकतर चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार
मैट्रीब्यूजिन 70 डब्ल्यू.पी.	सैंकोर, टाटामेट्री, वैरियर	आलू, टमाटर	525	750	रोपाई से पूर्व	गुल्ली–डंडा एवं अधिकतर चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार
मैट्रीब्यूजिन 70 डब्ल्यू.पी.	सैंकोर, टाटामेट्री, वैरियर	गन्ना	1000–1500	2000–3000	बुवाई के 3 दिन के अन्दर	गुल्ली–डंडा एवं अधिकतर चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार
एट्राजिन 50 डब्ल्यू.पी.	एट्राटाप	गन्ना	1500	2100	बुवाई के 3 दिन के अन्दर	
आक्सॉडायजोन 25 ई.सी.	रॉनस्टार	मिर्च, प्याज एवं लहसुन	500–750	2000–3000	रोपाई से पूर्व अथवा 2–3 दिन के अन्दर	एक वर्षीय घासकुल एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार
आक्सीफ्लोरफैन 23.5 ई.सी.	गोल, जरगॉन, ऑक्सीगोल्ड	मटर, चना, मसूर	100–125	425–532	बुवाई के 0–3 दिन के अन्दर	चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार
खरपतवार जमाव के बाद प्रयोग होने वाले खरपतवारनाशी						
फिनाक्साप्रोप पी. इथाइल 10 ई.सी.	प्यूमा सुपर	गेहूँ	100–120	1000–1200	बुवाई के 30–40 दिन बाद	गुल्ली–डंडा व जंगली जई
मेटसल्फ्यूरॉन मिथाइल 20 डब्ल्यू.पी.	आलग्रिप, हुक, मेटसी	गेहूँ	4.0	20	बुवाई के 30–40 दिन बाद	चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार

क्लोडिनाफॉप 15 डब्ल्यू.पी.	टापिक, झटका	गेहूँ	60	400	बोआई के 30–40 दिन बाद	एक वर्षीय घासकुल के खरपतवार
सल्फोसलफ्यूरॉन 75 डब्ल्यू.पी.	लीडर, सफल, फतेह	गेहूँ	25	33.3	बोआई के 30–40 दिन बाद	विशेषकर गेहुँसा व बथुवा, सफेद सेंजी, कृष्णनील
मीजोसल्फ्यूरॉन मिथाईल 3%	एटलांटिस	गेहूँ	12+2.4	400	बोआई के 25–30 दिन बाद	चौड़ी पत्ती एवं घासकुल के
आइडोसल्फ्यूरॉन मिथाईल 0.6% डब्ल्यू.जी.						खरपतवार हेतु विशेष कारगर
सल्फोसल्फ्यूरॉन 75%+मेटसल्फ्यूरॉन मिथाइल 5% डब्ल्यू.जी.	टोटल, ब्रैकेट, टोपल, ट्विन, सटासट	गेहूँ	30+2.0	40	बोआई के 25–30 दिन बाद	चौड़ी पत्ती एवं घासकुल के खरपतवार
क्लोडिनाफॉप 15.30% + मेटसल्फ्यूरॉन मिथाइल 1.0% डब्ल्यू.पी.	वेस्टा, संदेश	गेहूँ	60+4	400	बोआई के 30–40 दिन बाद	चौड़ी पत्ती एवं घासकुल के खरपतवार हेतु विशेष कारगर
फिनॉक्साप्रॉप पी. ईथाइल 7.7% + मैट्रीब्यूजिन 13.6%	एकार्ड प्लस	गेहूँ	100+175	1250	बोआई के 30–40 दिन बाद	चौड़ी पत्ती एवं घासकुल के खरपतवार

वाली सावधानियाँ, प्रयोग की अन्तिम तिथि अवश्य देखें। रसायन की सदैव संस्तुत मात्रा का प्रयोग करें। रसायन छिड़काव के समय मृदा में पर्याप्त नमी रसायन की मारक क्षमता को बढ़ायेगी। छिड़काव यंत्र में सदैव समान दाब बनाये रखना चाहिए, जिससे पूरे खेत में रसायन का समान वितरण हो। खरपतवार नाशी मुख्यतः प्रकाश संष्लेशण एवं पर्णहरित निर्माण में व्यवधान पैदा कर अथवा कोषिकाओं में वृद्धि को प्रभावित कर खरपतवार नष्ट करते हैं। वर्तमान में अनेक ऐसे शाकनाशी है जो सभी तरह के खरपतवार नियंत्रण में प्रभावी भूमिका निभा सकते हैं।

(4) जैविक विधि– इस विधि में खरपतवार को नष्ट करने के लिए इनके प्राकृतिक शत्रुओं जैसे कीड़े–मकोड़े, जीवाणु, फंजाई,रोगाणु का प्रयोग किया जाता है। इनके प्रयोग का सर्वाधिक लाभ यह होता है कि रसायन की तरह ये मृदा और पर्यावरण को दूषित नहीं करते, प्रतिरोध की क्षमता नहीं रहती और सूक्ष्म जीवाणुओं की सामान्य कार्यक्षमता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यद्यपि यह विधि अभी शोध केन्द्रों में परीक्षण के दौर में है और आशा है शीघ्र इसका व्यापक प्रचार–प्रसार होगा और इसका लाभ कृषकों को मिलेगा।

(5) समन्वित खरपतवार प्रबन्धन– जैसा कि हम सभी भिज्ञ हैं कि फसलों की पैदावार बढ़ाने हेतु पिछले दो दशक से खेतों में अंधाधुंध रसायन डाले गये, जिनका दुष्परिणाम यह है कि आज खेत बंजर और पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। अतः इसके समन्वित विकल्प के रूप में वैज्ञानिक समन्वित खरपतवार प्रबन्धन पर बल दे रहे हैं, जिसमें खरपतवार नियंत्रण की दो या दो से अधिक विधियों का समन्वित रूप से प्रयोग किया जाता है जो सस्ती होने के साथ–साथ मृदा और पर्यावरण को भी प्रदूषित नहीं करता। इसमें रसायन के साथ– साथ यांत्रिक, कर्षण विधि को समन्वित तरीके से प्रयोग की सिफारिश की जाती है।

अन्त में, यदि किसान भाई इस तकनीक का प्रयोग कर खरपतवार नियंत्रण करेंगे तो खेत से ज्यादा पैदावार मिलेगा जो अन्ततः उनके आर्थिक स्तर को बढ़ाएगा और उनके समृद्धि का नया द्वार खुलेगा।

◆◆◆

संरक्षित खेती

डा० पी०के० सिंह
प्राध्यापक (सिंचाई एवं जल निकास अभियन्त्रण)
गो० ब० पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल : singhpk67@gmail.com

संरक्षित खेती से अभिप्राय उस फसल उत्पान तकनीकी से है जिसके अंतर्गत पौधों के आस–पास का सूक्ष्म वातावरण पौधों के आवश्यकतानुसार आंषिक/पूर्ण रूप से नियंत्रित किया जाता है। कृषि तकनीकी में अन्य विधाओं में प्रगति के साथ संरक्षित खेती संबन्धित विभिन्न तकनीकों का विकास स्थान विशेष की जलवायु के अनुसार किया गया है। उदाहरण के तौर पर पाली हरित गृह सह वर्षा गृह उत्तर–पूर्वी एवं उत्तरी भारत के पर्वतीय क्षेत्रों में अधिक प्रचलित एवं उपयुक्त संरक्षित खेती तकनीक है। हरित गृह (ग्रीन हाउस) घरनुमा ढॉचे पर निर्मित विभिन्न आकार की संरचना होती है, जिसको 200 माइक्रान मोटाई वाली परावैगनी किरणों से अवरोधी पारदर्शी प्लास्टिक चादर, 5–8 मिमी मोटी पाली कारवोनेट पट्टी या शीशा से ढका होती है। पारदर्शी प्लास्टिक चादर से ढकी हरित गृह को पाली हरित गृह (पाली हाउस) कहा जाता है। इसी प्रकार पाली कार्वोनेट एवं शीशे से बनी हरित गृह भी कहा जाता है। हरित गृह में प्रयुक्त आवरण लगभग 43 प्रतिशत प्रकार को परावर्तित करता है तथा प्रकाश संश्लेषण क्रिया में सक्रिय सूर्य की किरणों (400–700 नैनो मी.) को प्रवेष करने देता है।

संरक्षित खेती से लाभ–

- **गुणवत्तायुक्त फसल उत्पादन**– इस तकनीकी से प्राप्त उत्पादन की गुणवत्ता उच्च कोटि की होती है। उच्च कोटि की गुणवत्ता से तात्पर्य है फल के आकार, वजन, टी.एस.एस. रंग एवं बनावट में सुधार से है।
- **अधिक उत्पादकता**– संरक्षित खेती से प्रति इकाई क्षेत्रफल से उत्पादन तो अधिक मिलता ही है साथ ही बेमौसमी फसलों से कृषक को पर्याप्त आय होती है।
- **बेमौसमी फसल उत्पादन**– उत्तरी भारत के मैदानी एवं विशेषकर पर्वतीय क्षेत्रों में अक्टूबर से फरवरी तक षीतलहर, कुहरा, ठण्डी व वर्फीली हवायें, वर्फ गिरना आदि के कारण तापक्रम बहुत नीचे गिर जाता है जिससे इन महीनों में मूल्यवान सब्जियों एवं फूलों को खुले आकाष के नीचे उगाना सम्भव नहीं होता है। लेकिन पाली हाउस एवं छोटी सुरंग (लो टनल) के अन्तर्गत शिमला मिर्च, टमाटर, खीरा आदि सब्जियां एवं व्यवसायिक फूलों को बेमौसम उगाकर अधिक से अधिक लाभ अर्जित किया जा सकता है। संरक्षित खेती से प्राप्त फल–फूल व सब्जियां उत्तम गुणवत्तायुक्त होती हैं। इसी प्रकार गर्मी एवं वर्षा के मौसम मे हरी धनियां, पालक एवं अन्य पत्तेदार सब्जियों को पाली हाउस में उगाकर भी आय में वृद्धि के साथ संरक्षित ढ़ाचों का वर्षभर उपयोग किया जा सकता है और पाली हाउस को आर्थिक दृष्टिकोण से और अधिक लाभकारी बनाया जा सकता है।
- **कीट एवं व्याधियों पर नियंत्रण**– प्रायः यह देखा गया है कि संरक्षित खेती के अंतर्गत कीटों एवं व्याधियों का प्रकोप खुले वातावरण की तुलना में कम होता है। उदाहरणार्थ– पाली हाउस में कीट अवरोधी जाली लगा होने के कारण कीटों, कीट जनित व्याधियों को प्रकोप नही के बराबर होता है। प्लास्टिक पलवार के प्रयोग से बहुत से कीट–पतंगे प्लास्टिक की चमक एवं गर्मी से दूर भागते हैं। मृदा सौरीकरण के द्वारा अधिक तापमान एवं अधिक आर्दता सब्जी पौध उत्पान में व्याधियों का प्रकोप नही के बराबर होता है।संरक्षित खेती में सामान्यतया बूँद–बूँद सिंचाई का प्रयोग किया जाता है अतः नमी का समुचित प्रबन्धन के कारण भी बहुत सी व्याधियों पर स्वतः नियंत्रण हो जाता है। अतः संरक्षित खेती के अन्तर्गत पौध सुरक्षा

रसायनों पर होने वाले व्यय में कमी की जा सकती है।

- **अगेती उत्पादन**– सामान्यतया उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में टमाटर, मिर्च, शिमला मिर्च, बैगन, फूलगोभी, पत्तागोभी, गॉठगोभी, ब्राकली एवं अन्य सब्जियों को अक्टूबर–दिसम्बर में रोपाई करते हैं, जिसका फल एवं फूल जनवरी–फरवरी से मई–जून तक प्राप्त होती है। लेकिन यदि इन सब्जियों की पौध उत्पादन पाली हाउस/लोटनल में किया जाय तो फल–फूल का उत्पादन 1–2 महीने पहले संभव है, जिसके कारण बाजार में अधिक मूल्य प्राप्त किया जा सकता है। इसी के साथ पाली हाउस में उत्पादित सब्जियों एवं अन्य फसलों की अवधि भी ज्यादा हो जाती है, जिसके कारण उत्पादन भी अधिक मिलता है।
- **एकल/बहु फसलों का वर्ष भर उत्पादन**– चूॅकि संरक्षित वातावरण विशेषकर पाली हाउस में उगाई जाने वाली फसलों की अवधि अधिक होती है। अतः पाली हाउस में टमाटर, शिमला मिर्च आदि का वर्ष भर गुणवत्तायुक्त उत्पादन लिया जा सकता है।

संरक्षित खेती की तकनीकें–

सूक्ष्म सिंचाई मेड़ों पर खेती, पलवार, पौधों को सहारा देना, प्लास्टिक सुरंग, छायादार जाली, कीट अवरोधी जाली एवं हरित गृह (पाली हाउस, ग्लास हाउस, पाली कार्वोनेट हाउस आदि) के अंतर्गत फसल उत्पादन संरक्षित खेती की प्रमुख तकनीकें हैं। इन तकनीकों के अंतर्गत पौधों के आस–पास (चारों तरफ) का सूक्ष्म वातावरण फसलानुसार परिवर्तित किया जाता है जिससे अधिक एवं गुणवत्तायुक्त उत्पादन मुख्य अथवा बेमौसम में लिया जा सके।

पॉली हाउस–एक प्रमुख संरक्षित खेती की तकनीक–

पॉली हाउस का समुचित विकास एवं इनमें फसलोत्पादन भारत की कृषि नीति का एक महत्वपूर्ण अंग बनता जा रहा है। खाद्यान्न के मामले में देश भले ही स्वावलंबी हो चुका है, परन्तु बागवानी फसलों के उत्पादन और आवश्यकता में बहुत अन्तर है। इस अंतर को परम्परागत बागवानी द्वारा पाटने के लिए जितने कृषि योग्य क्षेत्र की आवश्यकता है उतना बढ़ती जनसंख्या के मददेनजर उपलब्ध होना असंभव है। ग्रीनहाउस तकनीक, उच्च उत्पादकता के आधार पर कम क्षेत्र से अधिक उत्पादन उपलब्ध करने में सक्षम है। यदि देश में वर्तमान सब्जी उत्पादन क्षेत्र मे से एक लाख हैक्टयेर मे ग्रीनहाउस तकनीक का उपयोग किया जाए तो सब्जियों की वार्षिक उपलब्धता एक करोड़ टन बढ़ जाने का अनुमान है। साथ ही कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक रोजगार का विकास होगा जिन्हे शिक्षित युवा वर्ग एवं महिलाये अपना सकती है। ढॉचे के लिए आमतौर पर जी. आई. पाईप या एंगिल आयरन का प्रयोग करते है। ऐसे ढॉचे मजबूत और टिकाऊ होते हैं। अस्थाई एवं कम लागत के तौर पर ये बांस के भी बनाये जा सकते है। इनका आकार 40 वर्गमीटर से 100 वर्गमीटर के बीच रखना सुाविधाजनक होता है। पॉली हाउस में 600–800 गेज की पराबैगनी प्रकाश प्रतिरोधी प्लास्टिक शीट लगाना उचित रहता है।

पॉली हाउस के भीतर का वातावरण बाहर के वातावरण से भिन्न रहता है। बिना किसी नियत्रण प्रणाली वाले पॉली हाउस (साधारण पॉली हाउस) के अन्दर का तापक्रम बाह्य तापक्रम से 5–10 डि.ग्री से. ग्रे. अधिक रहता है, जबकि पूर्ण रूप से नियंत्रण वाले हरित गृह में तापक्रम, नमी, प्रकाश आदि फसल की आवश्यकतानुसार निर्धारित किए जाते है। ऐसे पॉली हाउस की लागत खर्चा अधिक तथा रख–रखाव भी कठिन होता है। परन्तु इनमें मनचाही फसल किसी भी मौसम में उगाई जा सकती है। ढॉचे की बनावट के हिसाब से पॉली हाउस कई प्रकार के हाते है। जैसे गुम्बदाकार, गुफानुमा, रूपान्तरित गुफानुमा, झोपड़ी नुमा आदि। कृषक भाई ध्यान रखे कि भरपूर पैदावार लेने के लिए झोपड़ीनुमा या रूपान्तरित गुफा नुमा प्लास्टिक के पॉलीहाउस बनवाये। इस प्रकार के प्लास्टिक हाउस में फसलों को सहारा देने में उपर की तरफ सुविधानुसार जगह मिल जाती है, जबकि गुफानुमा (परगोला) में दोनो तरफ की दीवारो का घुमाव नीचे से शुरू होता है इसलिए किनारे से कुछ हटकर ही पौधे/बीज लगाये या बोये जा सकते हैं। इस प्रकार दीवारो के पास काफी जगह खाली बची रह जाती है। बड़े स्तर पर

फूलों, सब्जियों एवं अन्य नगदी फसलों के उत्पादन हेतु 500–1000 वर्ग मी0 के पाली हाउस बनाना लाभदायक रहता है।

पॉली हाउस का निर्माण करते समय ध्यान देने योग्य बातें–

- पॉली हाउस में प्रयोग होने वाला लोहा मजबूत व जंग अवरोधी होना आवश्यक है। ढाँचे के लिए आमतौर पर जी.आई. पाइप या एंगिल आयरन का प्रयोग करना उचित रहता है। जहाँ पर बाँस की उपलब्धता सस्ती एवं सुगम है वहाँ पर पॉली हाउस का ढाँचा बाँस का भी हो सकता हैं।
- पॉली हरित गृह के निर्माण हेतु ऐसे स्थान का चुनाव करना चाहिए, जो ऊँचाई पर हो, जिससे सुचारु रुप से जल निकास हो सके। साथ ही साथ दिन भर प्रकाश पॉली हरित गृह पर पड़े।
- एकल स्पान पॉली हाउस पूर्व–पष्चिम तथा बहु स्पान पॉली हाउस उत्तर–दक्षिण दिशा में होनी चाहिए।
- पॉलीएथीलीन की पन्नी (पॉली सीट) यू0वी0 स्टेब्लाइड (परा बैगनी प्रकाश प्रतिरोधी) व मजबूत होनी आवश्यक है।
- आमने सामने नेट लगी होनी चाहिए जिससे अन्दर हवा का संचार बना रहे।
- प्राकृतिक रूप से वातावरण नियंत्रित पॉली हरित गृह के छत में ऊपर पर्याप्त रोषनदालन होना आवश्यक है।
- पॉली सीट की मोटाई 200 माइक्रोन या 800 गेज या 150 जी.एस.एम., पारदर्शी होना आवश्यक है।
- पाली हरित गृह के छत का बहुत अच्छा ढाल होना आवश्यक है।
- पॉली हाउस की मध्य ऊँचाई 14–18 फीट तथा किनारे की उचाई 10–12 फीट तक होनी चाहिए। अधिक ऊँचे पॉली हाउस तेज हवा के प्रकोप से नष्ट हो जाते हैं तथा कम ऊँचाई वाले पॉली हाउस में उपयुक्त वातावरण नहीं बन पाता है।
- पॉली हाउस का आकार आर्थिक स्थिति व जमीन की उपलब्धता पर निर्भर करता है किन्तु कम से कम 100 वर्ग मीटर आकार का पॉली हाउस होना चाहिए।
- ढाँचे की बनावट के हिसाब से पॉली हाउस झोपड़ीनुमा या रूपान्तरित गुफा नुमा बनवाना खेती के लिए सुविधाजनक होता है।
- अधिक वर्षा वाले स्थानो में रेन सेल्टर का प्रयोग बेमौसमी सब्जी उत्पादन हेतु हो सकता है।

सिंचाई व्यवस्था–

- पॉली हाउस में सामान्यतया सूक्ष्म सिंचाई (सूक्ष्म फौव्वारा, ड्रिप तथा सूक्ष्म कुहासा अथवा मिस्ट प्रणाली का प्रयोग होता हैं।
- पॉली हाउस में सिंचाई हेतु ड्रिप लाइन प्रत्येक क्यारी में लगाना आवश्यक है। टपक नोजल की दूरी उगाई जाने वाली फसल पर निर्भर करती है।
- वायुमण्डलीय आर्द्रता बनाये रखने के लिए मिस्ट सिस्टम लगवाना भी अति आवश्यक है।
- सिंचाई करने के लिए 2.5 लीटर प्रति घन्टा वाली ड्रिप लाइन को 20 मिनट तक प्रतिदिन चलाना आवश्यक है। मौसम या भूमि की दशा के अनुसार सिचाई समय घटाया बढ़ाया भी जा सकता है।
- पौध रोपण के प्रारम्भ में 20 दिन तक मिस्ट विधि से ही सिंचाई करनी चाहिए इसके बाद ड्रिप विधि से करनी चाहिए तथा मिस्ट बन्द रखनी चाहिए।
- पॉली हाउस में फसलो में पानी में घुलनशील उर्वरकों का प्रयोग फर्टीगेशन द्वारा होना चाहिए।

पॉली हाउस से अधिक आय हेतु महत्वपूर्ण सुझाव–

- पॉली हाउस में खेती के लिए ट्रेनिंग अवश्य लेनी चाहिए चाहे वह थोड़े समय की ही क्यों न हो।
- बाजार व लागत को देखते हुए फसल का चुनाव करना चाहिए।
- सही फसल व प्रजाति का चुनाव करना चाहिए। सम्भव हो तो प्रतिरोधी किस्मों का चयन करें।
- पॉली हाउस के अन्दर पूरी जगह का प्रयोग करना चाहिए अर्थात थोड़ा भी स्थान खाली नहीं छोड़ना चाहिए।
- अगली फसल की बुवाई या रोपाई, बिना समय नष्ट किये ही कर देना चाहिए।
- वाह्य वातावरण की तुलना में पॉली हाउस के अन्दर कतार से कतार व पौधे से पौधे की दूरी कम रखनी चाहिए।
- बीमारी, हानिकारक कीड़ों या अन्य समस्या आने

पर बिना समय नष्ट किए तुरन्त समाधान करें।

- गर्मी के मौसम में भूमि का एक बार सौर्यीकरण अवश्य करें।
- एक ही फसल या एक ही परिवार की सब्जियों को लगातार या बार–बार नहीं उगाना चाहिए।
- सिंचाई की जितनी आवश्यकता हो उतने ही पानी का प्रयोग करें, बेहतर होगा यदि ड्रिप प्रणाली का सिंचाई हेतु प्रयोग किया जाय।
- पॉली हाउस के अन्दर आर्द्रता व तापमान, फसल के अनुसार रखना चाहिए।
- बिना किसी वजह के पॉली हाउस में प्रवेष नहीं करना चाहिए।
- ठंडी के समय में पॉली हाउस को दोपहर बाद 3 बजे बंद कर दें।
- हर साल वर्षा ऋतु के बाद पॉलीथीन की धुलाई अवश्य करें।
- कद्दू वर्गीय सब्जियों का उत्पादन लेते समय बहुत बारीक जाली का प्रयोग न करें तथा दिन के समय दरवाजों को खोल के रखें।
- पॉली हाउस में असिमित बढवार तथा लम्बे समय तक फलने वाली सब्जी की किस्मो का चुनाव करना चाहिए।
- पॉली हाउस में अच्छी किस्मो का सब्जी पौध उत्पादन आर्थिक दृष्टिकोण से सर्वोत्तम माना गया है।
- एक पॉलीहाउस में एक समय केवल एक ही सब्जी का उत्पादन करना चाहिये।

यह देखा गया है कि 500–1000 वर्ग मी0 के पॉली हाउस से एक आदमी को वर्ष भर रोजगार सम्भव हैं।

◆◆◆

मानव जीवन में पोषण वाटिका की उपयोगिता

डा० सुधा जुकारिया
सह0 निदेशक (गृह विज्ञान)
गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय–कृषि विज्ञान केन्द्र, ज्योलीकोट, नैनीताल
ई–मेल : sudhajukaria37@gmail.com

आजकल गांव के साथ–साथ शहरों में भी पोषण वाटिका का महत्व धीरे–धीरे बढ़ रहा है। इसका मुख्य उद्देश्य परिवार के सदस्यों की रूचि व आवश्यकता के अनुसार वर्षभर विभिन्न प्रकार की सब्जियाँ व फल उपलब्ध कराना है। पोषण वाटिका, हरी–भरी एवं आकर्शक होने के कारण परिवार के सदस्य अपना सुबह व शाम का समय यहॉ व्यतीत करना पसंद करते हैं, जो खाली समय में मन बहलाव का सुलभ साधन होता है। बड़े व बुजुर्गों के साथ पोषण वाटिका में काम करने से बच्चों के ज्ञान में वृद्धि होती है तथा उनकी कार्यक्षमता बनी रहती है। सुव्यवस्थित ढंग से बनाई गई पोषण वाटिका में पूरे वर्ष ताजी व शुद्ध सब्जियाँ उपलब्ध रहती है तथा अचानक आवश्यकता पड़ने पर या मेहमान आ जाने पर घर पर ही फल, सब्जियाँ उपलब्ध हो जाती है। पेड़–पौधे लगे होने के कारण घर के आस–पास हरियाली रहती है तथा वातावरण भी शुद्ध रहता है। पोषण वाटिका में इस बात का ध्यान रखा जाता है कि रसायनों का न्यूनतम प्रयोग किया जाय तथा प्रयोग किये गये रसायन अधिक जहरीले न हों।

पोषण वाटिका फल और सब्जियों से हमारा स्थाई नाता जोड़ती है, साथ ही इससे हमारे श्रम का सदुपयोग होता है एवं हम अपने घर मे प्रकृति का वास्तविक आनन्द उठा पाते हैं। घर के बुजुर्गो के लिए पोषण वाटिका वरदान है, क्योंकि इसके द्वारा उनके समय का सार्थक उपयोग होता है। घर के पास पोषण वाटिका निर्माण से आसपास का वातावरण स्वच्छ एवं सुन्दर बना रहता है। स्वस्थ एवं ताजी सब्जी फल उत्पादन के साथ–साथ आस–पास की स्वच्छता एवं रसोई की आवश्यकता दोनों को दृष्टि में रखकर महिलाएँ पोषण वाटिका में श्रम साधना करती हैं। फलस्वरूप स्वतः ही सृजनात्मक दृष्टि का विकास होने लगता है। शहरी क्षेत्रों मे बहु मंजिली इमारतों मे रहने वाले परिवार धरों की छत एवं बालकनी में बड़े आकार के 'ग्रो बैग' में मौसमी हरी सब्जियाँ एवं मौसमी फल उगा सकते है। ऐसा माना जाता है कि अगर हम दैनिक कार्यो के अलावा पोषण वाटिका में समय देते है तो मानसिक रूप से ताजेपन का अहसास होने के साथ ही शरीर को प्राकृतिक शक्ति भी मिलती है। पोषण वाटिका हेतु बडे शहरों में जहॉ भूमि की कमी है, वहॉ भी व्यक्ति अपनी रूचि के अनुसार छत पर पालीथीन बिछाकर मिट्टी की छोटी छोटी क्यारियाँ बनाकर सब्जियां पैदा कर सकते है। पोषण वाटिका की आकृति भूमि की उपलब्धता और परिवार के सदस्यों की संख्या आदि पर निर्भर होती है। पोषण वाटिका बनाते समय ध्यान देने योग्य मुख्य बिन्दु–

1. फलों के वृक्ष हेतु वाटिका के उत्तर मे स्थान बनाना चाहिए।
2. मौसमी सब्जियों हेतु वाटिका दक्षिण में हो तो उचित रहता है।
3. पोषण वाटिका की सुरक्षा हेतु चारों ओर मजबूत बाड़ होनी चाहिए। बाड़ का उपयोग लता वाली सब्जियाँ सेम, लोबिया, लौकी, खीरा आदि को चढाने मे प्रयोग किया जाना चाहिए।
4. दो क्यारियों के बीच की मेड़ो का उपयोग जड़वाली सब्जियों जैसे गाजर, मूली, शलजम, चुकन्दर आदि उगाने मे करना चाहिए।
5. वर्मी कम्पोस्ट के गड्ढे पोषण वाटिका के दोनों कोनों में बनाने चाहिए। उनके पास सेम लौकी करेला आदि सब्जियाँ उगा सकते है।
6. पोषण वाटिका में अलग अलग प्रजातियों की सब्जियाँ बोनी चाहिए ताकि वर्ष भर निरन्तर परिवार की आवश्यकतानुसार सब्जियाँ मिलती रहें। इसके लिए सब्जियों का फसल चक्र अपनाना चाहिए।
7. पोषण वाटिका में उगायी जाने वाली सब्जियाँ निम्न

है।

- हरे पत्ते वाली सब्जियाँ– पालक, पत्ता गोभी, मेथी, बथुवा, सलाद चौलाई आदि।
- दाल वाली सब्जियाँ– मटर, लोबिया, सेम आदि।
- कच्ची खायी जाने वाली सब्जियाँ मूली, गाजर आदि।
- सलाद बनाने वाली सब्जियाँ– खीरा, ब्रोकली तथा सलाद पत्ता आदि।
- अन्य सब्जियाँ– टमाटर, बैंगन, भिण्डी, फूलगोभी, कद्दूवर्गीय सब्जियाँ आदि।
- फल जैसे नीबू, पपीता, अमरूद, आम्रपाली आम, केला आदि।

सभी सब्जियां विटामिन व महत्वपूर्ण खनिज लवणों का भण्डार होती है। कन्द वाली सब्जियाँ जैसे आलू, शकरकन्द, शलजम आदि में कार्बोहाइडेट बहुत अधिक मात्रा में पाया जाता है। भोजन में इनका प्रयोग करने से शरीर को शक्ति मिलती है। हरी पत्तेदार व अन्य सब्जियाँ विटामिन एवं लौहं लवण के साथ–साथ कैल्शियम व फास्फोरस का भी अच्छा स्रोत है। ऑखों की ज्योति बनाये रखने, रक्त निर्माण, दॉतों व हड्डियों की मजबूती के लिये हरी सब्जियों का प्रयोग अति आवश्यक है। सभी सब्जियों में खाद्य रेषा काफी मात्रा में पाया जाता है जो कि पाचन शक्ति को ठीक रखने के लिए आवश्यक होता है तथा आंतो को कैंसर से बचाता है। सब्जियों का अधिक प्रयोग शरीर का वजन कम करने में सहायक होता है तथा रक्तचाप नियंत्रित रखता है।

फल व सब्जियाँ खनिज लवणों का मुख्य स्रोत है। हमारे शरीर के लिये आवश्यक खनिज लवणों के अधिकांश भाग की पूर्ति मुख्यतः फल सब्जियों से होती है। दैनिक आहार में फल एवं सब्जीयों के बिना संतुलित भोजन की कल्पना करना संभव नहीं है। एक वयस्क पुरुष को प्रतिदिन भोजन में 125 ग्राम हरी पत्तेदार, 75 ग्राम अन्य सब्जियाँ, 100 ग्राम कन्दमूल, 30 ग्राम फल तथा एक वयस्क स्त्री को क्रमशः 125 ग्राम, 75 ग्राम, 75 ग्राम, 30 ग्राम हरी पत्तेदार सब्जियाँ, अन्य सब्जियाँ, कन्दमूल व फल की आवश्यकता होती है। इस प्रकार एक वयस्क व्यक्ति को प्रतिदिन भोजन में लगभग 30 ग्राम फल तथा 300 ग्राम सब्जियों का प्रयोग करना चाहिए। यदि एक परिवार में पॉच सदस्य है तो उस परिवार को प्रतिदिन 1.50 किग्रा सब्जी एवं 150 ग्राम फल की आवश्यकता होती है एवं प्रतिवर्ष 5.50 कुन्तल सब्जियों की आवश्यकता होगी। एक नाली भूमि (200 वर्गमीटर) में वैज्ञानिक ढंग से तैयार की गई पोषण वाटिका से यह आवश्यकता भली भॉति पूरी की जा सकती है।

राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन की ओर से संचालित योजना के तहत पोषण वाटिका बनाकर समूह की महिलाएं अपना और परिवार के सदस्यों का भरण पोषण कर रहीं है। भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के अर्न्तगत पोषण वाटिका योजना शुरू की गई है। इसके तहत महिलाओं को अपने खेत या आंगन में पोषण वाटिका तैयार करना है। यह बगीचा इस तकनीक से बनाया जाता है कि इसमें एक साथ 10 अलग–अलग सब्जियाँ, फल आदि लगाये जा सकें। मुख्य उद्देश्य महिलाओं को पौष्टिक भोजन और संतुलित आहार उपलब्ध कराना है। पोषण वाटिका में महिलाओं को ऐसी सब्जियों को उगाने का प्रशिक्षण दिया जाता है, जिसमें वह अपने और परिवार की पोषण संबन्धित जरूरते पूरी कर सकें।

पोषण वाटिका से लाभ–

- घर के आस–पास खाली पड़ी जगह का उचित व आर्थिक उपयोग।
- परिवार को वर्षभर जहरीले रसायन रहित ताजी , पौष्टिक एवं स्वास्थ्यवर्धक सब्जियों की प्राप्ति।
- स्वयं उगाई गई पोषण वाटिका की सब्जियों का बाजार से खरीदी गई अच्छी से अच्छी सब्जी से अधिक स्वादिष्ट लगना।
- घरेलू ऊर्जा का उचित सदुपयोग।

◆◆◆

विभिन्न प्रसार कार्यक्रमों का टिकाऊ कृषि मे योगदान

डा० बी०डी० सिंह
प्राध्यापक (सस्य विज्ञान), प्रसार शिक्षा निदेशालय
गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल : bdsingh5@gmail.com

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद से वित्त पोषित कृषि विज्ञान केन्द्र, के.वी.के. के नाम से मशहूर, विज्ञान आधारित बुनियादी तौर की, कृषक उन्नयन के लिए कृषि विश्वविद्यालयों, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद तथा गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा संचालित अनूठा संस्थान है। ये केन्द्र विभिन्न शोध केन्द्रो से विकसित नवीनतम कृषि तकनीक को अपने प्रसार कार्यक्रमों के माध्यम से कृषकों तक ले जाती है। इस प्रकार यह शोध एवं कृषक के मध्य एक पुल की तरह कार्य करती है। देश का प्रथम कृषि विज्ञान केन्द्र वर्ष 1974 में पाण्डिचेरी में स्थापित होने के पश्चात् इसके द्वारा कृषि विकास एवं कृषि उत्पादकता में सराहनीय योगदान को देखते हुए सरकार ने देश के अन्य क्षेत्रों में भी के.वी.के. को स्थापित करने का निर्णय लिया। वर्तमान में देश में 700 से अधिक कृषि विज्ञान केन्द्र, कृषि विकास में सार्थक भूमिका निभा रहे है। इन केन्द्रों की लोकप्रियता को देखते हुए सरकार शेष जनपदों में भी नये कृषि विज्ञान केन्द्र खोलने को कृत संकल्प है। किसानों का वैज्ञानिकों से सीधे जुड़ाव एवं सरल बातचीत कुछ ऐसे कारक है जो कृषक के झिझक को दूर करता है और केन्द्र के प्रसार कार्यक्रमों से लाभान्वित होता है। किसी भी तकनीक के सफल होने का सीधा से सिद्वान्त होता है कि वह सिर्फ और सिर्फ तभी सफल होगा जब वह कृषक के आवश्यकतानुरूप होगा। इस सिद्वान्त का पालन करते हुए वैज्ञानिक कृषकों के साथ समूह चर्चा, द्वितीयक आकड़ों का अध्ययन, जनपद मे कृषि आधारित अधिकारियों से समन्वयन, पी.आर.ए. इत्यादि के आधार पर किसान की आवश्यकता और प्राथमिकताओं का पता करने के पश्चात् ही प्रसार कार्यक्रम प्रारम्भ करते है। इससे तकनीक अथवा कार्यक्रम के असफल होने की सम्भावना नगण्य हो जाती है। वैज्ञानिकों द्वारा गॉव में प्रसार कार्यक्रम प्रारम्भ करने से पूर्व बैंच मार्क सर्वे भी किया जाता है जिससे भविश्य में कार्य का मूल्यांकन हो सके। केन्द्र द्वारा कृषि के विकास हेतु अनेक अनूठे कार्यक्रम चलाये जाते है जिनका विवरण निम्नवत है। इन कार्यक्रमों से अनेक कृषक कृषि उत्पादकता में वृद्धि, उन्नत डेयरी, मूल्यवर्धन आदि का कार्य कर रहे है। परिणामस्वरूप् उन्नत खेती के क्षेत्रफल का विस्तार, किसानों द्वारा उन्नत कृषि यंत्र का क्रय, दुधारू गाय–बैल का क्रय, बच्चों की बेहतर शिक्षा, समाज में ऊॅचा स्थान व अलग पहचान बन रही है।

1. संकर धान अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन से भरपूर उपज

अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन– कृषि विज्ञान केन्द्र का सबसे प्रमुखतम् कार्यक्रम, जिसमें कृषि विश्वविद्यालयों एवं भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के संस्थानों द्वारा विकसित नवीनतम तकनीक को कृषक के खेत पर करके दिखलाया जाता है। इस कार्यक्रम में पूर्णतया सफल तकनीक ही प्रदर्षित की जाती है। अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन विभिन्न प्रकार के हो सकते हैं जैसे, उन्नत प्रजाति, उन्नत सब्जी, फल, फूल, उन्नत नस्ल के पशु, टपक एवं फव्वारा सिचांई तकनीक, जैव नियंत्रकों का प्रयोग इत्यादि।

प्रदर्शन संचालित करते समय निम्न बिन्दु ध्यान रखना चाहिए।

- नवीनतम विकसित तकनीक हो।
- कलस्टर में आयोजित हो।
- परिस्थिति के अनुसार 2–4 हैक्टेयर क्षेत्रफल में आयोजित हो।

- वैज्ञानिक और कृषक सीधे एवं दूसरे के सम्पर्क में रहें।
- पोषक तत्वों का खजाना, कम लागत वाली फसल–मडुवा (रागी) प्रसार कार्यकर्ता की मदद से प्रदर्शन से प्राप्त डाटा एवं फीड बैक का व्यापक प्रचार–प्रसार हो।
- प्रदर्शन के अन्तर्गत चयनित कृषकों को सिर्फ प्रमुख कृषि निवेश एवं प्रशिक्षण दिया जाने को प्रावधान है।

इस तकनीक के माध्यम से कृषकों से सीधे जुड़ा सकता है और नये तकनीक से होने वाले लाभ को देखते हुए काफी क्षेत्रफल विस्तार किया जा सकता है। कृषि विज्ञान केन्द्र, अल्मोड़ा द्वारा कराये जा रहे प्रथम पंक्ति प्रदर्शनों से यह देखा गया है कि नये तकनीक से कृषक को 40–70 प्रतिशत लाभ होता है।

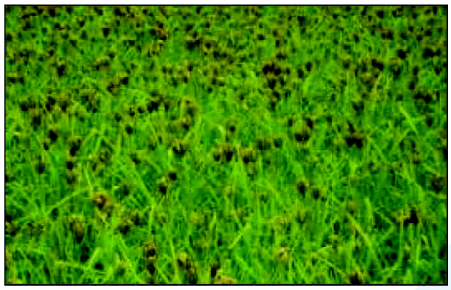

2. अनुकरणीय परीक्षण– किसी क्षेत्र विशेष में निरन्तर आ रही समस्या के निदान हेतु अनुकरणीय परीक्षण आयोजित किये जाते है। समान्य शब्दों में यह कृषक समस्या के निदान हेतु शोध होता है। कभी–कभी कोई विकसित तकनीक जो किसी क्षेत्र विशेष में कारगर होती है परन्तु नये क्षेत्र में वह प्रभावी नही होती है। ऐसे परिस्थिति में उस क्षेत्र में यह परीक्षण आयोजित कर तकनीक का आंकलन किया जाता है। परीक्षण तब आयोजित की जाती है जब:

- समस्या वृहद स्तर पर हो
- बड़ा क्षेत्र प्रभावित हो
- निरन्तर समस्या आ रही हो
- पैदावार में भारी कमी हो
- अनेक किसान प्रभावित हो रहे हो

3. स्वरोजगार परक प्रशिक्षण

प्रशिक्षण– किसानो के आवश्यकतानुरूप कई स्तर के प्रशिक्षण आयोजित कराये जाते हैं। जैसे– कृषकों हेतु केन्द्र पर तथा केन्द्र के बाहर/गॉव में, प्रसार कार्यकर्ताओं हेतु प्रशिक्षण एवं स्वरोजगार परक प्रशिक्षण। किसी फसल, सब्जी इत्यादि के पूरे उत्पादन तकनीक संबंधी प्रशिक्षण कृषकों के आवश्यकतानुसार केन्द्र अथवा गॉव में दिया जाता है, जिसमें फसल उगाने से पूर्व पूरा उत्पादन तकनीक यथा उन्नत बीज का प्रयोग, बीज शोधन, बुवाई की विधि, उर्वरक प्रबन्ध, जैव उर्वरक, जैव रसायन, खरपतवार एवं कीट–रोग प्रबन्धन इत्यादि की पूरी जानकारी दी जाती है। यह प्रशिक्षण 1–2 दिन की होती है। रेखीय विभागों के प्रसार अधिकारी/कार्यकर्ता जो सीधे कृषकों से जुड़े होते है उन्हें भी नवीनतम कृषि तकनीक की जानकारी दी जाती है, जिससे वो कृषक तक हस्तांरित कर सकें। इसको दृष्टिगत रखते हुए खरीफ एवं रबी फसल एवं सब्जी उत्पादन तकनीक, मृदा परीक्षण तथा मृदा स्वास्थ्य प्रबन्ध जैसे विषयों के बारे तके उन्हें विस्तृत जानकारी दी जाती है। स्वरोजगार परक प्रशिक्षण के अन्तर्गत ग्रामीण युवा जो किसी स्वरोजगार परक कार्यक्रम से जुड़ना चाहते है उन्हें 6–7 दिवसीय प्रशिक्षण देकर दक्ष किया जाता है। इसमें मुख्यतः बैमोसमी सब्जी उत्पादन, दलहन उत्पादन, मत्स्य पालन, मधुमख्खी पालन, बकरी पालन, डेयरी, जैम–जैली, अचार एवं विभिन्न फसलो/सब्जियों का मूल्यवर्धन जैसे विषय का समावेश होता है।

4. प्रदर्शन इकाईयाँ– जनपद के आवश्यकतानुरूप केन्द्र पर विभिन्न फसल, सब्जी, फल, जैविक कृषि, औषधीय एवं सगन्ध पौध, वर्मी कम्पोस्ट, मूल्यवर्धन इत्यादि की इकाईयॉ होती है, जो किसान के लिए मार्ग दर्षक एवं प्रेरक का कार्य करती है। उन्हें यह विश्वास होता है कि यह फसल/सब्जी यदि यहॉ हो सकती है तो मेरे खेत में भी हो सकती है। कृषक के लिए यह इकाईयॉ प्रसार के मूल मंत्र ''देखकर विश्वास करना'' जैसा होता है।

5. किसान मेला– कृषि विज्ञान केन्द्र का यह एक ऐसा महत्वपूर्ण कार्यक्रम होता है जिसमे कृषक प्रसार

कार्यकर्ता, अधिकारियों एवं वैज्ञानिकों का समागम होता है। इसे कृषि कुम्भ के नाम से भी जाना जाता है। इस कार्यक्रम में शोध संस्थानों द्वारा विकसित विभिन्न कृषि तकनीकों एवं विभिन्न रेखीय विभागों द्वारा चलाये जा रहे गतिविधियों को प्रदर्षित किया जाता है। कृषक के लिए यह कार्यक्रम एकल खिड़की व्यवस्था की तरह होता है जहॉ वह कृषि, उद्यान, पशुपालन, जैविक कृषि एवं कृषि के तमाम अन्य घटकों के बारे में सारी जानकारी प्राप्त करता है एवं केन्द्र द्वारा संचालित विभिन्न प्रदर्शन इकाईयों को देखता है, जिससे उसे विश्वास होता है कि ये सारे कृषि कार्यक्रम वह अपने प्रक्षेत्र पर भी कर सकता है। इस कार्यक्रम में विभिन्न बैंक, नाबार्ड के अधिकारी भी होते है जो किसानों को कृषि संबंधी ऋण, किसान क्रेडिट कार्ड, बीमा व बैक से जुड़ने पर होने वाले लाभ के बारे में बताते है। चुंकि किसान मेले में अलग–अलग क्षेत्रों से किसान आते है और आपस में विचार विमर्ष करते है अतः यह कार्यक्रम ''कृषक से कृषक प्रसार कार्यक्रम'' में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके अतिरिक्त कृषक मेले में उपस्थित विषय विशेषज्ञों से सीधे वार्ता कर अपनी कृषि की समस्याओं का त्वरित निदान कर पाता है। इस प्रकार के मेले कृषि विज्ञान केन्द्र, विभिन्न कृषि विश्वविद्यालयों , शोध संस्थान अथवा जनपद के कृषि/ उद्यान विभाग द्वारा खरीफ एवं रबी मौसम के पूर्व संचालित होता रहता है।

6. कृषि गोष्ठी– किसान मेले के अतिरिक्त यह केन्द्र समय–समय पर कृषि, उद्यान, पशुपालन अथवा कृषि से जुड़े अन्य ज्वलंत विषयों पर गोष्ठी का आयोजन कर कृषकों को जागरूक करता रहता है। ये गोष्ठी केन्द्र पर, विकासखण्ड अथवा गॉव में आवष्कतानुरूप सम्पादित किये जाते है। इसी प्रकार जनपद का कृषि एवं उद्यान विभाग भी जनपद/विकासखण्ड स्तरीय गोष्ठी का आयोजन करता है, जिससे कृषक अधिक से अधिक लाभान्वित हो सके। गोष्ठी समान्यतया ऐसे वातावरण में किया जाता है जहॉ अधिकारी, वैज्ञानिक, प्रसार कार्यकर्ता और कृषक एक साथ बैठते है जिससे कृषक बिना किसी झिझक के अपनी बात रख सके।

7. कृषक–वैज्ञानिक संवाद– केन्द्र द्वारा संचालित यह एक ऐसा कार्यक्रम होता है, जिसमें कृषक एवं वैज्ञानिक सीधे एक दूसरे के आमने–सामने बैठते है। संवाद कार्यक्रम मे किसान अपने अनुभव और वैज्ञानिक नवीनतम कृषि तकनीकों को परिचर्चा में शामिल करते हुए समस्या का समाधान करते है। प्रायः देखा जाता है कि इसमें प्रगतिशील कृषक कृषि संबंधी समस्याए जैसे कीट अथवा रोग ग्रसित पौध, बीज या अन्य सैम्पल लेकर आते है और वैज्ञानिकों से उसका निदान लेकर जाते है।

8. प्रक्षेत्र दिवस– किसी भी प्रदर्षित नवीनतम तकनीक के व्यापक प्रचार–प्रसार के उद्देश्य से प्रदर्शन स्थल पर कृषक, वैज्ञानिक, अधिकारी, प्रसार कार्यकर्ता इकठठा होकर तकनीक के बारे में एक दूसरे से चर्चा और लाभ के बारे में जानकारी देना प्रक्षेत्र दिवस का उद्देश्य है। यह कार्यक्रम सिर्फ और सिर्फ प्रदर्शन स्थान पर ही किया जाता है जहॉ नवीन तकनीक और ''कृषक पद्धति'' में हो रहे अन्तर को दिखलाया जाता है। उदाहरण के लिए, एक तरफ प्रदर्षित तकनीक यथा् उन्नत प्रजाति का धान संस्तुत उर्वरक के साथ लगा है एवं दूसरी तरफ कृषक की अपनी परम्परागत प्रजाति है तो प्रक्षेत्र दिवस के अवसर पर कृषक पद्धति की तुलना में प्रदर्षित तकनीक से होने वाले ज्यादा उपज एवं साथ–साथ अन्य लाभ भी बताये जाते है। इस अवसर को और प्रभावी बनाने हेतु फसल

संबंधी कोई विधि प्रदर्शन दिखलाना इसे और रोचक बना देता है।

9. जागरूकता कार्यक्रम– यह समस्या आधारित कार्यक्रम होता है जिसमे कृषकों को उसके प्रति जागरूक किया जाता है। यदि पर्वतीय क्षेत्रों की बात करें तो मृदा नमूने लेने की विधि एवं इससे लाभ, मृदा स्वास्थ्य प्रबधन, कुरमुला कीट की समस्या, गाजर घास *(पार्थीनियम),* चिलमोड़ी घास *(अग्जैलिस लैटिफोलिया)* इत्यादि कुछ ऐसे विषय है जिनको लेकर जागरूकता कार्यक्रम चलाया जाता है। यह कार्यक्रम अलग–अलग क्षेत्रों में 1–6 दिवसीय होता है।

10. कृषि महोत्सव– राज्य सरकारों द्वारा चलायी जा रही न्याय पंचायत स्तरीय कृषि महोत्सव जिसमें कृषि आधारित विभिन्न रेखीय विभाग अपने विभागीय गतिविधियों की नवीनतम जानकारी देने के साथ–साथ प्रदर्शनी लगाकर कृषकों को जागरूक करते है। यह कार्यक्रम भी खरीफ एवं रबी फसल बुवाई पूर्व पूरे राज्य मे एक साथ चलायी जाती है। इसमें कृषि, उद्यान विभाग बीजों का विक्रय एवं पशुपालन विभाग न्यूनतम दर पर दवाओं का वितरण करता हैं। इसमें मत्स्य, रेषम तथा सहकारिता विभाग भी सक्रिय भूमिका निभाता है। इस महोत्सव में केन्द्र के वैज्ञानिक प्रतिभाग कर गोष्ठी के माध्यम से उपस्थित कृषकों को नवीनतम कृषि तकनीक की जानकारी एवं कृषक द्वारा पूछे गये कृषि संबंधी समस्याओं का निराकरण करते है।

11. रेखीय विभाग द्वारा आयोजित जनपद/विकासखण्ड/ग्राम स्तरीय प्रशिक्षण– प्रायः कृषि एवं उद्यान विभाग द्वारा विभिन्न योजनायें जैसे आतमा, नमसा, बीज ग्राम, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन इत्यादि के अन्तर्गत कृषक प्रशिक्षण आयोजित किये जाते है। जिसमें वैज्ञानिकों द्वारा विषयानुसार अनेक जानकारियॉ दी जाती हैं। इस तरह के ग्रम स्तरीय कार्यक्रम का एक अन्य बड़ा लाभ यह होता है कि प्रशिक्षण अवधि में सीधे कृषक के खेत पर जाकर इनसे वार्ता होती है और यथोचित सामाधान बताया जाता है।

12. फार्म फील्ड स्कूल– फार्म फील्ड स्कूल आतमा का एक प्रमुख आकर्षण है, जिसमें सम्बन्धित विभाग द्वारा कृषि, उद्यान, पशुपालन, मत्स्य एवं रेषम के स्कूल चलाये जाते हैं। यह कार्यक्रम कृषक से कृषक प्रसार का अनूठा

कार्यक्रम है, जिसमें चयनित कृषक के खेत पर विभागीय कार्य चलाये जाते हैं। इससे अन्य कृषकों को यह भरोसा होता है कि यदि कोई प्रदर्शन गांव के ही एक खेत में हो सकता है तो उस कृषक के खेत में भी सफलतापूर्वक हो सकता है। यह स्कूल विकास खण्ड आदि विषय के स्तरीय होते हैं। कार्यक्रम के अन्तर्गत फसल, सब्जी, फल, कुक्कुट पालन के उन्नत तकनीकों का प्रदर्शन, वैज्ञानिक भ्रमण, अन्य कृषकों को तकनीकी जानकारी प्रदान की जाती है।

13. समाचार पत्र– तकनीक हस्तातरण का एक बहुत ही सरल और सुलभ माध्यम हैं। कृषि संबंधी कौन–कौन से कार्य कब–कब करने चाहिए इसके द्वारा आसानी से बतायी जाती है। वष्हद्व स्तर और बड़े क्षेत्र में यदि किसी कीट अथवा रोग का आक्रमण हो तो भी इसके द्वारा त्वरित निदान आसानी से बताया जाता है। इसके द्वारा वर्षा होने अथवा सूखा पड़ने की स्थिति में क्या–क्या सावधानियॉ बरतनी चाहिए बतायी जाती है।

14. आकाशवाणी/कृषि दर्शन/डी.डी किसान चैनल– क्षेत्र विशेष के आवश्यकता आधारित कृषि की तमाम नयी–नयी विधाये जैसे, बैमोसमी सब्जी उत्पादन, मशरूम, बेबी कार्न की खेती, केचुए की खाद, मत्स्य पालन, फसलोत्पादन, पॉली हाउस/पालीटनल तकनीक, मधुमक्खी पालन, डेयरी इत्यादि के बारे मे विषय विशेषज्ञों द्वारा विस्तृत जानकारी दी जाती है जिससे कृषक दक्ष होकर स्वरोजगार परक कार्यक्रम प्रारम्भ कर सकते है। इन रोजगार परक कार्यक्रमों हेतु सरकार द्वारा काफी अनुदान दिया जाता है जिसका भी लाभ लिया जा सकता है।

15. हेल्प लाईन/कृषि पोर्टल पोर्टल/वाट्स ऐप/इण्टर नेट– अनेक कृषि विज्ञान केन्द्र, कृषि विश्वविद्यालय, भारत सरकार के कृषि संबंधी शोध संस्थान द्वारा हेल्प लाइन चलाये जा रहे है, जहॉ से किसान

सीधे मोबाइल द्वारा विशेषज्ञों से वार्ता कर समस्या का समाधान प्राप्त कर रहे हैं। इस संबंध में भारत सरकार द्वारा संचालित ''किसान काल सेन्टर'' जिसका नम्बर 1800 180 1551 है कृषकों हेतु वरदान साबित हो रहा है। इसके अतिरिक्त अनेक कृषि पोर्टल एवं इण्टरनेट के माध्यम से भी नवीन जानकारी हासिल की जा सकती है। विभिन्न कृषि विज्ञान केन्द्र/कृषि विश्वविद्यालय द्वारा संचालित ''कृषि सूचना प्रौद्योगिकी केन्द्र'' से भी अनेकों अनेक कृषक लाभान्वित हो रहे है।

16. स्वयं सेवी संस्थाओं के माध्यम से तकनीक हस्तान्तरण– जनपद में कृषि के उत्थान हेतु अनेक स्वंय सेवी संस्थाओं के सदस्य जो ग्रामीण अथवा गॉव से सीधे जुड़े होते है को कृषि के नवीनतम तकनीक के बारे में प्रशिक्षण के माध्यम से दक्ष किया जाता है, जिससे वो गॉव तक नयी तकनीक को ले जाने में मददगार साबित हो। नाबार्ड एवं भिन्न–भिन्न स्वयं सेवी संस्थाओ द्वारा किसान क्लब/ कृषक मण्डल का गठन किया जाता है। इनको भी यह केन्द्र प्रशिक्षित कर कृषक से कृषक तकनीक हस्तान्तरण मे मदद करता है।

17. डायग्नोस्टिक सर्वे– धान, गेहूँ ,सोयाबीन, मडुवा, दलहन, सब्जियों इत्यादि में प्रति वर्ष लगने वाले कीट रोग की समस्या को दृष्टिगत रखते हुए सम्बन्धित विशेषज्ञ एवं अधिकारियों का दल भ्रमण पर निकलता है एवं कीट रोग की पहचान कर किसानों की समस्या का समाधान करता है। अधिक से अधिक किसानों को लाभान्वित करने हेतु समस्या, उसके लक्षण एवं निदान को स्थानीय समाचार पत्र में छपवाना बहुत कारगर होता है।

18. फोल्डर/प्रसार प्रपत्र– ये भी कृषि तकनीक के हस्तान्तरण के सषक्त माध्यम होते है। विभिन्न किसान मेले, गोष्ठी, इत्यादि के दौरान ये कृषकों को निशुल्क वितरित किये जाते है। कृषक अपनी सुविधानुसार इन्हें पढ़कर अपना ज्ञान वृद्धि करते है।

◆◆◆

उर्वरक नियंत्रण आदेश

डा० रमेश चन्द्र
प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (मृदा विज्ञान)
गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल : rc.pantnagar@gmail.com

रासायनिक उर्वरकों का उपयोग किसानों द्वारा किया जाता हैं। जो उर्वरकों के मानकों और गुणवत्ता का मूल्यांकन करने में सक्षम नहीं हैं। यदि उर्वरक वांछित मानक का नहीं हैं अर्थात उर्वरक में दिये गये मानक के अनुसार पोषक तत्व विद्यमान नहीं हैं तो इसके उपयोग से फसल को अपेक्षित लाभ नहीं होगा। परिणामस्वरूप उपज में कमी और किसाानों को आर्थिक क्षति होती है। अतः किसानों के हितों की रक्षा के लिए खुदरा स्तर पर रसायनिक उर्वरकों के विपणन को नियंत्रित करने के लिए विभिन्न देशों द्वारा नियम बनाये गए हैं। उर्वरक विपणन से सम्बंधित नियम स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप स्थापित किये जाते हैं। इस प्रकार नियम एक देश से दूसरे देश में भिन्न हो सकते हैं परन्तु नियमों को स्थापित किये जाने का प्राथमिक उद्देश्य एक ही होता हैं, अर्थात किसानो को विक्रय किये जाने वाले उर्वरकों की गुणवत्ता को सुनिश्चित करना। उर्वरकों की गुणवत्ता को सुनिश्चित करने के लिये उर्वरकों की लागत में कुछ वृद्धि होती हैं। उर्वरको में विद्यमान पोषक तत्वो की निश्चित प्रतिशत की गारंटी के लिए, नमूना लेने और विश्लेषणात्मक त्रुटियों का ध्यान रखते हुए निर्माताओं द्वारा उर्वरको में पोषक तत्वों की कुछ अधिशेष मात्रा प्रदान की जाती हैं। जिससें किसानों तक पहुॅचने तक उर्वरको की उचित एवं निर्धारित मानको के अनुसार गुणवत्ता बनी रहें।

भारत में उर्वरकों की बिक्री, वितरण और गुणवत्ता आवश्यक वस्तु अधिनियम के अर्न्तगत भारत सरकार द्वारा संस्थापित उर्वरक नियंत्रण आदेश 1957 द्वारा नियंत्रित होती हैं। इस आदेश के अनुसार उर्वरक आवश्यक वस्तु की श्रेणी में आते है। वर्तमान में लागू उर्वरक नियंत्रण आदेश (Fertilizer Control Order) 1985 पहले के आदेश के स्थान पर जारी किया गया हैं। समय–समय पर विकसित विभिन्न उर्वरको के मानको की स्थिति के अनुसार कई बार इस आदेश में संषोधन किया जा चुका है। उर्वरक नियंत्रण आदेश 1985 में भारत सरकार द्वारा 24 मार्च 2006 को संषोधन करते हुए जैव उर्वरकों एवं कार्बनिक खादों को भी सम्मिलित किया गया। इन सम्मिलित नये नियमों में 3 नवम्बर, 2009 को पुनः संषोधित करते हुए जैव उर्वरकों एवं कार्बनिक खादों के विशिष्ट विवरण एवं विश्लेषण विधियों को सम्मिलित किया गया।

उर्वरक नियंत्रण आदेश के मुख्य पाँच उद्देश्य–

1. यह उर्वरक को परिभाशित करता हैं और उन सामग्रियों की सूची प्रदान करता हैं जिन्हें देश में उर्वरक के रूप में लेबल और विक्रय किया जा सकता हैं।
2. यह उर्वरक के उत्पादन, आयात या बिक्री में रूचि रखने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए राज्य/केन्द्र सरकार से पंजीकरण प्राप्त करना अनिवार्य बनाता है।
3. ऐसा करने के लिए यह उर्वरक बैग पर प्रदान की जाने वाली विभिन्न जानकारी को निर्दिष्ट करता है और उर्वरक विक्रेता, डीलरों के पंजीकरण/प्राधिकरण, रिकॉर्ड रखने और उर्वरक निरीक्षकों और डीलरों के कर्तव्यों के लिए मानदंड निर्धारित करता हैं।
4. यह गुणवत्ता बनाए रखने के लिए प्रत्येक सूचीबद्व उर्वरक के भौतिक और रासायनिक गुणों को मात्रात्मक रूप में निर्दिश्ट करता हैं।
5. यह गुणवत्ता नियत्रंण के लिए उर्वरक के नमूने के संग्रह और विश्लेषण के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के लिए भी निर्देषित करता हैं।

उर्वरकों की महत्वपूर्ण विशिष्टतायें–

उर्वरको की विशिष्टताऐं वह आवश्यकताएं हैं, जिनके अनुसार उर्वरक को स्थानीय कानून के अनुसार

क्रेता एवं विक्रेता के बीच सहमति के अनुरूप अवश्य होना चाहिए। सामान्यतः सरकारी विनियमों की पूर्ति और उर्वरकों के विक्रय हेतु आवश्यकताओं के अनुसार मानक विनिर्देशों को उर्वरक बैग पर मुद्रित किया जाता है। इसमें उर्वरक ग्रेड, शुद्ध वजन, निर्माता या आयातक का नाम और कभी–कभी उत्पाद के बारे में अतिरिक्त जानकारी प्रदान किया जाना शामिल है। यह सभी उर्वरको के बारे में बुनियादी जानकारी हैं। परन्तु यह आदेश उर्वरक की संरचना एवं गुणवत्ता का विवरण प्रदान नहीं करता हैं। उर्वरक निर्माताओं द्वारा विक्रय किये बोरे पर नियमानुसार निम्नलिखित जानकारी दिया जाना आवश्यक हैं।

1. पोषक तत्वः प्रमुख पोषक तत्व (कुल N, P_2O_5 और K_2O), सल्फर और निर्माता द्वारा गारंटीकृत सूक्ष्म पोषक तत्व (प्रतिशत में न्यूनतम)।
2. नमी की मात्रा (बैग भरते समय अधिकतम प्रतिशत में)
3. उर्वरको में कणों के आकार का वितरण (छोटे और बड़े आकार के कणों का प्रतिशत)
4. उर्वरको का प्रकार (दानेदार या पाउडर)
5. उर्वरक की घुलनशीलता और उपलब्धता यथा फास्फेट की पानी में घुलनशीलता एवं अघुलनशील फॉस्फेट उर्वरकों की साइटेट घुलनशीलता)।
6. उर्वरक निर्माण हेतु प्रयोग किये जा रहे कंडीशनर का नाम और मात्रा, पैकेजिंग विवरण आदि।

उर्वरक गुणवत्ता नियंत्रण प्रक्रिया–

गुणवत्ता नियंत्रण एक प्रक्रिया या विभिन्न प्रक्रियाओं का समूह है, जिसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि निर्मित उर्वरक गुणवत्ता नियंत्रण हेतु परिभाशित मानदंडों का पालन करता है अर्थात नियामक एजेंसी या ग्राहक की आवश्यकताओं को पूरा करता हैं। उर्वरक गुणवत्ता मानकों को सरकार द्वारा लागू किया जाता है और गुणवत्ता मानकों का अनुपालन निर्माता द्वारा सुनिश्चित किया जाता हैं। उत्पादित उर्वरक की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए उर्वरक निर्माता उत्पादन के विभिन्न चरणों में उत्पादित उर्वरक/उर्वरकों की निगरानी करते हैं। इसकी पूर्ति के लिये कच्चे माल से लेकर तैयार उत्पादों का विभिन्न अवस्थाओं में भौतिक और रासायनिक परीक्षणों की एक श्रंष्खला के द्वारा किया जाता है जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि उत्पादित उर्वरक निर्धारित मानक विनिर्देशो को पूरा करते हैं। चूंकि उर्वरक उत्पादन सरकार द्वारा नियंत्रित किया जाता हैं, अतः उर्वरको में कुल नाइट्रोजन, फॉस्फेट और पोटाश की मात्रा, और रासायनिक संरचना को प्रभावित करने वाले अन्य तत्वों को निर्धारित करने के लिए नमूनों का समय–समय पर रसायनिक विश्लेषण कर परीक्षण किये जाते हैं। साथ ही कभी–कभी उर्वरक उत्पाद की विशिष्ट प्रकृति के आधार पर कई अन्य परीक्षण भी किए जाते हैं। गुणवत्ता नियंत्रण हेतु सामान्यतया निम्न प्रक्रिया अपनाई जाती है।

1. निर्धारित गुणवत्तायुक्त उर्वरक उत्पादन हेतु प्रक्रिया क्रय किये जाने वाले कच्चे माल के परीक्षण से ही आरम्भ हो जाती हैं। उर्वरको के रूप में अंतिम उत्पाद में निर्धारित पोषक तत्वों पर नियंत्रण हेतु कच्चे माल के गुणवत्ता की भौतिक एवं रसायनिक जॉच की जाती है। इसके लिये निर्माता द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाली सामग्री को स्वीकार करने एवं भंडारण से पहले सभी कच्चे माल का विश्लेषण निर्धारित विनिर्देशों के अनुरूप किया जाता हैं।
2. उर्वरक उत्पादन के लिये सामग्री के कण के आकार का भंडारण और दानेदार उर्वरक बनाने के लिये महत्तवपूर्ण भूमिका होती हैं। अतः इसका परीक्षण भी किया जाता हैं।
3. एन.पी.के मिश्रित उर्वरकों के उत्पादन के मामले में कंडिषर एवं अन्य सामग्री अति महत्वपूर्ण हैं। इस लिये इनका विश्लेषणात्मक परीक्षण कर निर्मित उर्वरको की गुणवत्ता का नियंत्रण किया जाता है।
4. उच्च गुणवत्ता वाले उर्वरकों के उत्पादन के लिए प्रयुक्त की जाने वाली सामग्री के नमूनो का रसायनिक विश्लेषण और भी महत्वपूर्ण हैं।

प्रायः उर्वरको में प्रयोग की जाने वाली सामग्री के रसायनिक विश्लेषण की प्रक्रिया काफी जटिल एवं समय लेने वाली होती हैं। क्योंकि उर्वरक निर्माण प्रक्रिया को बीच में रोकना तर्कसंगत नहीं है। अतः गुणवत्ता नियंत्रण के लिये प्रयोग की जाने वाली विश्लेषणात्मक विधिया तीव्र, सटीक और विश्वसनीय होनी चाहिये। जिससे जब भी आवश्यक हो समयबद्व रूप से विभिन्न प्रक्रिया मापदण्डो की जॉच की जा सके। उत्पादन के

पश्चात् पैंकिग से पूर्व पुनः निर्मित उर्वरक के प्रत्येक बैच का रसायनिक एवं भौतिक विश्लेषण किया जाता हैं। वर्तमान में उर्वरको की गुणवत्ता नियंत्रण के लिये देश में कुल 82 प्रयोगशालायें (4 केन्द्र सरकार एवं 78 राज्य सरकार की प्रयोगशालायें) विद्यमान हैं। जिनकी कुल 136 हजार उर्वरकों के नमूनो की वार्षिक विश्लेषण क्षमता हैं। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय उर्वरक गुणवत्ता नियंत्रण प्रयोगशाला एवं प्रशिक्षण संस्थान, फरीदाबाद (हरियाणा) में स्थित है, जो राज्य एवं केन्द्र सरकार की उर्वरक नियंत्रण प्रयोगशालाओं के कार्मिको को प्रशिक्षण प्रदान करता हैं।

◆◆◆

फसलों में जैविक कीट नियंत्रण

रवि प्रकाश मौर्य
सहायक प्राध्यापक (कीट विज्ञान)
गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल– rpmauryaento@gmail.com

अधिक उपज देने वाली किस्मों का आगमन तथा उन्नत फसल प्रबन्धन अपनाने से एक ओर जहाँ पैदावार में वृद्धि हुई है, वहीं कृषि पारिस्थितिकी तन्त्र में भौतिक, रासायनिक, जैविक एवं सस्य परिवर्तनों के कारण फसलों में तरह–तरह के कीट एवं बीमारियों के प्रकोप में भी वृद्धि हुई है। परिणामस्वरूप नवीन किस्मों के उपयोग के बावजूद किसानों को वांछित उत्पादन एवं लाभ प्राप्त नहीं हो पा रहा है। कीटों तथा बीमारियों की रोकथाम के लिए पिछले लगभग 50 वर्षों से पौध सुरक्षा रसायनों को मुख्य हथियार के रूप में अविवेकपूर्ण रूप से उपयोग किया जा रहा है। फलतः गौण कीटों का प्रमुख नाशक कीटों में परिवर्तन, कीटों में कीटनाशियों की बढ़ती प्रतिरोधकता, पर्यावरण एवं खाद्य श्रृंखला प्रदूषण, फसलों में उपस्थित प्राकृतिक शत्रु कीटों का विनाश इत्यादि प्रमुख समस्यायें उत्पन्न हो रही हैं। अतः कीट/रोग नियंत्रण हेतु ऐसे सुनियोजित प्रबन्ध कार्यक्रम अपनाने की आवश्यकता है जो पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य की दृष्टि से सुरक्षित और क्षति को नियंत्रित करने में सक्षम हो। इस समस्या के समाधान हेतु एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन की अवधारणा प्रस्तुत की गयी।

एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन के अन्तर्गत फसल के चुनाव से लेकर फसल की कटाई तथा तुड़ाई तक की सभी क्रियाओं का इस प्रकार समावेश किया जाता है जिससे कीटों/व्याधियों द्वारा फसल को होने वाली हानि को नियंत्रित किया जा सके। इस विधि में नाशीजीवों के नियंत्रण हेतु सस्य क्रियाओं, यांत्रिक विधियों, जैविक नियंत्रण, वानस्पतिक उत्पादों एवं नाशीजीव रसायनों के प्रयोग की संस्तुति दी जाती है। दूसरे शब्दों में नाशीजीव नियंत्रण की सभी विधियों का एकीकृत रूप से उपयोग करके नाशीजीवों की संख्या को आर्थिक क्षति स्तर के नीचे बनाये रखने को एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन कहते हैं।

एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन के अर्न्तगत जैविक नियंत्रण का महत्व–

- पर्यावरण का प्राकृतिक संतुलन बनाये रखने के लिए।
- रसायनों से होने वाले पर्यावरण प्रदूषण के नियंत्रण हेतु।
- कीटों में कीटनाशकों के प्रति बढ़ती प्रतिरोधात्मक क्षमता के नियंत्रण हेतु।
- कीटनाशकों के अनियोजित उपयोग से मित्र कीटों का विनाश एवं नये हानिकारक कीटों का उद्गम रोकने के लिए।
- कीटनाशकों से बढ़ती दुर्घटनाओं एवं स्वास्थ्य समस्याओं को रोकने के लिए।
- मित्र कीटों के संरक्षण और कृषकों में मित्र कीटों के प्रति जागरूकता बढ़ाने के लिए।
- कीटनाशकों का खाद्य पदार्थों, चारा और पानी आदि में बढ़ते अवशेष को रोकने के लिए।
- कीटनाशकों के अविवेक पूर्ण उपयोग को हतोत्साहित करने के लिए।
- उत्पादन लागत कम करने के लिए।
- विषरहित एवं टिकाऊ उत्पादन स्तर बनाये रखने के लिए।

जैविक नियंत्रण की विधियाँ–

इस विधि में नाशीजीवों का नियंत्रण दूसरे जीवों के प्रयोग के द्वारा किया जाता है जिन्हें जैविक नियंत्रक कहते हैं। जैविक नियंत्रक तीन प्रकार के होते हैं–

क. परजीवी– इस विधि में नाशीजीवों की रोकथाम के लिए इस प्रकार के जीवों का प्रयोग करते हैं जो अपना जीवन तथा पोषण एक ही नाशीजीव से

लेते हैं तथा इन परजीवियों का आकार नाशीजीवियों के बराबर या छोटा होता है। जैसे –

अ. अंड परजीवी–

ट्राइकोग्रामा किलोनिस, ट्राइकोग्रामा जेपोनिकम, टेलीनोमस प्रजाति, *टेट्रास्टिकस* प्रजाति एवं *ओइनोसर्टस पाइरिली*

प्रमुख अण्ड परजीवी ट्राईकोग्रामा–

यह गहरे रंग के अतिसूक्ष्म आकर के अंड परजीवी मित्र कीट है। मादा ततैया शत्रु कीट के अंडो पर अपने अंडे देती है और उन्हें ही अंडावस्था में ही नष्ट कर देती है। और शत्रु कीट के अंडे से इनका (मित्र कीट *ट्राईकोग्रामा*) वयस्क बाहर आता है जो पुनः शत्रु कीट में अपना अंडा देता है। अण्डे से व्यस्क कीट बनने की अवस्था में 10–14 दिन लगते है। *ट्राइकोग्रामा* एक अतिसूक्ष्म ततैया कीट है जो 'लेपीडोप्टेरा' कुल के लगभग 200 प्रकार के नुकसानदेह कीटों के अण्डों को खाकर जीवित रहता है। यह अण्ड परजीवी गन्ना, कपास, धान, सूरजमुखी, फसलों और सब्जियों में हानिकारक तना बेधक, फल बेधक व पत्ती मोड़क कीटों का जैविक विधि द्वारा नाश करता है। मादा *ट्राइकोग्रामा* ततैया फसलों को हानि पहुंचाने वाले कीड़ों के अण्डों में अपने अण्डे देती हैं। बाद में इन अण्डों के हिस्सों को खा जाती हैं। अन्त में इन अण्डों से वयस्क *ट्राइकोग्रामा* ततैया निकलता है। एक *ट्राइकोग्रामा* 100 अण्डों को मार देता है।

ट्राईकोग्रामा प्रजाति

ट्राइकोकार्ड कब व कितना लगायें

क्र. सं.	फसल व कीट का नाम	जैविक नियंत्रक कीट की मात्रा व प्रयोग
1.	गन्ने के बेधक कीटप्ररोह बेधक या अंकुर बेधक (*काइलो* इन्फसकेटेलस)	*ट्राइकोग्रामा किलोनिस* (गन्ना स्ट्रेन) 10000 प्रति है. की दर से बुवाई के 45 दिन बाद 10 दिन के अन्तराल पर 4–6 बार लगाएं
2.	चोटी बेधक, (*सिरपोफागा निवेला/ एक्सरप्टेलिस*)	*ट्राइकोग्रामा जापोनिकम* (गन्ना स्ट्रेन) 50000 प्रति है. की दर से 10 दिन के अन्तराल पर 4–6 बार लगाएं
3.	गन्ना वृंत बेधक (*काइलो ओरिसिलिस*) पोरी बेधक (*सकेरिफेफस इंडिकस*) गुरदासपुर बेधक *(एकीगजेना स्टेनीलस*)	*ट्राइकोग्रामा किलोनिस* (गन्ना स्ट्रेन) 50000 प्रति है. की दर से बुवाई के 90 दिन बाद 10 दिन के अन्तराल पर 10 बार लगाएं
4.	कपास बोलवर्म (*हेलीकेवर्पा आर्मीजेरा*) गुलाबी बोलवर्म (*पेक्टीनोफोरा गोसीपिल्ला*)	*ट्राइकोग्रामा किलोनिस* या *ट्राइकोग्रामा* एची (कपास स्ट्रेन) 150000 प्रति है. की दर से बुवाई के 45 दिन बाद एक सप्ताह के अन्तराल पर 6 बार लगाएं
5.	मक्का तना छेदक (*काइलो पार्टीलस*)	*ट्राइकोग्रामा कलोनिस* 75000 प्रति है. की दर से 45 दिन के बाद 10 दिन के अन्तराल पर 6 बार लगाएं
6.	टमाटर फल बेधक व चना फली बेधक (*हेलीकोवर्पा आर्मीजेरा*)	*ट्राइकोग्रामा ब्रसिलियेन्सिस* 50000 प्रति है. की दर से 45 दिन बाद एक सप्ताह के अन्तराल पर 6 बार लगाएं
7.	धान पीला तना बेधक (*सिर्पोफागा इन्र्सटुलस*)	*ट्राइकोग्रामा जापेनिकम* 50000 प्रति है. की दर से कीट दिखाइ देने पर या रोपाई के बाद 60 दिन के अन्तराल पर 6 बार लगाएं

ट्राइकोग्रामा कीट का प्रयोगशालाओं में वृहद उत्पादन किया जाता है। इसकी पूर्ति कार्ड के रूप में होती है, जिसमें संकलित अण्डे चिपके होते हैं। खेतों में जैसे ही नुकसानदेह कीटों के अण्डे दिखाई देते हैं तुरन्त ही कार्ड को छोटे–छोटे टुकड़ों में फाड़कर खेत के विभिन्न भागों में बीचों–बीच पत्तियों की निचली सतह पर या जोड़ पर लगा दिया जाता है।

ब. सूंड़ी या इल्ली परजीवी/सूंड़ी प्यूपी परजीवी– ये परजीवी 'लेपीडोप्टेरा' कुल के सूंड़ियों को ग्रसित करते हैं। ये परजीवी अपने अण्डे सूड़ियों के शरीर में दे देते हैं तद्पुरान्त परजीवी के लार्वा सूड़ियों को अन्दर से खाकर मार देते हैं। **उदाहरण–** *अपेनटेलिस* प्रजाति, *स्ट्रमिओपसिस* इन्फेरान्स, *कोटेसिया फ्लेविपिस, स्टेनोब्रेकोन नाइसीविली, आइसोटिमा जावेन्सिस, इपीरीकेनिया मेलानोल्यूका, ब्रेकोन* प्रजाति, *फिडियस* प्रजाति, *जैन्थोपिम्पला* प्रजाति, *केम्पोलेटिस* प्रजाति आदि।

ख. परभक्षी– ये जैविक नियंत्रक नाशीजीवों का भक्षण करते हैं। इनका आकार प्रायः नाशीजीवों से बड़ा होता है तथा ये अपने पूरे जीवन काल में एक से ज्यादा नाशीजीवों का भक्षण करते हैं। जैसे– मकड़ियॉं (स्पाइडर्स), लेडी बर्ड भृंग (कोक्सनिलिड), केराविड बीटल, *क्राइसोपर्ला स्प.,* सिरफिड फ्लाई, डेमसेल फ्लाई, चिऊरा मक्खी (ड्रेगन फ्लाई), टेकनिड मक्खी (टेकनिड फ्लाई), मेन्टिस स्प., मिरिड बग, वाटर बग, परभक्षी चिड़ियॉं (कौवा, कबूतर, मैना, बगुला, तीतर) आदि।

ड्रेगन फ्लाई

ग. रोगकारक या पैथोजन्स–

ये जैविक नियंत्रक नाशीजीवों में रोग उत्पन्न करके नाशीजीवों को नष्ट कर देते हैं। जैसे–

अ. फफूँदी– *ब्यूवेरिया बेसियाना, ट्राइकोडरमा, मेटारिजियम एनिसीपोली, वर्टीसिलियम लेक्नी, आर्थोबोट्रिस कोनाइडस, आर्थोबोट्रिस ओलिगोस्पोरा, पेसिलोमाईसिस लिलेसिनस* का मिश्रण।

ये जैविक कीटनाशक हैं, जो रोगकारक फफूँदी कीटों की विभिन्न प्रजातियों को संक्रमित करती है। कीटों की ज्यादातर अपरिपक्व अवस्थाएं इन रोगकारकों से प्रभावित होती हैं। फफूँदी रोगकारक वातावरण के प्रति ज्यादा संवेदनशील होते हैं। इनके पोषक जीव को संक्रमित करने हेतु अधिक आर्द्रता की आवश्यकता होती है। इसका प्रयोग भूमि उपचार तथा खड़ी फसलों पर छिड़काव के लिये किया जाता है। इसे जैविक खादों के साथ उपयोग में लाया जा सकता है। इन

केम्पोलेटिस प्रजाति

अपेनटेलिस प्रजाति

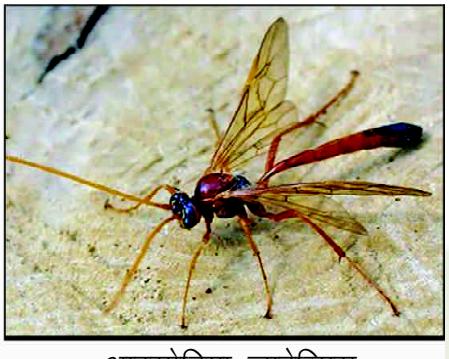

आइसोटिमा जावेन्सिस

ब्रेकोन प्रजाति

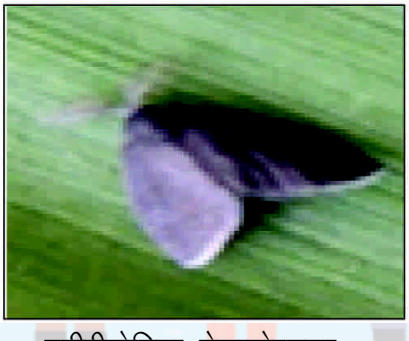

इपीरीकेनिया मेलानोल्यूका

स्ट्रमिओपसिस इन्फेरान्स

मेन्टिस स्प.

लेडी बर्ड बीटल

ड्रेगन फ्लाई

क्राइसोपर्ला स्प.

सिरफिड फ्लाई

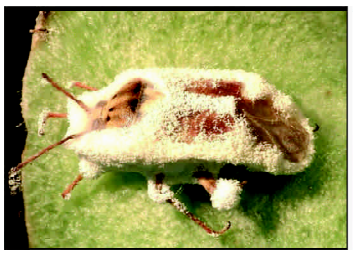

ब्यूवेरिया संक्रमित कीट

मेटारिजियम संक्रमित कीट

एन0पी0वी0 संक्रमित कीट

रोगकारकों के कवक तन्तु कीटों की बाहरी आवरण को बेधते हुए सीधे शरीर के अन्दर घुस जाते हैं तथा समस्त आन्तरिक अंगों में फैलकर रस चूसना प्रारम्भ कर देते हैं, जिससे कुछ समय पश्चात् ही कीट मर जाता है।

ब. जीवाणु (बैक्टीरिया)–

1. बैसिलस थ्युरिनजियेन्सिस– (बी०टी०)– यह एक ऐसा वैक्टीरियल पेस्टीसाइड है जो विभिन्न प्रकार पौधों के बेधक तथा काटने एवं चवर्णक मुखांग वाले कीटों की भोजन नली में पहुंचकर उनकी जैविक क्रियाओं को बन्द कर देता है। इस प्रकार कीट मर जाते है।

2. बैसिलस सीरियस– यह बैक्टीरिया वातावरण में पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है तथा कई प्रकार की सूड़ियों को नियंत्रित करता है।

स. विषाणु (वायरस)– न्यूक्लीयर पॉली हाईड्रोसिस वायरस–*हेलिकोवर्पा आर्मीजेरा* (एन0पी0वी0–*एच0ए0*), एन0पी0वी0 *स्पोडोप्टेरा लिटूरा,* ग्रेनूलोसस वायरस, न्यूक्लियर पालीहाईड्रोसिस वायरस (एन0पी0वी0)।

हरी सूँड़ी (*हेलिकोवर्पा*), जो वायरस ग्रसित होती हैं को पीसकर घोल तैयार किया जाता है। यह जैविक रसायन है जो कपास, चना, मटर, अरहर, सोयाबीन आदि दलहनी फसलों में लगने वाले हेलिकोवर्पा नामक सूंड़ियों को प्रभावी ढंग से नियंत्रण करता है। सूंड़ी जब पौधे की पत्ती या फलों को खाती है, विषाणु उसकी आँत में प्रवेष कर जाता है तथा उनके शरीर की क्रियाओं को बाधित कर देता है और सूंड़ियां मर जाती हैं।

◆◆◆

कृषि में रोग प्रबन्धन हेतु बायोएजेण्ट (जैव अभिकर्त्ता) का प्रयोग

डा० रूपाली शर्मा एवं **डा० भूपेश चन्द्र कबड़वाल**
जैव नियंत्रण प्रयोगशाला, गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्यिगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल : roopalibiocontrol@gmail.com

फसलों में कीटों, रोगों व खरपतवारों से अत्यधिक क्षति होने के कारण वर्तमान में किसान अनियंत्रित ढंग से कृषि रसायनों का प्रयोग कर रहे हैं। इसके वाबजूद कीट व्याधियों व खरपतवार की समस्याऐं निरन्तर बढ़ती जा रही हैं। अत्यधिक कृषि रसायनों का प्रयोग, कीट व्याधियों के नियंत्रण की गारण्टी नही है। बल्कि कृषि रसायनों के प्रयोग के अप्रत्यक्ष दुष्परिणाम हैं, जैसे कीट व्याधियों का कृषि रसायनों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता, प्राकृतिक शत्रुओं का विनाश, मनुष्य व पशुओं में स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या, पर्यावरण प्रदूषण इत्यादि है। इसके बावजूद अज्ञानतावश किसान कृषि रसायनों का प्रयोग करते हैं, जिससे उत्पादन लागत ज्यादा, उत्पादन कम तथा कीट व्याधियों की समस्या निरन्तर उपलब्ध भूमि पर उत्पादन बढ़ाने के लिए आवश्यकता होती है एक प्रभावशाली सुरक्षा प्रणाली की, जो निम्न लागत, टिकाऊ एवं पर्यावरण व मानव स्वास्थ्य के अनुकूल हो। पौधों में रोग नियन्त्रण हेतु जैव नियन्त्रण इस प्रकार की सुरक्षा प्रणाली का अंग है। जैव नियंत्रण वह प्रक्रिया है, जिसमें किसी जीव द्वारा उत्पन्न की गयी परिस्थितियों एवं प्रक्रियाओं के कारण दूसरे जीव (रोगजनक) का आंशिक अथवा पूर्णरूप से विनाश किया जाता है। रोगजनकों का विनाश करने वाले जीव जैव अभिकर्ता कहलाते है। इस प्रकार रोगजनक द्वारा उत्पन्न की जाने वाली बीमारियों की सघनता में कमी आती है। जैव नियंत्रक निम्नलिखित तीन महत्वपूर्ण क्रियाओं द्वारा रोगजनक जीवों का विनाश करते है

(अ) प्रतिस्पर्धा– वह क्रिया जिसमें वातावरण में उपलब्ध कुछ साधनों जैसे, स्थान, पोषक पदार्थ, जल, हवा, इत्यादि के उपयोग के लिए एक जीव दूसरे जीव पर हानिकारक प्रभाव डालते है, जिससे उनकी जनसंख्या नियंत्रण में रहती है।

(ब) प्रतिजैविकता– इस प्रक्रिया में जैव नियंत्रक विभिन्न प्रकार के प्रतिजैविक पदार्थ उत्पन्न करते है जो रोगकारकों के लिए विष का काम करते है अर्थात् इन विषैले पदार्थो के कारण रोगकारक नष्ट हो जाते है। प्रतिजैविकता मुख्यतः दो प्रकार के वाष्पशील व अवाष्पशील गौड उत्पादों के कारण होती है। जैव नियंत्रकों से अब तक विभिन्न प्रकार के जैविक पदार्थ अलग किये जा चुके है, जैसे *ट्राईकोडर्मा* प्रजाति से ट्राईकोडर्मिन, *ग्लायोक्लेडियम* से ग्लयोटाक्सिन, स्यूडोमोनास से फेनाजिन, थायोल्यूटोरिन, टोपोलिन, आदि।

(स) कवक परजीविता– इसमें जैव नियंत्रक रोगकारक जीव के शरीर से चिपककर उसकी बाहरी परत को कुछ प्रतिजैविक पदार्थो द्वारा गलाकर उसके अन्दर का सारा पदार्थ उपयोग कर लेता है जिससे रोगकारक जीव नष्ट हो जाता है। यह प्रक्रिया मुख्यतः कवकीय जैव नियंत्रकों द्वारा कार्यशील है लेकिन कुछ जीवाणुवीय जैव नियंत्रक भी इस प्रक्रिया को प्रदर्शित करते है।

पिछले दो दशकों में बहुत से जैव अभिकर्ता व्यावसायिक स्तर पर बाजार में उपलब्ध है। जिसमें रोग नियंत्रण के लिए *ट्राईकोडर्मा* एवं *स्यूडोमोनास* नामक जैव अभिकर्ता की प्रजातियां अधिक प्रचलित है। विश्वविद्यालय में '*ट्राईकोडर्मा हरजियानम* व '*स्यूडोमोनास फ्लोरीसेन्स*' नामक जैव अभिकर्त्ताओं का व्यापक स्तर पर उत्पादन कर कषकों को प्रदर्शन हेतु वितरित किया जा रहा है। इन जैव अभिकर्ता का प्रयोग कई तरीके से किया जाता है जैसेः

(1) बीज उपचार– बीज के लिए 8–10 ग्राम/किग्रा. बीज दर से उपचारित किया जाता है। यदि बीज पहले से

रासायनिक दवाओं द्वारा उपचारित हो तो उन्हें पानी से धोकर तब जैव अभिकर्ता द्वारा उपचारित करना चाहिए। बीजोपचार के लिए बीजों के ऊपर थोड़ा सा पानी छिड़क कर जैव अभिकर्ता पाउडर अच्छे से मिला देते है। इसके बाद बीज को थोड़ी देर छाया में रख देते है जिससे जैव अभिकर्ता का पर्त बीज के ऊपर लग जाए। तत्पश्चात् बीज की बुआई कर देते है।

(2) कन्द–प्रकन्द उपचार– अदरक, अरबी, आलू आदि के उपचार के लिए 8–10 ग्राम जैव अभिकर्ता प्रति लीटर पानी में घोलकर उसमें कन्दों को डुबोकर निकाल देते हैं और उन्हें छाया में सुखाने के बाद बुवाई कर देते है।

(3) पौध उपचार– रोपाई से पहले पौध को पौधशाला से उखाड़कर पौध की जड़ को जैव नियंत्रक के घोल से उपचारित करते हैं। जड़ को पानी से अच्छी तरह साफ करने के बाद 8–10 ग्राम/लीटर जैव अभिकर्ता का पानी में घोल बनाकर उसमें आधा घंटे तक जड़ डुबाने के पश्चात् पौधों की रोपाई करते है।

(4) खाद उपचार– सड़ी हुई गोबर की खाद या वर्मी कम्पोस्ट को खेत में डालने से पहले जैव अभिकर्ता द्वारा उपचारित किया जाता है। इसके लिए 250 से 500 ग्राम जैव अभिकर्ता को एक कुन्तल सड़ी हुई गोबर की खाद या केचुओं द्वारा तैयार की गयी वर्मीकम्पोस्ट में भली–भांति मिलाकर प्रयोग करना चाहिए। खाद बनाते समय गड्ढों में भी जैव अभिकर्ता को नियमित रूप से मिलाया जा सकता है। इससे कम्पोस्ट की उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है तथा जैव अभिकर्त्ता को कार्बनिक पदार्थ मिल जाने के कारण उसमे तेजी से पनपता है।

(5) छिड़काव– बीज एवं मृदा जनित रोगों के रोकथाम के अतिरिक्त जैव अभिकर्ता द्वारा हवा द्वारा फैलाई जाने वाली बीमारियों को भी रोका जा सकता है। इसके लिए 8–10 ग्राम/लीटर जैव अभिकर्ता पानी में मिलाकर घोल का छिड़काव समय–समय पर फसल में किया जाना चाहिए।

(6) सिंचाई– जैव अभिकर्ता का 8–10 ग्राम /लीटर घोल बनाकर सब्जियों की पौधशाला की समय–समय पर सिंचाई करनी चाहिए जिससे पौधे स्वस्थ रहेंगे एवं उनकी बढ़वार अच्छी रहेगी।

जैव अभिकर्त्ता के लाभ–

खेती में पारिस्थितिकी तन्त्र के अनुकूल रोग नियंत्रण प्रणाली को अपनाया जाना आवश्यक है वह प्रणाली ऐसी हो जो मिट्टी में रहने वाले सूक्ष्मजीवों की विविधता एवं जनसंख्या को प्रोत्साहित करें ताकि सूक्ष्मजीव फसलों के लिए लाभदायक तथा रोगजनकों के लिए हानिकारक हो। जैव अभिकर्ता द्वारा रोगों का नियंत्रण एक उपयुक्त विकल्प है जो जैविक कृषि के अनुरूप भी है। क्योंकि यह पूर्णरूप से जैविक प्रक्रिया है इसलिए जैव नियंत्रण से फसलों की सुरक्षा के साथ–साथ मिट्टी की गुणवत्ता एवं पर्यावरण को प्रदूषित होने से भी बचाया जा सकता है।

जैव अभिकर्त्ता के प्रयोग में सावधानियाँ–

1. जैव अभिकर्त्ता को प्रयोग करने से पहले उसकी उत्पादन एवं प्रयोग की अतिन्म तिथि अवश्य देख लें।
2. रोग उपचार हेतु प्रयोग किये जाने वाले कृषि रसायनों के साथ जैव अभिकर्त्ता का प्रयोग नहीं किया जा सकता।
3. जैव अभिकर्त्ता को कमरे के तापमान पर मात्र 4–6 माह तक छायादार स्थान पर भण्डारित किया जा सकता है।
4. मिट्टी में नमी तथा उचित कार्बनिक पदार्थ जैव अभिकर्त्ता की क्रियाशीलता को बढ़ाता है।
5. जैव अभिकर्त्ता, सूक्ष्मजीव के जीवित बीजाणु है अतः प्रयोग करते समय यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि प्रयोग के लिए संदर्भित उत्पाद में जैव अभिकर्त्ता के संस्तुत जीवित बीजाणु हैं।

◆◆◆

फसल एवं सब्जियों के प्रमुख रोग व उनका नियंत्रण

डा० राजेश प्रताप सिंह
प्राध्यापक (पादप रोग विज्ञान)
गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल : rpspatho@gmail.com

धान–

(अ) प्रध्वंस या झोंका रोग या ब्लास्ट (*पाइरिकुलेरि ग्रीजिया*)–

लक्षण– धान का बहुत ही महत्वपूर्ण बीमारी है, जिसके विशेष लक्षण पत्तियों पर दिखायी देते है, परन्तु इसका आक्रमण पर्णच्छिद, पुष्पक्रम, गाँठों तथा दानों की भूसी पर भी होता है, रोग का प्रकोप प्रारंभिक तीन पत्तों और गर्दन पर अधिक होता है, पहले पत्तियों पर छोटे नीले से जलसिक्त धब्बे बनते है, जो बढ़कर कई सेंटीमीटर लंबे, लगभग एक सेंटीमीटर चौड़े नाव के आकार के हो जाते हैं।

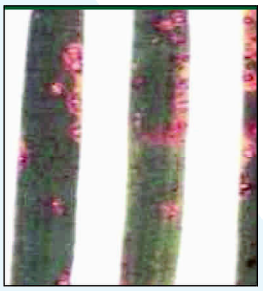

अनुकूल वातावरण में कई विक्षत धब्बे आपस में मिल जाते है जिसके फलस्वरूप पत्तियाँ झुलसकर सूख जाती है। पौधों में गाँठों पर कवक के आक्रमण से भूरे धब्बे बनते है, जो गाँठों को चारो ओर से घेर लेते है और बालिया वही से टूट जाती है। बालियों के निचले डंठल पर घूसर बादामी रंग के क्षत स्थल बनते है, जिसे ग्रीवा का प्रध्वंस/नेक राट कहते है। यदि रोगजनक का संक्रमण बालियों के निकलने के कुछ समय बाद होता है, तो दानें हल्के पड़ जाते है या पूर्णतः बाली खखड़ी हो जाती है।

नियंत्रण–

1. बीज का चयन रोग रहित पौधों से करना चाहिए और जहां तक सम्भव हो प्रमाणित बीज ही बोना चाहिए।
2. फसल की कटाई के बाद खेत से रोगी पौधे के अवशेषों को नष्ट कर देना चाहिए।
3. नाइट्रोजन की अधिक मात्रा देने से पौधे रोग ग्राही हो जाते है। अतः नाइट्रोजन की मात्रा थोड़ी–थोड़ी करके दो से तीन बार में देनी चाहिए।
4. बीज उपचार के लिए कार्बोन्डाजिम 50 डब्ल्यु. पी. को 4 ग्राम/कि. ग्रा. बीज की दर से उपचारित करके बोना चाहिए।

(ब) भूरी पर्ण चित्ती या ब्राउन स्पाउट (*बाइपोलोरिस ओराइजी*)–

लक्षण– पत्तियों तथा पर्णच्छिद पर छोटे–छोटे धब्बे बनते है, जो बिन्दु व गोल आकार के होते है। बिन्दु का मध्य भाग गहरे भूरे रंग के तथा किनारे हल्के भूरे होते है। इनका घेरा पीलापन लिए होता है। ये धब्बे दानों पर भी बनते है, जिससे चावल बदरंग हो जाते है, इस रोग से अत्यधिक ग्रसित दाने सिकुड़ जाते है और 50 प्रतिशत तक उपज में कमी हो सकती है।

नियंत्रण– इस रोग के प्रबंधन हेतु गर्मी में खेत की गहरी जुताई करनी चाहिए। फसल के अवशेषों को इकट्ठा करके जला देना चाहिए। बीज को कैपटान अथवा थीरम नामक दवा से 2.0 ग्राम प्रति किग्रा. बीज दर से उपचारित करना चाहिए। मैन्कोजेब 2 ग्राम प्रति ली. पानी अथवा डाइथेन एम.–45, 2.5 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी में घोलकर खड़ी फसल पर 10 से 15 दिनों के अन्तराल पर दो बार छिड़काव करना चाहिए।

(स) पर्णच्छिद अंगमारी या शीथ ब्लाइट (*राइजोक्टोनिया सोलेनाइ*)–

लक्षण– पौधे के पानी की सतह से उपर स्थित, पर्णच्छंद पर स्लेटी हरे रंग के घाव से पड़ जाते है, बाद में ये घाव आकार में बड़े होकर दूसरे घावों के साथ मिल

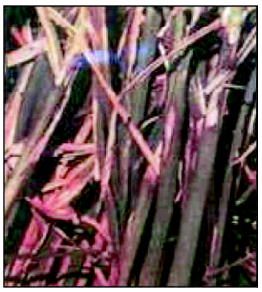

जाते है। यह लक्षण प्रायः पुष्पण की अवस्था तक साफ नहीं दिखाई देते है, कभी–कभी ये लक्षण पत्तियों के परल तथा पुष्प–गुच्छा पर भी प्रकट होते है, यह रोग पौधों के निचले भाग से उपरी भाग की ओर धीरे–धीरे फैलता है। जब उपरी तीन पर्णच्छिद इससे प्रभावित होते है तो फसल को अत्यधिक हानि होती है तथा बालियों में दाने कम बनते है।

नियंत्रण– इसके उपचार हेतु बेविस्टीन एक ग्राम प्रति किलो ग्राम बीज की दर से बीजोपचार के बाद ही बुआई करना चाहिए। बैली डामाइसी (शीथमार) एल को 2 मिली/ली. पानी की दर से 10–14 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करना चाहिए। कम नत्रजन एवं अधिक दूरी पर रोपाई से इसका आक्रमण एवं प्रसार रोका जा सकता है।

(द) बकानी रोग या धड़ सड़न (*जिबरेला फ्यूजीकुराई*)–

लक्षण– इस रोग से ग्रसित पौधशाला के पौधे पीले, पतले तथा अन्य स्वस्थ पौधे के विपरीत काफी लंबे हो जाते है, इस रोग से प्रभावित रोपित पौधे की गाँठों से अपस्थनिक जड़ें भी निकलती है, जो आवरण पत्ती से ढकी रहती है। रोग के उग्र अवस्था में पौधे सूखकर मर जाते है।

नियंत्रण– इस रोग के प्रबंधन के लिए सर्वप्रथम फफँदीनाशी कार्बेन्डाजिम 2 ग्राम प्रति किग्रा. बीज की दर से बीज उपचारण करे। हमेशा रोग रोधी किस्में लगायें एवं प्रमाणित बीज का प्रयोग करें।

(य) जीवाणु जनित पर्ण अंगमारी या बैक्टीरियल लीफ ब्लाइट (*जेन्थोमोनास ओराइजी*)–

लक्षण– इस बीमारी में भूरे रंग की पत्तियाँ बनती हैं, पत्ते के एक या दोनों किनारों पर पत्ती के शीर्ष भाग से शुरू होकर बनती है, ये लंबाई व चौड़ाई दोनों में बढ़ते हैं और पत्तियाँ सूख जाती है। यह रोग बाद में पर्णच्छंद तथा तने में बढ़कर पूरे पौधे को सुखा देता है।

नियंत्रण– नत्रजन को कम मात्रा में प्रयोग करना चाहिए एवं जल निकास का प्रबन्ध रखें। खड़ी फसल में यदि बीमारी अधिक हो तो 15 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लिन + 500 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड को 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

(र) आभासी कंडुआ या फॉल्स स्मट (*क्लेवीसंप्स ओराइजी*)–

लक्षण– इस बीमारी का आक्रमण पुष्पण के समय होता है। इसमें धान के दाने पीले से संतरे रंग और बाद में जैतूनी हरे रंग के गोलाकार दाने के रूप में परिवर्तित हो जाते है।

नियंत्रण– रोग रोधी किस्मों को ही लगाना चाहिए। स्वस्थ बीजों का चयन करना चाहिए। रोग की उग्र अवस्था में डायथेन एम 45 (0.25 प्रतिशत) या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव करना चाहिए।

(ल) खैरा रोग–

लक्षण– यह रोग जिंक की कमी से होता है, इस रोग से ग्रसित पौधे बौने रह जाते है, पत्तियाँ कत्थई रंग के हो जाते है, पौधे की जड़ें उथली हो जाती है, तथा कल्ले कम निकलते हैं।

नियंत्रण– इस रोग के निदान हेतु 5 किग्रा. जिंक सल्फेट और 2.5 किग्रा. बुझा हुआ चूना 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हे. की दर से 15 से 20 दिन के अंतराल पर छिड़काव करना चाहिए।

(व) राइस टुंग्रो विषाणु–

लक्षण– टुंग्रो वायरस से ग्रस्त पौधे छोटे रह जाते है तथा उनमें से बालियाँ भी कम निकलती है, प्रारंभ में संक्रमण होने पर पौधे छोटे रहते है, जबकि बाद में पौधे की लंबाई पर उतना प्रभाव नहीं पड़ता है। सक्रंमित पत्तियों का रंग भूरा–पीला हो जाता है तथा सिरों से प्रारंभ होकर नीचे की ओर बढ़ता है, इस रोग का प्रभाव पौधों के जड़ों पर भी पड़ता है, जिससे जड़ों की वृद्धि

रूक जाती है। रोगग्रस्त पौधों में बालियाँ देर से तथा छोटी निकलती है, जिनमें दाने या तो बनते ही नहीं और यदि बनते भी है तो बहुत हल्के होते है। दानों के उपर गहरे भूरे रंग के धब्बे बन जाते है।

नियंत्रण– प्रारम्भ में जैसे ही पौधों में रोग के लक्षण दिखलाई दें, उसी समय उन्हें उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए, यह रोग हरे फुंदकों द्वारा फैलता है, अतः कीटनाशी दवाओं जैसे फ्यूराडान द्वारा इन्हें मार देना चाहिए, जिससे रोग का विस्तार स्वतः ही रूक जाए। धान की कटाई के ठुंठों एवं खरपतवारों को नष्ट कर देना चाहिए।

गेहूँ–

(अ) अनावृत कण्डुआ (लूज स्मट)–

लक्षण– बालियों में दानों की जगह काले रंग के बीजाणु पिन्ड बन जाते हैं जो कि हवा के द्वारा पूरे खेत में फैल जाते हैं और बाद में केवल बालियों के डण्डे ही दिखते हैं।

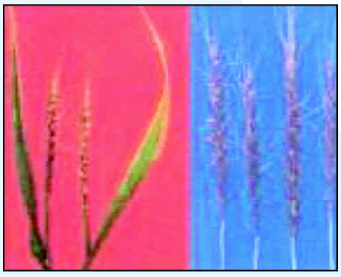

नियंत्रण– बीजोपचार–कार्बेन्डाजिम 50 डब्लू.पी. या टेबुकोनाजोल 2 डी.एस. से 2 ग्राम/ किग्रा. बीज की दर से बीजो को उपचारित कर बुवाई करें।

(ब) भूरा रतुआ (ब्राउन रस्ट)–

लक्षण– पत्तियों व पर्णच्छंदो पर भूरे रंग के छोटे–छोटे बीजाणु पिन्ड बनते हैं जो कि बालियों पर भी देखे जा सकते हैं तथा इनकी अधिकता की वजह से पौधे व बालियाँ सूख जाती हैं।

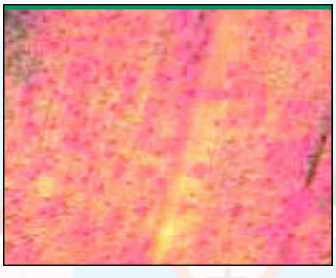

नियंत्रण– रोग के लक्षण दिखते ही मैन्कोजेब 45 प्रतिशत डब्लू पी. 3 ग्राम/लीटर पानी या प्रोपीकोनाजोल 25 ई. सी. का 1 मिली/लीटर की दर से छिड़काव करें। आवश्यकता पड़ने पर दूसरा छिड़काव, प्रथम छिड़काव 10–15 दिन के बाद करें।

मक्का–

(अ) पत्तियों की अंगमारी (लीफ ब्लाइट)–

लक्षण– पत्तियेां पर अनियमित आकार के भूरे रंग के धब्बे बनते हैं जो बाद में लम्बे हो जाते हैं और आपस में मिलकर पूरी पत्तियों पर फैल जाते हैं।

नियंत्रण– रोग के लक्षण प्रकट होते ही मैन्कोजेब 75 प्रतिशत डब्ल्यू.पी. 3 ग्राम/लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। आवश्यकता पड़ने पर दूसरा छिड़काव प्रथम छिड़काव 10–15 दिन के बाद करें।

(ब) मृदुरोमिल आसिता (डाउनी मिल्ड्यू)–

लक्षण– पत्तियों की निचली सतह पर सफेद रंग की फफूँदी जैसी वृद्धि दिखती है और ऊपरी सतह पर पीले से भूरे रंग के धब्बे बनते है तथा अंत में पत्तियां गिर जाती हैं।

नियंत्रण– मैटेलेक्जिल 35 डब्ल्यू.एस. 6 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से बीजोपचार करें। रोग के लक्षण प्रकट होते ही मैन्कोजेब 75 प्रतिशत डब्ल्यू.पी. या रीडोमिल एम.जेड. 72 प्रतिशत डब्ल्यू.पी. 3 ग्राम/लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार, दूसरा छिड़काव, प्रथम छिड़काव के 10–15 दिन के बाद करें।

मूंगफली–

(अ) पर्णचित्ती (टिक्का रोग)–

लक्षण– पत्तियों पर छोटे–छोटे भूरे से काले रंग के धब्बे बनते हैं, जिनका किनारा पीला रंग लिये होता है, जिनकी वजह से पत्तियां झुलस जाती हैं।

नियंत्रण– लक्षण प्रकट होते ही मैन्कोजेब 75 डब्ल्यू.पी. का 3 ग्राम/लीटर पानी की दर या कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यू. पी. 1 ग्राम प्रति लीटर पानी से प्रथम

पर्ण चित्ती

छिड़काव एवं आवश्यकतानुसार दूसरा छिड़काव, प्रथम छिड़काव के 10–15 दिन के बाद करें।

(ब) रतुआ (किट्ट)–

लक्षण– पत्तियों पर छोटे–छोटे भूरे रंग के धब्बे बनते हैं जो आपस में मिलकर पूरे पत्तियेां पर फैल जाते हैं। रोग की अधिकता के कारण पौधे मर जाते हैं।

नियंत्रण– रोग के लक्षण प्रकट होते ही मैन्कोजेब 45 प्रतिशत डब्ल्यू.पी. 3 ग्राम/लीटर पानी या प्रोपीकोनाजोल 25 ई.सी. का 1 मिली/लीटर की दर से छिड़काव करें। आवश्यकता पड़ने पर दूसरा छिड़काव प्रथम छिड़काव 10–15 दिन के बाद करें।

मटर–

चूर्णी फफूँदी (पाउडरी मिल्ड्यू)–

लक्षण– पत्तियों व फलियों पर सफेद पाउडर जैसे कवक की वृद्धि होती है, जिसके कारण पत्तियाँ व फलियाँ सूख जाती हैं।

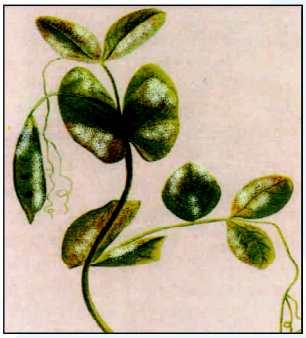

नियंत्रण– रोग के लक्षण दिखने पर प्रथम छिड़काव कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यू.पी. का 1 ग्राम प्रति लीटर या धुलनशील गंधक 3 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से करें तथा दूसरा छिड़काव, प्रथम छिड़काव के 10–15 दिन के पश्चात् करना चाहिए।

सब्जियाँ–

चूर्णी फफूंदी

(अ) आर्द्रपतन (पौध गलन)–

यह मुख्यतः पौधेशाला का रोग है। मिट्टी गीली रहने और अधिक तापक्रम होने से इस रोग का प्रकोप अधिक होता है। फलस्वरूप अधिक संख्या में नर्सरी में पौध मर जाती है। इसमें कभी–कभी बीज जमीन के भीतर ही सड़ जाता है। संक्रमण अधिक होने की दशा में नर्सरी में दुबारा बुवाई करनी पड़ जाती है। अंकुरण के बाद बाहर निकलने के पश्चात् जब पौधे 3–4 पत्तियों की अवस्था में होते है तो जमीन की सतह से झुककर गिर जाते हैं। जल निकास का उचित प्रबन्ध न होने तथा एक ही स्थान पर लगातार पौध उगाने से इस रोग का प्रकोप अधिक होता है।

(ब) म्लानि या उकठा रोग–

इस रोग का लक्षण पौधों में फूल आने या फल बनते समय प्रकट होता है। इसमें पौधा अचानक मुरझाने लगता है। ऐसा लगता है जैसे पानी की कमी हो गई हो और सिंचाई करने पर भी पौधा यथावत बना रहता है। यह रोग फफूँद एवं जीवाणु दोनो के द्वारा होता है तथा बीज एवं मिट्टी द्वारा फैलता है। संक्रमित पौधों को उखाड़ कर देखने पर जड़ ऊपर से स्वस्थ दिखाई पड़ती है। फफूँद जनित म्लानि में जड़ की ऊपरी परत छीलकर देखने पर भूरापन दिखाई देता है जबकि जीवाणु जनित म्लानि से ग्रसित पौध की जड़ का एक टुकड़ा काट कर साफ पानी में डालने पर पानी कुछ घंटे बाद गंदला हो जाता है।

(स) जड़ सड़न तथा स्तम्भ एवं मूल संधि सड़न–

दोनों बीमारियों के लक्षण एक जैसे ही होते है। पौधे मुरझाये से लगते है तथा इनकी पत्तियों में हरापन कम होता जाता है। प्रभावित पौधों को हल्के से खींचने पर पूरा पौधा उखड़ कर ऊपर आ जाता है या जमीन की सतह से टूट जाता है। जड़ सड़न में जड़ काली पड़ जाती है तथा अधिक संक्रमण की स्थिति में पूरी जड़ ही सड़ जाती है। स्तम्भ एवं मूल संधि सड़न रोग में जड़ एवं तना को जोड़ने वाला हिस्सा (कालर) जो कि मिट्टी की सतह से एक से दो इंच के नीचे होता है वहाँ पर चारों तरफ फफोला पड़ जाता है तथा उसका रंग बदरंग हो जाता है। बाद की अवस्था में पौधा जमीन की सतह से टूट भी सकता है। कभी–कभी दोनों बीमारियों के लक्षण एक साथ भी दिखायी देते है और ऐसी स्थिति में बीमारी की तीव्रता अधिक होती है।

(द) मूल ग्रन्थि रोग–

यह रोग सूत्रकृमि (निमेटोड) द्वारा फैलता है। रोग से ग्रसित पौधों की बढवार रूक जाती है। पौधे छोटे रह जाते हैं तथा उनकी पत्तियॉ पीली पड़ जाती हैं। फूल एवं फल नहीं लगते है और यदि लगते भी हैं तो बहुत कम तथा फल छोटे रह जाते है। यदि प्रभावित

प्रमुख फफूँद, जीवाणु एवं विषाणु जनित बीजों के रोग

सब्जियाँ	रोग का नाम	रोगकारक की जगह
बैंगन	फोमोप्सिस झुलसा	आन्तिरिक
टमाटर	अगेती झुलसा जीवाणु झुलसा टी॰एम॰वी॰/सी॰एम॰वी॰ सेप्टोरिया पर्ण चित्ती फ्यूजेरियम उकठा	आन्तिरिक एवं बाहय आन्तिरिक एवं बाहय आन्तिरिक एवं बाहय आन्तिरिक आन्तिरिक एवं बाहय
मिर्च	एन्थ्राक्नोज	आन्तिरिक
गोभी वर्गीय सब्जियाँ	अल्टरनेरिया झुलसा ब्लैक लेग जीवाणु काला सड़न मृदुलरोमिल आसिता	आन्तिरिक आन्तिरिक एवं बाहय आन्तिरिक एवं बाहय बाहय
प्याज	अल्टरनेरिया झुलसा	आन्तिरिक एवं बाहय
गाजर	अल्टरनेरिया झुलसा	आन्तिरिक एवं बाहय

पौधों को उखाड़ कर देखें तो उनकी जड़ों में गॉठें मिलती हैं। गाठें सख्त होती हैं तथा इनका आकार छोटा या बड़ा हो सकता है। इस रोग का गहन प्रकोप होने पर पूरी जड़ ही फूल कर मोटी तथा विकृत हो जाती है। जड़ों द्वारा पानी एवं आवश्यक पोषक तत्वों का अवषोशण न हो पाने के कारण पौधे छोटे रह जाते है।

(य) पत्ती धब्बा एवं झुलसा रोग–

पॉलीहाऊस के भीतर अपेक्षाकृत अधिक तापमान एवं नमी होने के कारण फफूँदियों द्वारा होने वाले पत्ती धब्बा एवं झुलसा रोग का प्रकोप होता है। यदि समय रहते इन रोगों का नियन्त्रण न किया जाय तो कम समय में ही अधिकांश पौधे रोगग्रस्त हो जाते है। प्रारम्भ में पत्तियों पर विभिन्न रंग रूप के छोटे एवं अनियमित आकार के धब्बे बनते हैं। ये धब्बे विकसित होकर बड़े हो जाते हैं तथा अनुकूल वातावरण मिलने पर आपस में एक दूसरे से मिलकर पत्ती के अधिकांश हिस्से को ग्रसित कर लेते हैं, फलस्वरूप पत्ती झुलस जाती है। ये धब्बे तने एवं फलों पर भी बनते है। रोग की उग्र अवस्था में फल सड़ जाते हैं।

प्रमुख सब्जियों का जैव अभिकर्ताओं से बीज उपचार

फसल	श्रोग	जैव रसायन एवं संस्तुत मात्रा
मिर्च	एन्थ्राक्नोज, आर्द्रगलन, उकठा	ट्राइकोडर्मा विरडी 5 ग्राम / किग्रा बीज ट्राइकोडर्मा प्रजाति 5 ग्राम / किग्रा बीज
मटर	जड़ सड़न	बैसेलस सबटिलिस या स्यूडोमोनास फ्लोरोसेन्स 10 ग्राम / किग्रा बीज
टमाटर	मृदा जनित रोग (आर्द्रगलन, उकठा), अगेती झुलसा	ट्राइकोडर्मा विरडी 5 ग्राम / किग्रा बीज स्यूडोमोनास फ्लोरोसेन्स 10 ग्राम / किग्रा बीज
गोभी, मूली, पत्तागोभी	मृदा जनित रोग	ट्राइकोडर्मा विरडी 5 ग्राम / किग्रा बीज

प्रमुख सब्जियों का फफूदनाशक रसायन से बीज उपचार

सब्जियां	रोग का नाम	फफूँदनाशक	मात्रा (ग्राम/किग्रा. बीज)	उपचार की विधि
टमाटर/बैंगन/मिर्च	आर्द्रपतन, उकठा, जड़ सड़न, श्यामवरण	थाइरम/कैप्टान /काबेन्डाजिम	2.0 ग्राम 1.5 ग्राम	सूखा सूखा
आलू	झुलसा रोग व अन्य फंफूदजनित रोग	मैन्कोजेब/ काबेन्डाजिम	2.5 ग्राम/लीटर पानी 2.0 ग्राम/लीटर पानी	स्लेरी स्लेरी
मटर	जीवाणु पत्ती एवं फली अंगमारी	थाइरम/कैप्टान	2.5 ग्राम	गीला
गोभी वर्गीय सब्जियां	आर्द्रपतन, जड़ सड़न, तना विगलन	थाइरम	2.0 ग्राम	सूखा
अदरक और हल्दी	तना विगलन, जड़ सड़न	थाइरम/कैप्टान	2.5 ग्राम/लीटर पानी	स्लेरी

सब्जियों में सुनियोजित प्रबंन्धन के लिये नीति–

(अ) जैव नियंत्रण–

जैव नियंत्रण सुनियोजित नाशीजीव प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण तरीका है, जिसमे सूक्ष्म जीवों जैसे फफूंद जीवाणु एवं विषाणु आदि तथा कुछ लाभकारी कीटों की सहायता से पौधों को क्षति पहुंचाने वाले कीटों व बीमारियों को नष्ट किया जाता है उदाहरणतः ट्राइकोडर्मा हर्जयानम मृदा जनित रोगों के नियंत्रण में सहायक है तथा बेसिलस थुरिंजेनेसिस बैंगन के फल एवं तनाछेदक के लिये प्रयोग किया जाता है। जैव नियंत्रण निम्नलिखित विधियों द्वारा किया जाता है।

जैव अभिकर्ता का प्रयोग–

रोगजनकों का विनाश करने वाले सूक्ष्म जीवों को जैव अभिकर्ता कहते हैं। जैव अभिकर्ता द्वारा रोगों का नियंत्रण एक उपयुक्त विकल्प है जो जैविक कृषि के अनुरूप है क्योंकि यह पूर्ण रूप से जैविक प्रक्रिया है इसलिए जैवनियंत्रण से फसलों की सुरक्षा के साथ साथ मिट्टी की गुणवत्ता एवं पर्यावरण को प्रदूषित होने से भी बचाया जा सकता है। पिछले दो दशक से बहुत से जैव अभिकर्ता व्यावसायिक स्तर पर बाजार में उपलब्ध हैं। जिस में रोगनियंत्रण के लिये ट्राइकोडर्मा एवं सियूडोमोनास जैव अभिकर्ता अधिक प्रचलित है। जैव अभिकर्ता का प्रयोग कई तरीकों से किया जाता है जैसेः

1. बीज उपचार–

बीजों को 8–10 ग्राम/किग्रा. बीज की दर से उपचरित किया जाता है। बीजोपचार के लिये बीजों के ऊपर थोड़ा सा पानी छिड़कर संस्तुत दर के आधार पर जैव अभिकर्ता पाउडर ठीक से मिला देते हैं। जिससे बीज के ऊपर एक परत चढ़ जाये। इसके बाद बीज को थोड़ी देर छाया में रख देते हैं जिससे बीज के ऊपर लगी जैव अभिकर्ता की परत सूख जाये। तत्पश्चात् बीज की बुवाई कर देते हैं।

2. खाद उपचार–

सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट को पौधशाला में उपयोग से पूर्व जैव अभिकर्ता से उपचरित किया जाता है। इसके लिए 500 ग्राम जैव अभिकर्ता को एक कुन्तल सड़ी हुई खाद में भलीभांति मिलाकर प्रयोग करना चाहिए। खाद बनाते समय गड्ढों में भी जैव अभिकर्ता को नियमित रूप से मिलाया जा सकता है।

3. छिड़काव–

बीज एवं मृदाजनित रोगों की रोकथाम अतिरिक्त जैव अभिकर्ता के माध्यम से हवा द्वारा फैलने वाली बीमारियों को भी रोका जा सकता है। इसके लिये 8–10 ग्राम जैव अभिकर्ता/लीटर पानी में मिलाकर घोल का छिड़काव समय समय पर फसल में किया जाना चाहिये।

4. सिंचाई–

जैव अभिकर्ता 8–10 ग्राम/लीटर पानी में घोल बनाकर सब्जियों की पौधशाला की समय समय

पर सिंचाई करनी चाहिए जिससे पौधे स्वस्थ रहेंगे एवं उनकी बढवार अच्छी रहेगी।

(ब) रासायनिक नियंत्रण–

रासायनिक उपचार निम्नलिखित विधियों से किये जा सकते है।

फार्मलीन द्वारा: यदि पौधशाला में लगने वाले रोग की समस्या का निदान किसी विधि से न हो पाया हो तो भूमि शोधन फार्मलीन से भी कर सकते हैं क्योंकि फार्मलीन गैस से मिट्टी में उपस्थित सभी जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। फार्मलीन से उपचार के लिए बीज बुवाई के 15–20 दिन पूर्व 1.5–2.0 प्रतिशत फार्मलीन के घोल की 4.5 लीटर मात्रा प्रति वर्ग मीटर की दर से क्यारी में इस प्रकार डालें की मिट्टी 15–20 से.मी. की गहराई तक गीली हो जाये। इसके बाद क्यारी को पॉलीथीन की चादर से ढक दें। पॉलीथीन की चादर को चारों तरफ से गीली मिट्टी से अवश्य दबा दें ताकि फार्मलीन गैस बाहर न निकले। उपचार के 24 घंटे बाद चादर हटा लें और 15 दिनों तका खुला छोड़ दें ताकि गैस क्यारी से बाहर निकल जाये। इसके बाद निराई–गुड़ाई कर बीज की बुआई करें।

(स) फफूँदनाशक दवाओं से–

कैप्टान या थीरम को 5 से 6 ग्राम प्रति वर्ग मीटर की दर से पौधशाला की मिट्टी में डालकर 15 से 20 से.मी. की गहराई तक अच्छी तरह से मिला लें। यदि दवा को सीधे मिट्टी में मिलाने में असुविधा हो रही हो और दवा सर्वत्र एक समान न पड़ रही हो तो 5–6 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी की दर से घोल कर क्यारी की मिट्टी को तर कर दें तथा मिट्टी भुरभूरी हो जाने पर गुड़ाई करके क्यारी में बीज की बुआई करें।

(द) कवकनाशी द्वारा बीज उपचार–

कैप्टान या थीरम नामक दवा से 3–4 ग्राम/किग्रा. बीज दर से प्रयोग करें। दवा को बीज में अच्छी तरह से मिलाने के लिये मिट्टी या लकड़ी के ढक्कनदार बर्तन का प्रयोग करें। दवा एवं बीज बर्तन में डालकर ढक्कन बन्द कर दें और अच्छी तरह से हिलाये ताकि दवा बीज के चारों तरफ अच्छी तरह चिपक जाये। बीज को बर्तन से बाहर निकालकर तैयार क्यारी में बुआई करें। कुछ सब्जियां जैसे करेला, लौकी, तरबूज इत्यादि में छिलके कठोर होते हैं। अतः इनको कैप्टान के 0.02 प्रतिशत धोल में भिगोकर बुआई करने से फफूँदजनित बीमारियों का प्रकोप कम हो जाता है।

◆◆◆

खेतिहर महिलाओं के काम को हल्का करने वाले औजार

डा० दीपा विनय
प्राध्यापक (परिवार संसाधन प्रबन्धन)
गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल : deepasharma1416@rediffmail.com

कृषि कार्य विशेष रूप से उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में महिलायें रीढ़ की हड्डी मानी जाती है। उनके द्वारा प्रायः जुताई को छोड़कर समस्त कृषि कार्य सम्पादित किये जाते हैं। ऐसा माना जाता है कि ये महिलायें 24 घंटे में से 14–16 घंटे कृषि और घरेलू कार्यों में व्ययतीत करती है। इनमें कुछ कार्य ऐसे होते हैं, जो कृषि यंत्रों के प्रयोग से कम समय, कम शक्ति एवं ज्यादा कारगर तरीके से किया जा सकता है। आजकल विभिन्न सरकारी विभाग व कृषि संस्थान अनेक छोटे–छोटे कृषकोपयोगी यंत्र जो महिलाओं के क्षमता विकास में सहायक हो, का विकास और प्रदर्शन कर कृषकों के बीच लोकप्रिय बना रहे हैं। कुछ महत्वपूर्ण यंत्र/औजार का विवरण निम्नवत् है–

(अ) निराई के औजार–

सूखी भूमि की निराई का औजार (वीडर)– यह खूंटीनुमा वीडर बलुई तथा दोमट मिट्टी मे लाइनदार फसलों के लिए बहुत अच्छा है। इसे एक व्यक्ति द्वारा आसानी से चला सकता है। जब वीडर को आगे की ओर धकेला जाता है तब उसके ड्रम जमीन की सतह से छूते हुए घूमते हैं तथा मुड़े हुए ब्लेड खरपतवार की जड़ों को काट देते हैं। वीडर की चौड़ाई 15 से.मी. होती है तथा इससे करीब 0.025 हैक्टर प्रति घंटा की दर से खरपतवार निकाले जाते हैं।

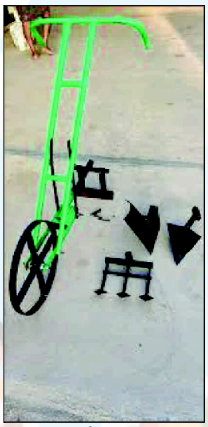
वीडर

बहुप्रयोगी वीडर– यह बहुप्रयोगी वीडर विशेषकर पर्वतीय क्षेत्रों में उपयोगी है। वीडर की कटाई वाली धार से छोटी–छोटी झाड़ियों को काटा जा सकता है तथा मुड़े हुए ब्लेड से फसल के पौधों के बीच मौजूद खरपतवारों को हटाया जा सकता है। इसके विशेष डिजाइन के कारण इस वीडर से परम्परागत दस्ती कुदाल की तुलना में मैदानी तथा ढलान वाली भूमि पर 25 से 30 प्रतिशत कम मेहनत लगती है।

बहुप्रयोगी वीडर

घूर्णी या घूमने वाला धान निराई का औजार– हाथ से चलने वाला यह निराई यंत्र (वीडर) धान की खेती में हल्की निराई के लिए प्रभावी है। इसे एक व्यक्ति द्वारा आसानी से चलाया जा सकता है। धान की क्यारियों के बीच वीडर को लगातार आगे खींचा या पीछे की ओर धकेला जा सकता है। घूमने वाले ब्लेड जमीन के भीतर तक जा कर खरपतवार काट कर जमीन से निकाल देते हैं। इससे प्रति घंटा करीब 0.025 हैक्टर में निराई हो सकती है। यह घूर्णी वीडर स्थानीय साम्रगी द्वारा स्वयं ही बनाया जा सकता है।

(ब) खींचने वाला या ड्रा वीडर–

निकासी वीडर– यह वीडर शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। इसमें दो धार वाले दांतेदार ब्लेड एक लम्बे हत्थे में लगे होते हैं। तेज धार वाले दांतेदार ब्लेड मिट्टी की सतह से थोड़ा अन्दर से खरपतवारों को काट देते हैं।

ब्लेड वाली दस्ती कुदाल ('हो')– यह औजार हल्की निराई हेतु तैयार किया गया है। इसमें लकड़ी अथवा बाँस के लम्बे हत्थे में धारदार ब्लेड लगे होते हैं। ब्लेड मिट्टी को काटते हुए खरपतवारों को मिट्टी के थोड़ा अन्दर से काट देते हैं।

हैण्ड हो

(स) फसल–कटाई के बाद इस्तेमाल होने वाले औजार–

मक्की के दाने निकालने का नलीदार दस्ती छीलक– यह नलीदार छीलक 1 सें.मी. लम्बा व 6.25 सें.मी. व्यास वाला स्टील का पाइप होता है जिसके अन्दर हल्की धातु की पतले पंखों वाली चार पत्तियों के बीच 26.5 मि.मी. का तथा दूसरी ओर पर 34 मि.मी. का फासला होता है। चलाने के लिए छीलक या षेलर को एक हाथ में लें तथा सूखी छल्ली को दूसरे हाथ से पाइप में डाल दें। दोनों को विपरीत दिशा में घुमाएं। पत्तियों के द्वारा प्रतिघंटा 20 किलोग्राम/की दर से छल्लियों से मक्की के दाने अलग हो जाएंगे।

मक्की के दाने निकालने का यंत्र

कंघीदार मूंगफली निकालने का यंत्र– हाथ से चलाए जाने वाले इस औजार से मूंगफली की बेलों से मूंगफलियां अलग की जा सकती हैं। इसमें चार पायों पर एक चौकोर फ्रेम होता है। इस फ्रेम पर बाड़ के लिए इस्तेमाल होने वाली कांटेदार तार को इस प्रकार लगाया जाता है कि कांटे ऊपर की ओर उठे रहें। इस प्रकार इसकी षक्ल कंघी जैसी हो जाती है। मूंगफली की बेलों की मुठ्ठी में लेकर कंघे में से ताकत से खींचा जाता हे जिससे मूंगफली अलग हो जाती हैं। इससे एक घंटे में 200–300 किलोग्राम मूंगफलियां अलग की जा सकती हैं और चार महिलाएं इस पर एक साथ काम कर सकती हैं।

ढोल के आकार का मूंगफली निकालने का यंत्र– इस यंत्र द्वारा हरी बेलों से मूंगफली अलग की जा सकती हैं। इसे एक व्यक्ति आसानी से चला सकता है और इसके इस्तेमाल से कटाई के बाद हानि भी कम होती है। इस युक्ति में धातु की 2 गोल तष्तरियों का बना एक खोखला ड्रम होता है। दोनों तष्तरियां धातु की छड़ों से जुड़ी होती हैं जिन पर रबड़ की नली चढी होती है। चलाने वाला व्यक्ति एक हत्थे की सहायता से ड्रम को घुमाता हैं और उस पर दूसरे हाथ से मूंगफली की बेलों को पटकता है। इससे मूंगफलियां बेलों से टूटकर अलग हो जाती है।

मूंगफली निकालने का यंत्र

हाथ से चलने वाला अनाज का छन्ना– इसे चना, गेहूं और सोयाबीन से कूड़ा–कचरा साफ करने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। इसमें धातु के 2 छन्ने होत हैं जा एक रस्सी से एक तिपाये स्टैण्ड से लटके रहते हैं। छन्ने पर लगभग 10 किलो अनाज रखरकर छन्ने को झूले की तरह तेजी से आगे पीछे झुलाया जाता है। साफ अनाज नीचे गिर जाता हैं और कूड़ा कर्कट फिर से साफ किया जाता हैं ताकि बारीक कूड़ा कर्कट भी अनाज से अलग हो जाए।

फसल कटाई के औजार–

नवीन दरांती या हंसिया– यह दरांती गेहूँ तथा चावल की फसल की कटाई के लिए सबसे उपयुक्त है। कटाई को आसान बनाने के लिए इसमें अच्छी पकड़ वाला लकडी का हत्था लगा होता है। दरांती के ब्लेड कार्बन स्टील के बने तथा दांतुएदार होते हैं जो 12 मि.मी. चौड़े अंग्रेजी के अक्षर 'U' के आकार वाले खोल द्वारा हत्थे में लगे होते हैं। दस महिलाओं द्वारा नवीन दरांतियों के प्रयोग से 10 घंटे में एक हैक्टर फसल की कटाई की जा सकती है।

नवीन दराती

खुरपे वाली दरांती– खुरपे वाली दरांती वीडर, कुदाल तथा कटर सभी कुछ है। इसके ब्लेड कार्बन स्टील से बने होत है। इसका सामने वाला हिस्सा दांतेदार होता हैं जो दरांती की भाँति कटाई के काम आता है। दांतेदार हिस्से की घुमावदार लम्बाई 12 सें.मी. होती हैं, जिसका 60 प्रतिशत भाग एक साधारण दरांती के रूप में होता है। इसका हत्था षीषम की मजबूत लकड़ी से

बना होता है। औजार का वजन 300 ग्रा. हैं जो लगातार प्रयोग करने की दृष्टि से खासा हल्का है।

पानी भर कर लाने वाला थैला–

विस्तृत सूचना–

थैले की लम्बाई : 14 इंच
चौड़ाई : 11 इंच
मोटाई : 7 इंच
सामग्री : प्लास्टिक जैरीकेन तथा कृत्रिम चमड़ा (रेक्सीन)
पानी भरकर लाने वाला थैला

मुख्य विशेषतायें–

यह कठिन भू–भागों में पानी ढोने के लिए उपयुक्त है।

- इसमें पट्टे लगे होते हैं एवं इसे पीठ पर लादा जा सकता है।
- एक समय में 15 लीटर पानी लाया जा सकता है।
- वजन में हल्का एवं पानी ढोने का परम्परागत तरीका है।
- स्थानीय बाजार में निर्माण कराया जा सकता है।

लम्बे हत्थे वाला पाँचा–

विस्तृत सूचना–

लम्बाई : 3–4 इंच
चौड़ाई : 1.5 इंच
सामग्री : लकड़ी व लोहा

मुख्य विशेषतायें–

इसकी लम्बाई कृषि कार्य करने वाली महिलाओं के षारीरिक मापनक के आधार पर बनाई गई है।

- पाँचे का सुविधाजनक हत्था महिलाओं की कार्य मुद्रा को बेहतर बनाता है।
- पाँचे का हत्था पकड़ने में आरामदायक हैं।
- लम्बे हत्थे वाला पाँचा

पाँचे का हल्का वजन उसके उपयोग को सरल व सुविधाजनक बनाता है।

ईधन की लकड़ी काटने की दराती–

विस्तृत सूचना–

लम्बाई : 15 इंच
वजन : 450 ग्राम
सामग्री : लकड़ी व लोहा

मुख्य विशेषतायें–

- इस दराती का उपयोग षारीरिक तनाव को कम करने के लिए प्रभावी पाया गया है।
- इस उपकरण का उपयोग करते हुए सभी ergonomics पैरामीटर में महत्वपूर्ण कमी पायी गयी है।
- इसके उपयोग से उत्पादन में बढोत्तरी पायी गयी।
- दराती

यह उपकरण के उपयोग द्वारा musculoskeletal विकारों में कमी पायी गयी।

पर्वतीय सुगम धान थ्रेशर–

विस्तृत सूचना–

ऊँचाई : 97 सेमी
लम्बाई : 80 सेमी
चौड़ाई : 63 सेमी
वजन : 50 किग्रा.
खालिहान क्षमता : 150–180 किग्रा./घंटा

मुख्य विशेषतायें–

- पारंपरिक थ्रेषर की तुलना में इस थ्रेषर द्वारा औसतन एक घंटे में 180 किलो धान की मड़ाई होती है।
- इस थ्रेषर की उत्पादक क्षमता पाँच गुना अधिक है।
- पर्वतीय सुगम धान थ्रेषर

पारंपरिक विधि की अपेक्षा इस थ्रेषर द्वारा कार्य करना आसान हैं एवं musculo skeletal विकारों में कमी पायी गयी।

◆◆◆

कृषि रसायनों का मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव

डा० प्रतिभा सिंह
सह निदेशक (गृह विज्ञान)
गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय–कृषि विज्ञान केन्द्र, काशीपुर, जनपद–उधमसिंहनगर
ई–मेल : singhpratibha888@gmail.com

कृषि रसायन–

ऐसा कोई भी जीव, कीट, वनस्पति जो फसलों को क्षति पहुंचाता है उसे पेस्ट कहते हैं। फसलों को क्षति पहुंचाने वाले कीड़ों को नियंत्रित किये जाने वाले रसायन को कीटनाशी, बीमारियां जो ज्यादातर फंफूदी से होती है के नियंत्रण हेतु फफूँदीनाशक, खरपतवार को नष्ट करने के लिए खरपतवारनाशी एवं निमेटोड को मारने के लिए निमेटीसाइड जैसे कृषि रसायनों का प्रयोग किया जाता है। इन सभी कृषि रसासनों को समग्र रूप से पेस्टीसाइड कहा जाता है।

आज बहुत से गुणों वाले रसायन विकसित हो चुके हैं, जिनकी विस्तृत जानकारी जरूरी है। इस रसायनों का विवेकपूर्ण प्रयोग अति आवश्यक है, अन्यथा असावधानी और अज्ञानतापूर्वक प्रयोग करने पर प्राणघातक भी सिद्ध हो सकते हैं। ये मृदा स्वास्थ्य, पर्यावरण, मानव के लिए खतरा बन सकते हैं।

कीटनाशक रसायन कीट के शरीर में कई स्थानों से प्रवेष कर सकते हैं। उसी आधार पर उनका वर्गीकरण किया जाता है।

अ– संस्पर्ण विष (Contact Poison)–

ये रसायन छिड़काव, बुरकाव आदि से कीटों के सम्पर्क में आते हैं और इन्हें नष्ट करते हैं।

ब– अमाशय विष (Stomach Poison)–

इस प्रकार के रसायन कीट के अमाषय के अन्दर जाकर ही अपना असर दिखाते हैं। यह मुख्यतया पत्ती काटने वाले कीटों के विरूद्ध कारगर होते हैं। इनका प्रयोग खाद्य विष/चुग्गा विष बनाने में भी किया जाता है।

स– सर्वांगी/दैहिक विष (Systemic Poison)–

यह एक तरह का अमाशय विष है, जो पौधों की जड़ों या पत्तियों में छिड़कने के बाद पौधें के मुख्य रसधारा में अवशोषित कर लिए जाते हैं एवं वहां से पूरे पौधे में विषैली मात्रा में संवाहित हो जाते हैं। इस तरह के रसायनों का प्रयोग रस चूसक कीटों के विरूद्ध किया जाता है।

द– धूमक (Fumigant)–

इस प्रकार के कीटनाशी कमरे के तापमान में गैस की अवस्था में बदल जाते है और कीट के श्वसन तंत्र में प्रवेश कर उसे मार देते हैं। इनका प्रयोग मुख्यतः बंद स्थानों पर किया जाता है।

मनुष्यों पर कीटनाशकों के उपयोग के प्रभाव–

फसलों में कीट नियंत्रण के लिए जो रसायन प्रयोग में लाये जाते हैं वे एक प्रकार के जहर है अतः इनका प्रयोग विशेष सावधानी से करना चाहिए। जिस प्रकार यह कीट व अन्य जीवों के लिए घातक है उसी प्रकार मानव शरीर पर भी इनका कुप्रभाव पड़ता है।

कीटनाशियों के जहर से बहुत अधिक दिनों तक ग्रसित होने पर उपभोक्ताओं में हृदय रोग, दमा, पागलपन व बांझपन के लक्षण आ जाते है। कीटनाशी के अधिक मात्रा में एक साथ शरीर में प्रवेशित होने से जी–मिचलाना, उल्टी, पेट व सिरदर्द, घबराहट, शरीर का नीला या पीला पड़ना, बुखार होना, अंधापन, लड़खड़ाना, सांस टूटना, लार टपकना, समूचे शरीर की मांसपेशियों में ऐठन, पुतलियों का फैल जाना, उत्तेजित होना, मल आना आदि लक्षण प्रकट होते हैं एवं कभी–कभी 24 घंटे के अन्दर मृत्यु की सम्भावना भी रहती है।

कीटनाशकों का इस्तेमाल फसलों को बचाने के लिए किया जाता है लेकिन इन कृषि रक्षा रसायनों का हमारे शरीर पर कई तरह से साइड इफेक्ट होता है। कीटनाशी रसायन से जहां मच्छर, मक्खियों और कीड़ों से बचना आसान हो जाता है वहीं दूसरी तरफ ये भोजन के माध्यम से हमारे शरीर के अन्दर पहुंच जाती

है और कई तरह से ये कीटनाशी शरीर के अलग–अलग अंगों पर दुष्प्रभाव डालते हैं।

कीटनाशी रसायन से पैदा होने वाले समस्याएं–

1. **फेफड़ों को नुकसान पहुंचा सकता है**– कृषि रसायन की थोड़ी सी मात्रा भी फेफड़े की सामान्य कार्यक्षमता को प्रभावित करती है। शोध से यह सिद्ध हुआ है कि शरीर में रसायन की मौजूदगी के कारण क्रोनिक कफ या खांसी की समस्या हो सकती है। इसके अलावा अस्थमा और फेफड़ों से जुड़ी अन्य बीमारियां भी हो सकती है। दरअसल रसायन हमारे फेफड़ों में हवा के आवागमन को कम कर देती है, जिसकी वजह से आपके फेफड़ों को काम करने में दिक्कत होती है।
2. **लीवर पर पड़ता है प्रभाव**– शरीर में मौजूद रक्त को साफ रखने में लीवर की भूमिका होती है, जो शरीर में छुपे विषैले तत्वों को बाहर फेकने का काम करता है। लेकिन अधिक कीटनाशक का भोजन के साथ शरीर में जाने से लीवर की कार्यप्रणाली पर प्रतिकूल असर पड़ता है और लीवर के लिए बेकार और विषैले पदार्थों को बाहर फेकने में तकलीफ होती है। इसकी वजह से हैपेटाइटिस, लीवर डेमेज, चक्कर, उल्टी और त्वचा में पीलापन जैसी समस्याएं होने लगती हैं।
3. **इम्यूनिटी कमजोर होती है**– निरन्तर कीटनाशी युक्त भोजन हमारे शरीर की प्रतिरोधक क्षमता में कमी लाते हैं। फलतः मनुष्य बार–बार बीमार होते हैं और चिकित्सक के पास चक्कर लगाते हैं।

जानलेवा है छुपा जहर–

खाद्य पदार्थों में छुपे हुए जानलेवा जहर से अनेक घातक बीमारियां मनुष्यों में हो रही है। कीटनाशकों समेत अन्य रसायनों से कैंसर, हृष्दय रोग, प्रजनन क्षमता में गिरावट, नाड़ी दुर्बलता, गर्भस्थ शिशु में विकृति जैसी गंभीर और दीर्घकालीन बीमारियां हो जाती है। कुछ साल पहले विश्व स्वास्थ्य संगठन के एक सर्वेक्षण में यह पता चला कि भारत में स्तनपान कराने वाली माताओं के दूध में डी.डी.टी. समेत अन्य जहरीलें कीटनाशकों की मात्रा पाई गई। नतीजतन षिषु बाल्यकाल से ही विविध रोगों के षिकार हो जाते हैं, जिससे उनकी मानसिक और षारीरिक विकास असंतुलित हो जाता है।

कहाँ–कहाँ है जहर–

खेत अथवा बाग में खड़ी फसलों को कीट और बीमारी से बचाने के लिए ज्यादातर किसान अंधाधुंध कीटनाशक, फफूँदीनाशकों का उपयोग करते हैं। परिणामस्वरूप उन फसलों पर अधिकतम अवशेष स्तर एम.आर.एल. (Maximum Residue Limit) बढ़ जाता है। इसके साथ ही कई बार किसान रसायनों को छिड़कने के बाद तुड़ाई में जल्दी कर देते हैं, जिससे सब्जियों व फलों से रसायनों का नकारात्मक असर पूरी तरह से समाप्त नहीं हो पाता है।

पकाये जा सकने वाले फल जैसे केला, पपीता, आम समेत अन्य फलों को कई बार सरकारी रोक के बावजूद कैल्शियम कार्बाइड जैसे घातक रसायन से पकाकर बेचा जाता है। कैल्शियम कार्बाइड मनुष्य के स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचाने के साथ–साथ प्राकृतिक संतुलन बनाये रखने वाले पशु–पक्षियों को भी नुकसान पहुंचाता है। यही कारण है कि अब पशु–पक्षी भी ऐसे फलों को खाकर धीरे–धीरे विलुप्त होते जा रहे हैं। इसी तरह पशु उत्पाद और डेयरी उत्पाद भी अति जहरीले हो गये हैं क्योंकि पशुओं को खिलाये जाने वाली चारा फसलों पर पेस्टीसाइड का इस्तेमाल किया जाता है। उस चारे का पशुओं द्वारा उपयोग कर लेने पर उसका नकारात्मक प्रभाव पशु उत्पादों और डेयरी उत्पादों पर भी होता है। इसके अलावा धूल, धुएं की वजह से व गन्दे पानी से सब्जियों व फलों के धुलाई के कारण भण्डारण आदि में सही रखरखाव न होने के कारण से और कई बार पर्यावरणीय प्रदूषण से भी सभी तरह के खाद्य पदार्थ अत्यधिक जहरीलें हो जाते हैं।

कैसे होगी रोकथाम–

अगर हम यह नहीं जानते हैं कि जो सब्जी, फल अथवा अन्य खाद्य पदार्थ प्रयोग करने वाले हैं, वो कृषि रसायन अथवा दूसरे किसी नुकसानदायक यौगिक से मुक्त नहीं है तो हमें कुछ तरीके अपनाकर उन्हें दूर करने का प्रयास करना चाहिए। इसकी अच्छी तरह से धुलाई करना, ब्लीचिंग करना, छीलना और पकाना आदि कार्य करके हम कुछ राहत प्राप्त कर सकते हैं।

1. **धुलाई**– खाद्य उत्पादों से हानिकारक तत्वों को

हटाने का यह सबसे आसान तरीका है। एक अनुमान के मुताबिक लगभग 75–80 फीसदी पेस्टीसाइड के अवशेष ठण्डे पानी की धुलाई से दूर हो जाते हैं। सामान्यतया सब्जियों और फलों की सतह पर आने वाले कीटनाशक अवशेष 02 प्रतिशत नमक के पानी के घोल से धुलाई करने पर निकल जाते हैं। अंगूर, सेब, अमरूद, आम, आड़ू, नाशपाती, टमाटर, बैंगन, भिण्डी जैसी सब्जियों की सतह पर कीटनाशकों के अवशेष को हटाने के लिए 02–03 बार धुलाई पर्याप्त होती है।

2. **ब्लीचिंग**– ब्लीचिंग ज्यादातर सब्जियों के लिए उपयोग में लायी जाने वाली विधि है। इसमें गर्म पानी या भाप में कुछ समय के लिए सब्जियों को रखा जाता है। कुछ कीटनाशक अवशेष प्रभावी ढंग से ब्लीचिंग द्वारा हटाये जा सकते हैं। यद्यपि, ब्लीचिंग से पहले सब्जियों और फलों को अच्छी तरह से धोया जाना जरूरी होता है।
3. **छीलना**– फलों और सब्जियों को छीलने से उनके सतह पर होने वाले सिस्टेमिक (प्रणालीगत) और कॉन्टेक्ट (सम्पर्क) पेस्टीसाइड को आसानी से हटाया जा सकता है।
4. **पकाना**– पशु उत्पाद, डेयरी उत्पाद और वानस्पतिक तेल में उपस्थित कीटनाशक अवशेष को पका कर नष्ट किया जा सकता है। पशु चारा खाते हैं, जिस पर रसायन का छिड़काव किया जाता है। इसलिए पशु उत्पाद को प्रेषर कुकिंग, तलने एवं भूनने से इनके अवशेष के हानिकारक प्रभाव को कम किया जा सकता है। डेयरी उत्पादों के जहरीले अवशेषों को हटाने के लिए उच्च तापमान पर दूध को उबालने से कीटनाशक अवशेषों को दूर कर सकते हैं। इसी तरह वानस्पतिक तेल को गर्म करने से कीटनाशकों के अवशेष को कम किया जा सकता है।
5. **सब्जी बगीचा**– इसके अलावा आप खुद सब्जी वाला बगीचा लगा सकते हैं या सामुदायिक सब्जी बगीचे में सहभागी बन सकते हैं। इस तरह यह हमें कीटनाशकों को नियंत्रित करने के लिए मददगार होगा।

कृषि रसायनों के रखरखाव, घोल बनाते समय, छिड़कते समय तथा छिड़कने के बाद बरती जाने वाली सावधानियाँ–

क– भण्डारण–

i- कीटनाशी रसायन आवश्यकतानुसार ही खरीदें। कभी भी आवश्यकता से अधिक रसायन न रखें।

ii- रसायनों को इनके ही डिब्बे में रखना चाहिए। कभी भी दूसरे दवा आदि की बोतल में नहीं रखना चाहिए। क्योंकि भूल से कोई उसे दवा समझकर प्रयोग कर सकता है।

iii- जहां तक हो सके, इन्हें बच्चों की पहुंच से दूर ताले में बंद करके ऊँचें स्थान पर रखना चाहिए।

iv- मकान में मुख्यतः षयनकक्ष में इन रसायनों को कभी भी नहीं रखना चाहिए। क्योंकि इनकी विषैली गंध स्वास्थ्य के लिए घातक होती है।

ख– घोल बनाते समय–

i- घोल हमेषा खुली हवा में बनाना चाहिए। बंद कमरे में बनाने से इसकी विषैली हवा कमरे में भर जाती है, जो मानव स्वास्थ्य के लिए घातक हो सकती है।

ii- घोल बनाने में जो पात्र प्रयोग किये जाएं वो इस प्रकार के हो कि घरेलू उपयोग में न आये।

iii- घोल बनाते समय उचित मात्रा ही आवश्यक पानी की मिलानी चाहिए। कभी भी कीटनाशी की अधिक मात्रा नहीं होनी चाहिए। क्योंकि अधिक सान्द्रता से पौधों के जलने की आषंका रहती है।

iv- घोल को मिलाने के लिए कभी भी हाथ का प्रयोग न करें। सदैव लकड़ी के डण्डे या लोहे की छड़ आदि का प्रयोग करना चाहिए।

v- कीटनाशकों की बोतलों या डिब्बों को जो खाली हो गये हों, तोड़कर जमीन में दबा देना चाहिए। उसे किसी अन्य घरेलू उपयोग में नहीं लाना चाहिए।

ग– छिड़काव के समय–

i- छिड़काव के समय पूरे कपड़े, कोट, रबड़ के दस्ताने, गम बूट और गैस मास्क अवश्य पहनने चाहिए।

ii- शरीर पर खुले घाव नहीं होने चाहिए। यदि घाव

हो तो इन पर छिड़काव के समय पट्टी बाँधें।

iii- कभी भी हवा के विपरीत दिशा में छिड़काव नहीं करना चाहिए।

iv- छिड़काव शाम व बुरकाव सुबह के समय करना चाहिए। छिड़काव के समय पत्तियों पर ओंस या पानी की बूँद नहीं होनी चाहिए। जबकि बुरकाव के लिए यदि पत्तियों पर ओंस पड़ी रहे तो अच्छा रहता है।

घ– छिड़काव के बाद–

i- छिड़काव के बाद जिस स्थान पर छिड़काव किया है उसमें बोर्ड लगा देना चाहिए कि ''कीटनाशी का प्रयोग हुआ है''।

ii- जो घोल छिड़काव के बाद बचा है उसे अन्य किसान जिसे छिड़काव करना है, दे देना चाहिए। यदि उसका कोई उपयोग न हो तो बेकार स्थान पर गड्ढा खोदकर दबा देना चाहिए।

iii- छिड़काव के तुरन्त बाद साबुन से स्नान करना चाहिए। कपड़ों को साफ करके धूप में सुखाना चाहिए।

कीटनाशी रसायन से प्रभावी व्यक्ति को चिकित्सक के पास ले जाने से पूर्व घर में किये जाने वाले उपाय–

i- प्रभावित व्यक्ति को खुले व हवादार स्थान में प्रभावित स्थान से दूर ले जाना चाहिए।

ii- यदि सांस आने में कठिनाई हो रही हो तो कृत्रिम विधि से श्वांस देने का प्रयास करना चाहिए।

iii- यदि प्रभावित व्यक्ति बेहोश हो गया हो तो उसे सीधा लेटा देना चाहिए।

iv- प्रभावित व्यक्ति के कपड़े आदि ढीले कर देने चाहिए।

v- प्रभावित व्यक्ति द्वारा लिये गये विष के पैकेट को सम्भाल कर रख लेना चाहिए, जिससे चिकित्सक उसी के अनुसार चिकित्सकीय सलाह अथवा उपचार कर सके।

vi- मरीज को तुरन्त चिकित्सक के पास ले जाने की व्यवस्था करनी चाहिए।

मुख में जहर जाने पर–

i- इस प्रकार प्रभावित व्यक्ति को उल्टी करवानी चाहिए। इसके लिए एक ग्लास हल्के गुनगुने पानी में 1 चम्मच नमक व पिसी हुई सरसों मिलाकर पिलाना चाहिए या फिर गले में उगली डालकर उल्टी करवानी चाहिए।

ii- यदि व्यक्ति सान्द्र कीटनाशक से प्रभावित हुआ है तो उसे उल्टी करवाने के बाद उचित शामक (शान्ति देने वाली दवा) जैसे फेटे हुए अण्डे, मिल्क ऑफ मैग्नीशिया अथवा स्टार्च का घोल पिलाना चाहिए।

त्वचा से प्रभावित होने पर–

प्रभावित व्यक्ति के प्रभावित स्थान को साबुन व बहते हुए पानी से धोना चाहिए। यदि सम्भव हो तो गरम पानी सर्वोत्तम रहता है। आँखों के प्रभावित होने पर आँखों को कम से कम 10 मिनट तक साफ पानी से धोना चाहिए।

◆◆◆

उन्नत मशरूम उत्पादन

डा० के०पी०एस० कुशवाहा
प्राध्यापक (पादप रोग विज्ञान)
गो0ब0 पंत कृशि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय पंतनगर
ई–मेल : kps.kushwaha@gmail.com

पर्वतीय राज्य उत्तराखण्ड पूर्वोत्तर में चीन, पश्चिम में हिमाचल प्रदेश, दक्षिण–पश्चिम में उत्तर प्रदेश एवं दक्षिण पूर्व में नेपाल से घिरा हुआ है। भौगोलिक स्थिति के अनुसार प्रदेश का अधिकांश भू–भाग पर्वतीय एवं कुछ मैदानी है। प्रदेश की जलवायु विश्व में उगाई जाने वाली लगभग सभी 10 मशरूम प्रजातियों के लिए अनुकुल है जबकि केवल तीन मशरूम प्रजातियों (बटन, ढिंगरी व दूधिया) की खेती की जाती है जिनमें से बटन मशरूम का कुल उत्पादन मे लगभग 90 प्रतिशत की हिस्सेदारी है। प्रदेश में मशरूम उत्पादन की त्रिस्तरीय (सीमांत, लघु एवं औद्योगिक स्तर) खेती की जा रही है। मशरूम उत्पादन हेतु आवश्यक कच्चा माल जैसे गेहूँ का भूसा धान के पुआल, लकड़ी का बुरादा, गन्ने की खोई, मुर्गी खाद व रासायनिक उर्वरक बहुतायत से उपलब्ध हैं। उत्तराखण्ड का कुल मशरूम उत्पादन 2,640 मेट्रिक टन वर्ष 2000–01 से बढ़कर 14200 मेट्रिक टन वर्ष 2018–19 में आँका गया है, जो प्रदेश के बढ़ते मशरूम उत्पादन के क्रम को दर्शाता है।

विश्वविद्यालय में मशरूम अनुसंधान, सत्तर के दशक से आरम्भ हुआ जिसको 2003 में मशरूम अनुसंधान एंव प्रशिक्षण केन्द्र का स्वरूप दिया गया। इस केन्द्र की स्थापना प्रदेश तथा देश में मशरूम अनुसंधान एवं विकास कार्यक्रम को बढावा देने के उद्देश्य से किया गया है। इस केन्द्र द्वारा मशरूम उत्पादन, जर्मप्लाज्म संकलन, अधिक उत्पादन वाले विविदों का विकास, कृषि अवशेषों का मशरूम उत्पादन हेतु मूल्यांकन, पादप अर्क द्वारा मशरूम के रोगों का प्रबन्धन, मूल्य संवर्धित मशरूम उत्पादन पर शोध एवं किसानों एवं प्रशिक्षार्थियों को मशरूम उत्पादन विषय पर प्रशिक्षण दिया जाता हैं।

प्रदेश के विभिन्न भागों में मौसम अथवा तापक्रम के अनुसार विभिन्न मशरूम प्रजातियों की खेती के लिये संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत लेख में दिया जा रहा है।

1. ढिंगरी (*प्लूरोटस*) मशरूम–

प्रजातियाँ : षीतकालीन (10–20 डिग्री से.ग्रे.) *प्लूरोटस आस्ट्रीऐटस, प्लूरोटस फ्लोरिडा, प्लूरोटस फ्लेबिलेटस, प्लूरोटस इरिंगाई*

ग्रीष्मकालीन (20–30 डिग्री से.ग्रे.) : *प्लूरोटस सजोर काजु, प्लूरोटस फ्लेबेलाटस, प्लूरोटस सेपिडस*

उपयुक्त समय : फरवरी–अप्रैल एवं सितम्बर–नवम्बर (ऊधम सिंह नगर, हरिद्वार, देहरादून व नैनीताल के कम ऊँचाई वाले क्षेत्र)

आवश्यक तापक्रम एवं आर्द्रता : 10–30 डिग्री से.ग्रे. एवं 75–80 प्रतिशत

पोषाधार : कटा हुआ (4–5 सेमी.) धान का पुआल अथवा गेहूँ का भूसा

मशरूम के वंष प्लूरोटस की विभिन्न प्रजातियों को सामान्यतः ढिंगरी, ओएस्टर अथवा सी0पी0 मशरूम आदि प्रचलित नामों से जाना जाता है, जो एक पौष्टिक आहार के रूप में प्राचीनकाल से उपयोग में लाया जाता रहा है यह एक ऐसा भोज्य पदार्थ है जिससे न केवल क्षुधापूर्ति होती है वरन् पोषक तत्वों जैसे प्रोटीन, खनिज लवण, खाद्योज वसा एवं कार्बोहाइड्रेट आदि की भी पूर्ति की जा सकती है। ढिंगरी मशरूम की खेती आम फसल की तुलना में अधिक लाभप्रद है क्योंकि इसके क्षेत्रफल एवं कम समय में सस्ती एंव सर्वाधिक उपज देने वाली फसल है। इसे बटन मशरूम की तुलना में उगाना भी बहुत आसान है, क्योंकि इसके लिए कम्पोस्ट बनाने की आवश्यकता नही होती है। इस मशरूम की कई जातियां प्रचलित है जिनका उत्पादन तापमान के

परिवर्तन से बहुत कम प्रभावित होता है। इस मशरूम की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसे उन सभी कृषि अवशेषों सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है, जिसमें लिग्निन व सेल्यूलोज प्रचुर मात्रा में पाया जाता है जैसे धान का पुवाल, गेहूँ का भूसा, मक्के का तना, गन्ने की पत्ती, सोयाबीन का भूसा एवं दलहनी फसलों का भूसा आदि। विश्व में ढिंगरी मशरूम की 39 प्रजातियों की खेती की जाती है, इससे मशरूम का उत्पादन लगातार देश तथा पूरे विदेशों में लगातार बढ़ रहा है।

पोषकमान की दृष्टि से ढिंगरी मशरूम, बटन मशरूम के समतुल्य ही है तथा इसकी कुछ प्रजातियां तुलनात्मक दृष्टि से उत्तम भी है। वैज्ञानिकों द्वारा सिद्ध किया जा चुका है कि ढिंगरी मशरूम की विभिन्न प्रजातियों में प्रतिशत (शुष्क भार), प्रोटीन 27.40–37.19 प्रतिशत जबकि बटन मशरूम में 27.8 प्रतिशत होती है इसके अतिरिक्त खाद्योज (विटामिन) की उपलब्धता प्रति 100 ग्राम शुष्क भार पर ढिंगरी मशरूम में थायमिन एवं नियासिन क्रमशः 1.16–4.80 मिग्रा तथा 46.11 मिग्रा जबकि बटन मशरूम में क्रमष 1.10 तथा 55.7 मिग्रा होती है।

ढिंगरी मशरूम की विभिन्न प्रजातियों का औसत पोषकीय मान सारणी 1 मे दिया जा रहा है।

खेती की विधि–

माध्यम की तैयारी–

ढिंगरी मशरूम का उत्पादन करने हेतु गेहूँ का भूसा एवं अन्य कृषि अवशेष जो भी उपलब्ध हो एकत्र कर सुरक्षित रख लिया जाय। जब मौसम ढिंगरी मशरूम की खेती के लिए उपयुक्त तापक्रम यथा 20–28^0 से.ग्रे. हो तो उपलब्ध माध्यम को कम से कम 18 घंटे तक भिगोकर खेती की जा सकती है। परन्तु माध्यम को उपयोग में लाने से पहले उपचारित करना आवश्यक होता है अन्यथा भूसे में उपस्थित हानिकारक सूक्ष्म जीव मशरूम की फसल को नुकसान पहुँचा सकते है। अतः निम्नलिखित विधियों में से किसी एक विधि द्वारा भूसे को उपचारित करके उपस्थित सूक्ष्मजीवों को नष्ट कर दिया जाता है। साथ ही साथ माध्यम (भूसा) में उपस्थित तत्व उपयोगी रूप में परिवर्तित हो जाते है जिससे मशरूम की भरपूर उपज प्राप्त होती है।

गर्म पानी द्वारा उपचार विधि–

गर्म पानी द्वारा उपचार करने हेतु भूसे को 18 घंटे तक पानी में भिगोते है तथा भीगे भूसे को खौलते पानी में कम से कम 60 मिनट तक उबालते है इसके बाद गर्म पानी से धुले पक्के फर्श (ढालू) पर रख कर अतिरिक्त पानी का निथार लेते है इस विधि द्वारा उपचारित एवं ठन्डा होने के बाद भूसा बीजाई के लिए उपयुक्त हो जाता है।

रासायनिक उपचार विधि–

सर्वप्रथम 200 लीटर क्षमता वाले प्लास्टिक ड्रम या सीमेन्ट की टंकी में 100 ली0 साफ पानी में 7–10 ग्राम बावस्टिन तथा 100–150 मिली0 फार्मलीन मिलायें। भूसे अथवा पुआल को बोरियों में भरकर उपरोक्त घोल में 18 में घंटे तक भिगोयें, घोल से भूसे को निकालकर 4–6 घंटे के लिए पानी निथरने के लिये पक्के फर्श पर रख दें। बोरी का मुंह खोलकर मुट्ठी में भूसे को रखकर दबाएं यदि पानी नहीं टपक रहा है तो इसमें बीजाई की जा सकती है। 1 किग्रा. सूखे भूसे से 4

सारणी 1: ढिंगरी मशरूम की प्रजातियों का औसत पोषकीय मान (ताजा मशरूम भार)

प्रजातियां	शुष्क पदार्थ	प्रोटीन	कोर्बोहा०	वसा	रेशा	राख	ऊर्जा
प्लूरोटस सजोर काजु	9.8	2.5	5.26	0.18	1.1	0.76	0.27
प्लूरोटस आस्ट्रीयेटस	7.1	1.9	3.82	0.12	0.9	0.56	0.19
प्लूरोटस फ्लोरिडा	6.0	1.6	3.09	0.09	0.7	0.22	0.16
प्लूरोटस फ्लेबिलेटस	8.0	2.0	4.21	0.15	0.8	0.83	0.21
प्लूरोटस सेपिडस	8.4	2.3	4.35	0.14	0.8	0.81	0.22
प्लूरोटस इरिंगाई	6.8	2.2	2.98	0.10	0.9	0.52	0.17

किग्रा. गीला पोषाधार बीजाई हेतु उपलब्ध होता है।

बीजाई (स्पानिंग)–

उपर्युक्त तरीके से तैयार माध्यम में ढिंगरी मशरूम का बीज (स्पान) मिश्रित बीजाई विधि द्वारा मिलाया जाता है तैयार भूसे में स्पान मिलाने की प्रक्रिया को स्पानिंग (बीजाई) करना कहते है। इस मशरूम की बीजाई 2–3 किग्रा प्रति कुन्तल गीला भूसा (तैयार माध्यम) की दर से की जाती है। बीजाई करने से पूर्व यदि भूसे में 4 प्रतिशत की दर से गेहूँ अथवा धान का चोकर मिला दिया जाये तो मशरूम की उपज में पर्याप्त वृद्धि की जा सकती है। स्पान मिले हुए भूसे को पालीथीन के बैगों में 4–6 किग्रा. भरकर बैग के मुंह को बन्द कर देते है। बीजाई किये थैलों के चारों तरफ आधा–एक सेमी0 व्यास के 8–10 छिद्र बना दें। बीजाई किये थैलों को एक दूसरे से 15–20 सेमी0 की दूरी पर फसल कक्ष के भीतर रैक पर रखें। यदि तापक्रम 25–28^0 से.ग्रे. से ऊपर हो तो दीवार व फर्श पर पानी का छिड़काव कर तापक्रम 25^0 से.ग्रे. के आसपास ही रखें, जो कि सर्वथा उपयुक्त है तथा नमी 70–80 प्रतिशत तक होनी चाहिए। मशरूम का कवकजाल 15–20 दिन में पूरे भूसे में थैलों के भीतर फैल जाता है। तद्पोरान्त थैलों को काटकर निकाल दें अथवा थैलों के मुंह को खोलकर पलटकर निकाल दें। कवकजाल से लिपटा हुआ ढेर रैक पर उपरोक्त दूरी पर रखें। इस पर दिन में दो बार हल्के पानी का छिड़काव करें। तीन चार दिन के बाद मशरूम की आरम्भिक अवस्था दिखाई देने लगती है, जो अगले 4–5 दिन में बढ़कर चुनाई हेतु तैयार हो जाती है जिसे अंगूठे व उंगलियों से ऐंठ कर तोड़ लें।

सिंचाई एवं रख रखाव–

थैलों को काटने के बाद नियमित रूप से 2–3 बार प्रति दिन स्प्रेयर द्वारा पानी का छिड़काव करते रहना चाहिए, अन्यथा कवकजाल सूख जायेगा तथा उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। फसल कक्ष में आर्द्रता 70 प्रतिशत या उससे अधिक बनाये रखने के लिए दीवारों पर और फर्श पर भी पानी का छिड़काव करना चाहिए।

तुड़ाई (चुनाई एवं उपज)–

पूर्ण विकसित ढिंगरी मशरूम को हल्के हाथों से मोड़कर तुड़ाई कर लेते है तोड़ने के पश्चात् मशरूम में लगे भूसे के टुकड़े को साफ करके बाजार ले जाने हेतु 200–500 ग्राम के पैकेट बना लिए जाते है। इस प्रकार लगभग 30 दिन के फसल चक्र में कुल तीन से चार बार तुड़ाई की जाती है। प्रति किग्रा. सूखे भूसे अथवा पुवाल से 800–900 ग्राम तक ताजा मशरूम प्राप्त किया जा सकता है।

2. दूधिया मशरूम *(कैलोसाइबी स्पीसीस्)*–

प्रजातियाँ : *कैलोसाइबी इन्डिका*

उपयुक्त समय : मध्य फरवरी से अक्टूबर।

आवश्यक तापक्रम एवं आर्द्रता : 25^0–35^0 से0 एवं 70–85 प्रतिशत

पोषाधार : गेहूँ का भूसा अथवा धान का पुआल।

खेती की विधि–

माध्यम तैयार करने के लिए भूसे को 24 घंटे तक के लिए भिगो कर 2–3 घंटे तक उबाला जाता है। अतिरिक्त पानी को निथार एवं ठंडा कर भूसे में 5 प्रतिशत की दर से गेहूँ का चोकर अच्छी तरह मिलाकर उसमें 4 प्रतिशत की दर से बीजाई की जाती है। बीजाई किये हुए माध्यम को पालीथीन के बैगों में भरकर 20^0–30^0 से.ग्रे. तापमान पर 20–40 दिन तक रखा जाता है। स्पान के माध्यम में फैलने के बाद दो वर्ष पुरानी गोबर की खाद को शोधित करके आवरण मृदा (4 सेमी.) बिछा दी जाती है तथा तापमान 30^0 से.ग्रे. से अधिक रखा जाता है। आवरण मृदा बिछाने के बाद फसल में प्रतिदिन दो बार पानी दिया जाता है। आवरण मृदा बिछाने के 10–12 दिन बाद मशरूम निकलना प्रारम्भ होते है जो कि 5–6 दिन बाद तोड़ने योग्य हो जाते है। प्रति किग्रा. भूसे से 500–600 ग्राम तक मशरूम प्राप्त किये जा सकते हैं। इस मशरूम को उगाने का मुख्य लाभ यह है कि यह ग्रीष्म ऋतु में 35^0 से.ग्रे. पर भी उगाया जा सकता है जबकि *वालवेरियेल्ला* के अलावा अन्य मशरूम नही उगाये जा सकते हैं तथा इसको तुड़ाई के बाद कमरे के तापक्रम पर अन्य मशरूम की तुलना में सबसे अधिक समय तक रखा जा सकता है। मशरूम को ताजा उपयोग करने के अतिरिक्त धूप में सुखाकर, डिब्बाबन्दी

द्वारा अथवा अचार बनाकर लम्बे समय तक रखा जा सकता है।

3. बटन मशरूम (अगेरिकस बाईस्पोरस)–

प्रजातियाँ : *अगेरिकस बाइस्पोरस*

उपयुक्त समय : अक्टूबर से मार्च

आवश्यक तापक्रम एवं आर्द्रता : 15^0–25^0 से.ग्रे. एवं 80–85 प्रतिशत

इस मशरूम की खेती के लिये विशेष प्रकार से बनाई कम्पोस्ट, शुद्ध स्पान व अनुकुल तापक्रम एवं आर्द्रता की आवश्यकता होती है।

खेती की विधि–

कम्पोस्ट–

कम्पोस्ट कृत्रिम ढंग से बनाया गया वह माध्यम है, जिससे मशरूम की कायिक संरचना भोजन प्राप्त कर अपने फलनकाय के रूप में मशरूम पैदा करती है अतः कम्पोस्ट बनाने के पीछे मशरूम को उचित भोजन सामग्री उपलब्ध कराना निहित है। कम्पोस्ट बनाने हेतु पक्के फर्श अथवा विशेष कम्पोस्टिंग शेड उपयोग में लाये जाते है। कम्पोस्ट बनाने की दो विधियाँ हैं।

(1) दीर्घ अवधि विधि–

इस विधि द्वारा कम्पोस्ट बनाने में 28 दिन लग जाते है। और इस अवधि में 8 पल्टाई की जाती है। दीर्घ अवधि विधि से कम्पोस्ट बनाने हेतु निम्नलिखित सूत्र प्रयोग में लायें।

गेंहूँ का भूसा–1000 किग्रा., अमोनियम सल्फेट एवं कैल्सियम अमोनियम नाइट्रेट–30 किग्रा., सुपर फास्फेट–10 किग्रा., पोटाश–10 किग्रा., यूरिया–10 किग्रा, जिप्सम. 100 किग्रा., गेंहूँ का चोकर– 50 किग्रा., फ्यूराडान. 500 ग्राम।

कम्पोस्ट बनाना आरम्भ करने से 48 घंटे पूर्व भूसे की पतली तह पक्के फर्श पर बिछा कर उसे अच्छी तरह उलट–पलटकर पानी के फौव्वारे से तर कर दें।

आरम्भ या शून्यः इस अवस्था में भूसे में नमी की मात्रा 75 प्रतिशत होनी चाहिए। इस नमी युक्त भूसे में चोकर, कैल्शियम, यूरिया, म्यूरेट आफ पोटाश, तथा सुपर फॉस्फेट अच्छी तरह मिला देते हैं। अब लकड़ी के पूर्व निर्मित तख्तों की सहायता से भूसे का लगभग 1.5 मी0 चौड़ा तथा 1.25 मी0 ऊचाँ किसी भी लम्बाई का ढेर बनायें। ढेर बनाने के पश्चात् लकड़ी के तख्तों को ढेर से अलग कर दें। चौबीस घंटे के भीतर ढेर का भीतरी तापक्रम 70–75^0 से.ग्रे. तक होना चाहिए। इस ढेर की नमी बनाये रखने के लिए एक या दो बार बाहरी सतह पर पानी का छिड़काव करें।

पहली पलटाईः छठे दिन ढेर के वाह्य भाग को (15 सेमी. अन्दर तक का) निकाल कर एक जगह फर्श पर फैला दें, शेष भाग को दूसरी जगह फर्श फैला दें। अब बाहरी भाग के कम्पोस्ट को अन्दर डालकर व भीतरी भाग के कम्पोस्ट को बाहर डालकर लकड़ी के तख्तों की सहायता से पुनः ढेर बनाकर तख्तों को अलग कर दें।

दूसरी पलटाईः दसवें दिन बाहरी व भीतरी भाग को अलग करके बाहरी भाग पर अच्छी तरह पानी का छिड़काव करके ढेर को इस तरह बनायें कि बाहरी भाग ढेर के भीतर व भीतरी भाग ढेर के बाहर पहुँच जाये।

तीसरी पलटाईः तेरहवें दिन पूर्व की भाँति पल्टाई व ढेर का निर्माण करें व जिप्सम मिला दें।

चौथी पलटाईः सोलहवें दिन पूर्व की भाँति पल्टाई व ढेर का निर्माण करें।

पाचँवीं पलटाईः उन्नीसवें दिन पूर्व की भाँति पल्टाई ढेर का निर्माण करें।

छठी पलटाईः बाइसवें दिन पूर्व की भाँति पल्टाई ढेर का निर्माण करें व फ्यूराडान मिला दें।

सातँवी पलटाईः पच्चीसवें दिन यदि कम्पोस्ट अमोनिया गैस मुक्त है तो कम्पोस्ट बीजाई के लिए तैयार है अन्यथा अट्ठाइसवें दिन करें तथा बीजाई 30 वें दिन करें।

2. अल्प अवधि विधि– इस विधि द्वारा कम्पोस्ट तैयार करने की प्रक्रिया दो चरणों क्रमशः आउट डोर कम्पोस्टिंग व इन डोर कम्पोस्टिंग में पूरी की जाती है। इस प्रकार से बनायी गयी कम्पोस्ट की पैदावार बहुत अच्छी होती है और बीमारियों तथा कीटों का प्रकोप बहुत कम होता है।

सूत्र–

गेहूँ का भूसा	:	1000 किग्रा.
मुर्गी की खाद	:	600 किग्रा.
यूरिया	:	15 किग्रा.
गेहूँ का चोकर	:	60 किग्रा.
जिप्सम	:	60 किग्रा.

आउट डोर कम्पोस्टिंग– गेहूँ के भूसे में कुक्कुट खाद मिलाकर अच्छी प्रकार भिगोकर 45 सेमी. ऊँचा ढेर प्लेटफार्म पर सात दिन के लिए बनाते हैं। इसी बीच इसकी एक पलटाई 4 दिन बाद दे देते हैं। इसके पश्चात् सातवें दिन गेहूँ का चोकर, जिप्सम व यूरिया गीले भूसे में अच्छी प्रकार मिलाकर 125–150 सेमी. ऊँचा 125–150 सेमी. चौड़ा तथा लम्बाई स्थान की उपलब्धता के अनुसार रख कर ढेर बनाया जाता है, जिसका भीतरी तापक्रम (24 घंटे के अन्दर) 70–75^0 से. ग्रे. तक चला जाता है।

चौथे दिन कम्पोस्ट ढेर की प्रथम, छठे दिन द्वितीय, आठवें दिन तृतीय पलटाई तथा 10वें दिन कम्पोस्ट को पास्चुरीकरण हेतु टनेल में भर देते हैं। ध्यान रखें जिप्सम तीसरी पलटाई में मिलाते हैं।

इन डोर कम्पोस्टिंग–

प्रथम दिन– कम्पोस्ट को पास्चुरीकरण कक्ष में भरने के बाद कक्ष के दरवाजे व हवादान को बंद कर दें। ब्लोअर (पंखे) को चलाकर कम्पोस्ट का तापक्रम 40–45^0 सें.ग्रे. पर ले आयें। ध्यान रहे चैम्बर के भीतर हवा व कम्पोस्ट के तापक्रम में 1–3^0 से.ग्रे. से अधिक होने पर ब्लोअर को और समय दें।

दूसरे दिन– कम्पोस्ट का तापक्रम वाष्प द्वारा धीरे–धीरे (1–3^0 सें.ग्रे. प्रति घंटा) बढ़ाकर 58–60^0 सें.ग्रे. पर लायें तथा इस तापमान को 6–8 घंटे तक रोके रखें। वाष्प की प्रविश्टि बंद कर हवा डैम्पर को 15–20 प्रतिशत खोलकर कम्पोस्ट का तापमान 48–52^0 सें.ग्रे. लायें। साथ ही अमोनिया रिलीज 5–10 प्रतिशत खोले रखें।

तीसरे से पाँचवें दिन– इस बीच कम्पोस्ट का तापक्रम 48–52^0 सें.ग्रे. तथा हवादान को 20 प्रतिशत खोलकर शुद्ध हवा कम्पोस्ट कन्डीशनिंग के लिए दें और अमोनिया रिलीज डैम्पर खोले रखें।

छठे दिन– कम्पोस्ट को पास्चुरीकरण कक्ष से बीजाई कक्ष में ले जायें तथा कम्पोस्ट का तापक्रम 20–25^0 सें. ग्रे. आने से पूर्व बीजाई कर दें।

अच्छी प्रकार तैयार कम्पोस्ट गहरे भूरे रंग की, अमोनिया गंध रहित, पी.एच. 7.5, 68–72 प्रतिशत नमी तथा 2.2 प्रतिशत नत्रजन युक्त होती है।

बीजाई–

बीजाई (स्पानिंग) में स्पान मिलाने के ढंग को कहते है। प्रति क्विंटल तैयार कम्पोस्ट में 500 ग्राम से 750 ग्राम स्पान (0.5–7.5 प्रतिशत की दर से) अच्छी प्रकार मिलाया जाता है। बीजाई की हुई कम्पोस्ट को सेल्फ अथवा पालीथीन बैग में हल्का दबा कर भरना चाहिए। सेल्फ में 80–100 किग्रा./मीटर^3 तथा बैग में 10–15 किग्रा. कम्पोस्ट भरते है।

बीजाई की हुई कम्पोस्ट को निंजीवीकृत अखबार द्वारा ढक देते है। अखबारों को प्रयोग में लाने से एक सप्ताह पूर्व फार्मलीन घोल से अथवा वाष्प द्वारा 20 पौण्ड पर आधा घंटा निर्जीवीकृत कर लेना चाहिए। यदि पालीथीन बैग इस्तेमाल कर रहें है, तो बैग को ऊपर से मोड़कर बन्द कर दें। बीजाई के बाद फसल कक्ष का तापक्रम 22–23^0 से.ग्रे. व अपेक्षित आर्द्रता 85–90 प्रतिशत बनाये रखना चाहिए। दिन में दो बार हल्के पानी का छिड़काव अखबार के ऊपर तथा फसल कक्ष की फर्श व दीवार पर करें।

बीजाई के छः–सात दिन पश्चात् धागेनुमा फफूँदी की वृद्धि दिखाई देने लगती है, जो 12–15 दिन में कम्पोस्ट की सतह को सफेद कर देते है। बिछे हुए अखबार के ऊपर फैली हुई फंफूदी को आवरण मृदा द्वारा ढक दिया जाता है।

आवरण मृदा (केसिंग स्वायल):

आवरण मृदा का तात्पर्य है कम्पोस्ट पर फैली हुई फफूँदी के ऊपर मृदा मिश्रण का स्तर बिछाना, जिससे नमी बनाये रखने एवं गैस के आदान प्रदान में कवक को सहायता मिलती रहे। आवरण मृदा बीमारियों तथा कीड़ो से मुक्त एवं इसका पी0 एच0 मान 7.5 से 7.8 होना चाहिए। अपने देश में निम्नलिखित सामग्री से आवरण मृदा मैयार की जाती है।

1. गोबर की खाद (दो साल पुरानी) ½ बगीचे की मिट्टी (2:1)
2. गोबर की खाद (दो साल पुरानी) ½ स्पेन्ट कम्पोस्ट (1:1)

आवरण मृदा का पास्चुरीकरण:

आवरण मृदा को फार्मलीन द्वारा शोधित किया जा सकता है। आवरण मृदा का मिश्रण पक्के फर्श पर

ढेर के रूप में रख कर उसमें 4 प्रतिशत फार्मलीन का घोल पानी में बनाकर अच्छी तरह मिला लें। तदोपरान्त ढेर को पालीथीन चादर को हटाकर आवरण मृदा को उलट पलट कर फार्मलीन की गंध उड़ने के लिये छोड़ देते है। इस प्रकार 3–4 दिन तक आवरण मृदा को उलटते पलटते रहते है और संपूर्ण रूप से ढेर को फार्मलीन गंध रहित कर लेते है। आवरण मृदा का शोधन वाष्प द्वारा 65^0 से.ग्रे. पर 6–8 घंटे करना अधिक उपयोगी है।

आवरण मृदा का प्रयोगः

आवरण मृदा की चार सेमी. मोटी सतह कवकजाल युक्त कम्पोस्ट के ऊपर बिछा दिया जाता है आवरण मृदा बिछाने के पश्चात् 2 प्रतिशत फार्मलीन घोल का छिड़काव इस पर करना चाहिए, तथा फसल कक्ष का तापक्रम 15–18^0 से.ग्रे. तथा आर्द्रता 80–85 प्रतिशत कर देना चाहिए। साथ ही समुचित वायु संचार का इस अवस्था में प्रबन्ध करना आवश्यक होता हैं। आवरण मृदा के ऊपर से दिन में एक या दो बार पानी का हल्का छिड़काव करना चाहिए।

फसल की चुनाईः

आवरण मृदा बिछाने के 12 से 18 दिन पश्चात् मशरूम निकलना शुरू हो जाता है तथा 50–60 दिन तक निरन्तर निकलते रहते है। दिन में एक अथवा दो बार मशरूम को टोपी खुलने के पहले जिसकी परिधि एक से डेढ़ इंच हो, अंगुलियों के सहारे ऐंठ कर निकाल लेना चाहिए। मशरूम खुल जाने तथा छतरी बन जाने पर मशरूम की गुणवत्ता एवं बाजार मूल्य कम हो जाता है।

उपज–

दीर्घ अवधि से बनाई गयी प्रति 100 किग्रा. कम्पोस्ट से 14 से 16 किग्रा. मशरूम व इतनी ही मात्रा में पास्चुरीकरण कम्पोस्ट से 18 से 22 किग्रा. मशरूम की पैदावार प्राप्त हो जाती है।

◆◆◆

मधुमक्खी पालन

डा० दुर्गेश शुक्ला
वरिष्ठ शोध अध्येता (कीट विज्ञान)
गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल : durgeshento@gmail.com

इतिहास–

लगभग 300 ईसा पूर्व अरस्क मधुमक्खियों के डंक मारने वाले तंत्र और मधुमक्खी के जहर के शक्तिशाली गुणो को संदर्भित करता है, जिसका उल्लेख आपने अपनी पुस्तक हिस्टोरिया एनिमिया में किया है। भारतीय उपमहाद्वीप में हजारों साल पूर्व से मधुमक्खी और शहद उपयोग का वर्णन मिलता है। हमारे देश में वेद, रामायण, कुरान में शहद के विभिन्न उपयोगों का उल्लेख किया गया है। पूर्व राजाओं और सुल्तानो ने मधुमक्खी को महिमा के प्रतीक के रूप में इस्तेमाल किया है। लोकप्रिय महाकाव्य रामायण में एक मधुबन का शाब्दिक अर्थ शहद के जंगल का वर्णन है, जिसकी खेती सुग्रीव ने की थी। महाकाव्य महाभारत में मथुरा के निकट एक अलग मधुबन का उल्लेख किया गया है जहाँ कृष्ण और राधा मिला करते थे भारत को शहद और दूध की भूमि कहा गया है। यहाँ के जंगलों का उपयोग मधुमक्खी पालन के लिए किया जाता था।

मधुमक्खियां और शहद–1

1. माधवा संक्षिप्ततां सरघेण धनावं।।
   अर्थ–दूध युक्त पेय मधुमक्खी शहद से संतृप्त किया गया है (ऋग्वेद)

मधुमक्खियां और शहद–2

2. इमेही ते ब्रह्मकूंट सुते सा माधौ न मक्षे आसते।।
   अर्थ–यहाँ आपके उपासक मधुमक्खियों की तरह आपकी भेंट के साथ प्रतीक्षा कर रहे है।

मधुमक्खियां और शहद–3

श्विना सरघेण मा मधुनाष्टम शुभस्पति ।। याथा वर्कस्वती वाकामवादनि जनम अनु।।

अर्थ–अच्छे के दाता अश्विन, मुझे मधुमक्खी के शहद से अभिषेक करें, ताकि मैं लोगों को गौरवशाली शब्दों द्वारा संबोधित कर सकूं।

आम भारतीय मधुमक्खी को ईख और घास से बने छत्तों में पाला जाता था। यह पहला कदम छत्ता था। लॉग और पॉट हाइव्स का भी इस्तेमाल किया गया था। उन्हें या तो एक क्षैतिज स्थिति में लटका दिया गया था या इसी तरह दीवारों में रखा जाता था। लॉग हाइव्स का इस्तेमाल एक्स–टाइप या चार–पैर वाले स्टैंड पर भी किया जाता था।

मध्य पाषाण काल और उसके बाद की विभिन्न शिला चित्रकारी मध्य प्रदेश और पचमढ़ी क्षेत्रों में पाई जाती है। इन चित्रों में मध्यपाषाण कालीन रॉक–पेंटिंग में मुख्य रूप से एपिस डोरसॅटा और एपिस मेलिफेरा प्रजातियों की मधुमक्खियो के छत्ते, शहद के शिकारियों को काम करते हुए दिखाती है। माना जाता है कि ये पेंटिंग 6,000 साल पहले की है।

सन् 1774 में भारत में पहली बार डाक तार विभाग के एक ब्रिटिश अधिकारी डगलस द्वारा पुस्तक प्रकाशित हुई थी। मधुमक्खी पालन के क्षेत्र में पहला सफल प्रयास केरल में न्यूटन द्वारा किया गया था, जब उन्होने एक विशेष रूप से बनाए गए कृत्रिम छत्ते से वर्ष 1911–12 के दौरान ग्रामीण लोगों को मधुमक्खी पालन से शहद निर्मित करने का प्रशिक्षण दिया। यह छत्ता **न्यूटन हाइव** के नाम से लोकप्रिय हुआ। कुछ अवधि पश्चात् भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के द्वारा 1945 में पंजाब में 'मधुमक्खी पालन अनुसंधान केन्द्र' स्थापित किया गया।

वर्ष 1962 में खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग ने पुणे में केन्द्रीय मधुमक्खी अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान स्थापित किया गया। कृषि वैज्ञानिक मलिक वर्ष 1944 के अनुसार ऋग्वेद, जो दुनिया का सबसे पुराना ग्रंथ है, में मधु, जिसका अर्थ शहद है, शब्द का उपयोग 300 बार किया गया है। श्री मलिक ने कथन के समर्थन में कई

उद्धकरण उद्धत किए है, जिनमें से कुछ इस प्रकार है।

- मधुमक्खी का कोई नही अपवाद, यही तो है किसानो की मुफ्त की खाद।
- फलों, सब्जियों, तिलहनी, दलहनी आदि फसलों की पैदावार में वृद्धि हेतु मधुमक्खी पालन अपनाये।
- जैव–विविधता को बनाए रखने हेतु मधुमक्खी पालन करें।
- फसलों की परागण समर्थन से उत्पादन बढ़ाकर तथा शहद और अन्य मधुमक्खी उत्पादों के उत्पादन द्वारा किसानों/मधुमक्खी पालको की आय बढ़ाने में मददगार होता है।
- ग्रामीण क्षेत्र में आजीविका के स्त्रोत एवं रोजगार के अवसर बढ़ाता है।
- अपनी एवं राष्ट्र की समृद्धि के लिए मधुमक्खी पालन अपनाये।
- बी पोलन, रॉयल जैली, मोम, प्रपोलिस, कोम्ब हनी, बी वेनम आदि बहुमूल्य पदार्थ भी मधुमक्खी पालन से प्राप्त किये जाते है।

मधुमक्खी कालोनी–

मधुमक्खी का निवास छत्ते पर होता है। वे समूह बनाकर रहती है। मधुमक्खी के समूह में ज्यादातर मादा मधुमक्खियां होती है, जो श्रमिक मधुमक्खियाँ होती है और इसके साथ ही कुछ नर मधुमक्खी भी पाई जाती है। छत्ते में एक रानी मधुमक्खी होती है। यह मनुष्य की तरह ही कॉलोनी बनाकर रहती है।

मोम मधुमक्खियों के उदर में बनी ग्रन्थियों से निकलता है। इनका छत्ता उस जगह होता है, जहाँ फूल ज्यादा होते है एक कॉलोनी में करीब 50 हजार मधुमक्खियाँ रहती है। इनकी संख्या कम या ज्यादा हो सकती है। मधुमक्खी के द्वारा जिस रस को फूलों से लाया जाता है, उसे मधुरस कहते है। इसमें पानी ज्यादा मात्रा में होता है। मधुमक्खी बहुत संवेदनशील होती है। यह खुशबू को पहचान सकती है। इसमें करीब 170 से ज्यादा सूंघने वाली ग्रंन्थियां होती है। मधुमक्खी को एक चम्मच शहद इक्कठा करने के लिए हजारों लाखों फूलों का रस लाना पड़ता है। मधुमक्खी की आँत में क्रोप (crop) नामक एक भाग होता है। जिसे शहद उदर कहते है, इसमें फूलों का रस इक्कठा होता है। मधुमक्खी की लार में पाये जाने वाले एंजाइम उस रस को शहद में बदल देते है। कुछ समय तक शहद उदर में संग्रह करने के बाद मधुमक्खी उस रस को शहद कोष में एकत्रित कर देती है, जो शहद कहलाता है। शहद कोष्ठको में, इसे पानी की मात्रा को कम किया जाता है तथा इस रस में पानी की मात्रा बहुत कम होती है।

- केवल मधुमक्खी ही ऐसी कीट है जो मानव उपयोगी खाद्य पदार्थ बनाती है।
- मधुमक्खी 18–19 किमी. और अधिकतम 45 किमी. प्रति घण्टा की रफ्तार से उड़ सकती है। अतः मधुमक्खी को 453 ग्राम शहद बनाने के लिए लगभग 2,70,000 किमी. की यात्रा तीन बार करनी पड़ती है।
- शहद में कार्बोहाइड्रेट एवं जल की मात्रा क्रमशः 80 एवं 20 प्रतिशत होती है।
- मधुमक्खी के उदर भाग के निचले हिस्से में 8 जोड़ी ग्रन्थियाँ होती है, जिससे वह मोम का उत्पादन करती है।
- प्रति 453 ग्राम मोम उत्पादित करने के लिए एक मधुमक्खी को 6400–8000 ग्राम शहद का उपयोग करना पड़ता है।
- वाह्य वातावरण का तापमान 43–45 अथवा –40 सेन्टीग्रेट होने पर भी मधुमक्खियाँ अपने छत्ते के मध्य में 33–34 डिग्री सेन्टीग्रेट तापमान बनाए रखती है।
- बसंत एवं ग्रीष्म ऋतु के दौरान एक अच्छी कालौनी में 40,000 से 60,000 मधुमक्खियाँ होती है।
- एक रानी मधुमक्खी का जीवन काल लगभग 2 से 3 साल का होता है ग्रीष्म ऋतु के महीने में एक रानी मक्खी लगभग 2,500 अण्डे देती है।
- एक रानी मधुमक्खी अपने 3–4 साल के जीवन काल में प्रतिदिन लगभग 800 से 1500 अण्डे देती है। प्रतिदिन दिये गये लगभग कुल अण्डे का वजन रानी मधुमक्खी के वजन के बराबर होता है।
- श्रमिक मधुमक्खी अपने जीवन काल में एक छोटे चम्मच का 12 वाँ हिस्सा शहद बनाती है।
- मधुमक्खी एक घंटे में लगभग 45 किलो मी0 तक उड़ सकती है।

- एक मधुमक्खी एक संग्रह यात्रा के दौरान लगभग 50 से 100 फूलो का विचरण करती है।
- मधुमक्खी बहुत अच्छी पर्यावरण हितैषी परागणकर्ता है।
- किण्वित (खमीरीकरण) शहद को मिआड बोला जाता है, जिसका प्रयोग पुराने जमाने के पेय पदार्थो के रूप में होता था।
- मधुमक्खी प्रति मिनट लगभग 11,400 बार अपने पंख को फडफडाती है, जिससे एक अलग प्रकार की भनभनाहट उत्पन्न होती है।
- डंक मारने का कार्य केवल मादा मधुमक्खी करती है। नर मधुमक्खी के पास कोई डंक नही होता है।
- मधुमक्खी में संचार का माध्यम एक नष्त्य श्रंखला के द्वारा होता है।
- मधुमक्खियां मनुष्य के आहट को पहचानने की क्षमता रखती है।
- मधुमक्खी का प्राथमिक मूल्य फसलो के परागणकर्ता के रूप में है।
- रानी मधुमक्खी 1 से 2 दिन की अवधि में 16–17 नर मधुमक्खियों के साथ संभोग कर सकती है।
- मधुमक्खी का मस्तिष्क आकार में अंडाकार है और एक तिल के आकार के बराबर है, फिर भी इसमें चीजों को सीखने और याद रखने की उल्लेखनीय क्षमता है। उदाहरण के लिए, यह अपने द्वारा तय की गयी यात्रा की गणना करने में सक्षम है।
- मधुमक्खियों के एक समूह में 20,000 से 60,000 मधुमक्खियों और एक रानी शामिल है। मधुमक्खियाँ मादा होती है, लगभग 6 सप्ताह तक जीवित रहती है और सभी काम करती है।
- रानी मधुमक्खी 5 साल तक जीवित रह सकती है और वह एकमात्र मधुमक्खी है जो अण्डे देती है। मार्च–अप्रैल के महीनों में वह सबसे व्यस्त रहती है, और प्रति दिन 2500 अण्डे देती है।
- मधुमक्खियां नृत्य करके एक दूसरे के साथ संवाद किया करते है।
- श्रमिक मधुमक्खियों की तुलना में बढ़े नर मधुमक्खियाँ जिन्हें ड्रोन भी कहा जाता है, के पास कोई डंक नही होता, वे कोई काम नही करते और सिर्फ संभोग करते है।

शहद व अन्य मधुमक्खी उत्पादों जैसे रॉयल जैली, मोम, प्रपोलिस, छत्ता शहद, बी वेनम आदि

रॉयल जैली

- रानी मधुमक्खी को एक खास प्रकार का पदार्थ खाने को दिया जाता है, जिसे रॉयल जैली कहते है।
- युवा मधुमक्खियों द्वारा स्त्रावित एसेडिक मीठे स्वाद वाली रॉयल जैली एक स्वास्थवर्द्धक खाद्य पदार्थ है।
- रॉयल जैली, तंत्रिका तंत्र को दुरस्त करती है और गठिया को दूर करने में फायदेमंद होती है।
- एंटीऑक्सिडेंट से भरपूर रॉयल जैली एंटी एजिंग का काम करती है।
- रॉयल जैली रक्तचाप को कम करके आपके हृदय और संचार प्रणाली की रक्षा करती है।
- पोषक तत्वों से भरपूर रॉयल जैली कोशिका में वृद्धि और प्रजनन में सहायक होती है इसमें विटामिन 15 प्रतिशत, प्रोटीन 16 प्रतिशत, चीनी 3–6 प्रतिशत और 3 प्रतिशत के करीब विटामिन, साल्ट और अमीनो एसिड पाए जाते हैं।
- रॉयल जैली फ्लेवोनोइड्स और कार्बनिक यौगिक से समृद्ध है, जो इम्यूनिटी बढ़ाने में मदद करते है।

शहद–

- शहद में एंटीसेप्टिक गुण है और ऐतिहासिक रूप से घावों के लिए ड्रेसिंग और जलने और कटने पर प्राथमिक चिकित्सा उपचार के रूप में उपयोग किया जाता था।
- शहद में प्राकृतिक फल षर्करा–फ्रुक्टोज और ग्लूकोज होते है, जो जल्दी पच जाते हैं। यहीं कारण है कि, खिलाड़ी और एथलीट शहद का उपयोग प्राकृतिक ऊर्जा को बढ़ावा देने के लिए करते है।
- मधुमक्खियाँ 150 मिलियन वर्षो से एक ही तरीके से शहद का उत्पादन कर देती है।
- मधुमक्खी ही एकमात्र ऐसी कीट है जो मनुष्य द्वारा खाए जाने वाले प्रत्यक्ष भोजन का उत्पादन करता है।
- शहद अविश्वनीय रूप से बहुत लम्बे समय तक स्वादिश्ट बना रहता है।

मौनपालन हेतु वार्षिक भोजन स्रोत

क्र.सं.	माह	फूल वाले फसल
1.	जनवरी	सरसों, तोरिया, कुसुम, यूकेलिप्टिस, कटहल, अमरूद, चना, मटर, अनार इत्यादि
2.	फरवरी	सरसों, तोरिया, सहजन, कुसुम, यूकेलिप्टिस, कटहल, शीशम, धनिया, प्याज, अमरूद, चना, मटर, अनार इत्यादि
3.	मार्च	कुसुम, सूर्यमुखी, अलसी, बरसीम, अरहर, शीशम, धनिया, नीम, आँवला, नीबू, जंगली जलेबी, मेथी इत्यादि
4.	अप्रैल	मक्का, सूर्यमुखी, अरण्डी, बरसीम, रामतिल, भिन्डी, सेम, तरबूज, जामुन, लौकी, नीम, अमलतास इत्यादि
5.	मई	मक्का, सूर्यमुखी, बरसीम, इमली, खीरा, तरबूज, खरबूज, लौकी, करंज, अर्जुन, अमलतास इत्यादि
6.	जून	मक्का, सूर्यमुखी, बरसीम, इमली, खीरा, तरबूज, खरबूज, लौकी, बबूल, अर्जुन, अमलतास इत्यादि
7.	जुलाई	ज्वार, मक्का, बाजरा, करेला, तरबूज, खरबूज, लौकी, भिन्डी, पपीता इत्यादि
8.	अगस्त	ज्वार, मक्का, खीरा, सोयाबीन मूंग, धान, बबूल, आँवला, कचनार, भिन्डी, पपीता इत्यादि
9.	सितम्बर	बाजरा, सनई, अरहर, सोयाबीन, मूंग, धान, कचनार, भिन्डी, बेर, रामतिल, बरबट
10.	अक्टूबर	सनई, अरहर, तिल, धान, कचनार, अरण्डी, यूकेलिप्टिस, बेर, बबूल इत्यादि
11.	नवम्बर	सरसों, तोरिया, सहजन, मटर, बेर, अमरूद, यूकेलिप्टिस, बोटलब्रश इत्यादि
12.	दिसम्बर	सरसों, तोरिया, राई, चना, मटर, अमरूद, यूकेलिप्टिस इत्यादि

- मधुमक्खियों की भिनभिनाहट उनके पंखो द्वारा की गई ध्वनि है, जो प्रति मिनट 11,400 बार करती है।
- जब एक मधुमक्खी रस का अच्छा स्त्रोत पाती है तो वह वापस छत्ते में उड़ जाती है और अपने दोस्तों को नष्त्य के द्वारा दिखाती है कि रस का स्त्रोत कहाँ पर है। इसे वैगल डांस के रूप में जाना जाता है।
- शहद का रंग फूल पर निर्भर करता है, जिनसे मधुमक्खियाँ रस चूसती हैं।
- हर छत्ते में तीन प्रकार की मधुमक्खियाँ होती है। एक मादा मक्खी जिसे रानी भी कहते हैं, दूसरा नर मक्खी और तीसरा फल फूलों से रस चूस कर एकत्रित करने वाली श्रमिक मधुमक्खियाँ।
- आयुर्वेद चिकित्सा में शहद को एक उत्तम औषधि माना गया है। यह गले की खरास पाचन संबन्धी समस्याएं और त्वचा रोगो में अत्यधिक लाभकारी होता है।
- मधुमक्खी के डंक के जहर का उपयोग कई बीमारियों के उपचार के रूप में किया जाता है, जिसमें गठिया और उच्च रक्तचाप शामिल है।
- शहद का रंग जितना गहरा होगा उसमें एंटिऑक्सिडेंट गुणों की मात्रा उतनी अधिक होगी।
- हमारे द्वारा खाए जाने वाला लगभग एक तिहाई भोजन मधुमक्खी के परागण का ही परिणाम है क्योंकि परागण की वजह से ही फूल से फल बनते हैं।
- मधुमक्खी एकमात्र ऐसी मक्खी कीट है, जो डंक मारने के बाद मर जाती है।
- पाषाण युग की गुफाओं में मधुमक्खी पालन के प्राचीन चित्र मिले है।
- प्राचीन मिश्र में लोग शहद से अपने करों का

भुगतान करते थे।

- एक श्रमिक मधुमक्खी अपने शरीर के वजन के 80 प्रतिशत के बराबर पराग ले जा सकती है।
- शहद में फल शर्करा की मात्रा ज्यादा होने की वजह से यह चीनी से भी 25 प्रतिशत ज्यादा मीठा होता है।
- शहद अकेला ऐसा भोजन है जिसके अन्दर Pinocembrin नाम का एन्टीऑक्सीडेन्ट पाया जाता है जो दिमाग की गतिविधियाँ बढ़ाने में सहायक है।

मोम–

चीन की एक बहुत प्रसिद्ध औषधि की किताब 'दि शेन हॉंग बुक ऑफ हर्बस' में मधुमक्खी द्वारा निर्मित मोम की सर्वोपरि औषधीय संघटक के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है।

इतिहास में प्राचीन इजिपसियन्स, ग्रीस, रोम एवं चीन द्वारा मोम से बनी मोमबत्तियों के प्रयोग का वर्णन है।

◆◆◆

मत्स्य उत्पादन तकनीकी

डा० आशुतोष मिश्रा
सह प्राध्यापक (मत्स्य विज्ञान)
गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल : ashutosh36in@yahoo.co.in

पोषण सुरक्षा, कृषि निर्यात तथा रोजगार की दृष्टि से मत्स्य पालन खाद्य उत्पादन का महत्वपूर्ण क्षेत्र है, जिसमें लगभग 1.5 करोड लोग कार्य करते है। हमारे देश के विभिन्न जल क्षेत्रों में विश्व की कुल मत्स्य विविधता की 10 प्रतिशत मछलियाँ पायी जाती हैं। वर्तमान में देश की वार्षिक मछली उत्पादन 141.6 लाख टन है, जो आवश्यकता की दृष्टि से काफी कम है। मत्स्य उत्पादन की वैज्ञानिक तकनीकों का समावेश करके उपलब्ध जल श्रोत्रो से देश का मत्स्य उत्पादन काफी हद तक बढ़ाया जा सकता है। प्रस्तुत लेख में पर्वतीय क्षेत्रों से वैज्ञानिक तकनीकी का प्रयोग करके मत्स्य पालन करने हेतु विशेष सलाह दी गयी है, जिससे मत्स्य पालक तालाबों से समुचित मात्रा में मत्स्य उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।

पर्वतीय राज्य उत्तराखण्ड अनेक प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण है। अन्य संसाधनो के साथ–साथ राज्य में नदियों, झीलों, जलाशयों, अनगिनत छोटे बड़े नालो, तालाबों इत्यादि के रूप में प्रचुर मात्रा में जल संसाधन उपलब्ध हैं जो सिंचाई, जल विद्युत, पेयजल तथा मत्स्य संवर्द्धन हेतु उपयोग में लाये जाते है। राज्य की सीमा के अन्तर्गत बहने वाली गंगा, यमुना, काली रामगंगा आदि नदियॉ धार्मिक महत्ता के साथ–साथ निर्मल जल तथा अठखेलियॉ करती हुयी महत्वपूर्ण मत्स्य प्रजातियों के लिए विश्वविख्यात हैं। सुनहरी महाशीर, स्नोट्राउट इस क्षेत्र की मुख्य मत्स्य प्रजातियॉ है जिसमें सुनहरी महाशीर की गणना विश्व भर में आखेट योग्य प्रजातियों में की जाती हैं।

पर्वतीय क्षेत्रों के प्राकृतिक जल स्रोतो में उपलब्ध मत्स्य सम्पदा का आवास क्षेत्रों में प्रतिकूल परिवर्तनों तथा अंधाधुन्ध व अवैज्ञानिक दोहन के कारण निरन्तर ह्रास हो रहा है। इसके कारण यहॉ की बड़ी नदियों तथा झीलों में पायी जाने वाली बड़े आकार की सुनहरी महाशीर तथा अन्य प्रजातियॉ अब अपना स्वरूप खो चुकी हैं। क्षेत्र की प्रमुख प्रजातियों के साथ विध्वंसक दोहन के कारण छोटी–छोटी, कम महत्वपूर्ण प्रजातियॉ भी नष्ट होती जा रही है।

देश के पर्वतीय क्षेत्रों की विशिष्ट भौगोलिक जलवायु व जैविक सम्पदा सम्बन्धित विभिन्नताएं जहॉ एक ओर इन्हें मन मोहक, दर्शनीय स्वरूप प्रदान करती हैं वहीं दूसरी ओर अनेक कठिनाइयों को भी जन्म देती है। इन्ही जटिलताओं के फलस्वरूप पर्वतीय क्षेत्र भौतिक व आर्थिक विकास में प्रायः पिछड़े रह जाते है जबकि इन क्षेत्रों में विकास की सम्भावनाओं से परिपूर्ण अपार प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध है फिर भी इनका वैज्ञानिक ढंग से सतत् व्यावसायिक उपयोग न हो पाने के कारण प्रचुर प्राकृतिक संसाधनों का राज्य को उचित लाभ नहीं मिल पा रहा है।

इन्ही कारणों से उत्तराखण्ड राज्य में मत्स्य उत्पादन अभी आशानुरूप नहीं हो पा रहा है, लेकिन यहॉ पर मत्स्य विकास की अपार सम्भावनाएं है। पर्वतीय क्षेत्र में समुद्रतल से लगभग 1500 मी0 तक की ऊँचाई वाले क्षेत्रो में जहॉ पानी की उपलब्धता पर्याप्त है, में विशेष रूप से विदेशी कार्प प्रजातियों जैसे– सिल्वर कार्प, ग्रास कार्प, एवं कामन कार्प का संग्रथित मत्स्य पालन किया जा सकता है तथा समुद्रतल से 1500 मी0 से अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों में ट्राउट इत्यादि का एकल पालन किया जा सकता है। पर्वतीय क्षेत्रों में अधिकांश भाग 1500 मी0 ऊँचाई वाले क्षेत्रों में आते है। अतः कार्प प्रजातियों का मिश्रित पालन ही सबसे उपयुक्त एवं लाभदायक हैं जिसका विस्तृत वर्णन प्रस्तुत लेख में दिया जा रहा है।

विदेशी कार्प प्रजातियों– सिल्वर कार्प, ग्रास कार्प व कामन कार्प में वातावरण के तापमान परिवर्तन के प्रति सहन क्षमता अत्यधिक है। ये मछलियॉ वृद्धि

की दृष्टि से मिश्रित मत्स्य पालन में विशेष रूप से सफल हुई हैं। इन प्रजातियों को एक साथ पालने पर उत्पादन में दो गुना वृद्धि प्राप्त हो जाती है।

विदेशी कार्प प्रजातियों का मिश्रित मत्स्य पालन–

इस पालन तन्त्र में तीन विदेशी कार्प प्रजातियों (सिल्वर कार्प, ग्रास कार्प एवं कामन कार्प) का एक साथ एक ही जलक्षेत्र में पालन किया जाता है, जिससे तालाब में उलब्ध सभी तरह के भोज्य पदार्थो और आवास का उपयोग हो सके।

चूँकि पर्वतीय क्षेत्रों में बड़े आकार के तालाब बनाने हेतु जमीन मिलना काफी कठिन है अतः उपयुक्त भूमि देखकर लगभग 100 मी0^2 के कच्चे या पक्के (सीमेन्ट) तालाब का निर्माण किया जा सकता है। जिसकी गहराई लगभग 2.0 मी0 हो। कच्चे तालाबो का निर्माण तभी करना चाहिए जब वहॉ पानी रूकता हो अन्यथा, पक्के तालाबो का निर्माण करना चाहिए तथा तल पर लगभग 6 इंच की परत तक मिट्टी डाल देनी चाहिए, जिससे पक्के तालाब में भी मछलियों हेतु प्राकृतिक वातावरण बनाया जा सके। तालाब में प्राकृतिक भोजन की पर्याप्त उपलब्धता हेतु खाद एवं चूने का निम्नानुसार प्रयोग करना चाहिए।

तालाब में खाद एवं चूने की मात्रा को आरम्भ में कुल मात्रा का आधा ही प्रयोग करना चाहिए तथा शेष बचे भाग को बॉटकर दो महीने के अन्तराल पर प्रयोग करना चाहिए। खाद, उर्वरक इत्यादि की प्रयोग की गई मात्रा एवं अवधि तालाब की स्थिति पर निर्भर करती है जो अलग–अलग क्षेत्रों के लिए अलग–अलग होती है। हमेशा प्रयास यह करना चाहिए कि पानी के जलीय गुण उत्तम हो (सारणी–2) तथा उसमें समुचित मात्रा में मछलियों के लिए प्राकृतिक भोजन उपलब्ध हो।

सारणी 2: मछली उत्पादन हेतु प्रमुख जलीय कारको का प्रमाप

क्र.स.	जलीय गुण	प्रमाप
1.	कुल क्षारीयता	80–150 मिग्रा/ली0
2.	पी.एच	6.9–8.6
3.	घुलित आक्सीजन	>5.0 मिग्रा0/ली0
4.	कार्बन डाई आक्साइड	>15.0 मिग्रा0/ली0
5.	अमोनिया	>0.02 मिग्रा0/ली0
6.	प्लवक	>2 मिली/100 ली0 जल

मत्स्य बीज संचय–

मिश्रित मत्स्य पालन तन्त्र से अधिक मत्स्य उत्पादन हेतु पाली जाने वाली मत्स्य प्रजातियों का संचय एक निश्चित मात्रा में ही करना चाहिए। प्रयोगों द्वारा सिद्ध हो चुका है कि मैदानी क्षेत्र के तालाबों में लगभग 4000 मत्स्य बीज (मत्स्य अंगुलिकाएँ)/एकड़ तालाब के लिए उपयुक्त है। चूँकि पर्वतीय क्षेत्र के तालाबों के जल में अत्यधिक मात्रा में आक्सीजन घुली होती है अतः इन तालाबों में मत्स्य बीज का संचय 2–4 गुना तक (200–400 अंगुलिकाएं/100 मी^{2}) बढ़ाया जा सकता है। किसी भी तालाब में मछली के बीज की संचय दर उस तालाब की उत्पादकता और अपनायी गयी तकनीक पर निर्भर करती है। यदि पानी की गुणवत्ता ठीक रहे, मछलियों के लिए प्रचुर मात्रा में प्राकृतिक भोजन उपलब्ध हो तो मत्स्य बीज की संचय दर बढ़ाई जा सकती है।

ठण्डे जल में मिश्रित मत्स्य पालन हेतु चयनित प्रजातियों सिल्वर कार्प, ग्रास कार्प एवं कामन कार्प का

सारणी 1: तालाब में प्रयोग हेतु जैविक खाद एवं चूने की मात्रा

क्र.स.	मिट्टी की श्रेणी	जैविक कार्बन की प्रतिशत मात्रा	गोबर की खाद की मात्रा (किग्रा/वर्ष/100 मी2)	चूने की मात्रा (किग्रा/वर्ष/100 मी2)
1.	उच्च	2% से अधिक	100–150	8–10
2.	मध्यम	1–2%	150–200	10–12
3.	निम्न	1% से कम	200–250	12–14

संचय संस्तुत अनुपात 4:3:3 में करना चाहिए। मछलियों की बढ़वार वातावरण के तापमान पर निर्भर करती है तथा तापमान के बढ़ने पर अधिक होती है। पर्वतीय क्षेत्रों के जल का तापमान सामान्य से काफी कम होता है तथा जाड़े के दिनों में न्यूनतम होता है जो मछलियों की वृद्धि तथा उत्तर जीविता के लिए उपयुक्त नहीं है। अतः पर्वतीय क्षेत्रों से अत्यधिक मत्स्य उत्पादन हेतु मत्स्य बीज का संचय फरवरी में करना चाहिए तथा दिसम्बर के प्रथम सप्ताह तक निकाल लेना चाहिए।

मछलियों हेतु संतुलित आहार–

मछलियों को प्राकृतिक आहार के साथ–साथ परिपूरक आहार की भी आवश्यकता होती है जिससे कि उनकी वृद्धि अधिक से अधिक हो सके। वैसे तो मछली के आहार हेतु कई अवयवों का प्रयोग किया जाता है परन्तु साधारण रूप से आसानी से उपलब्ध होने वाले आहार अवयवों जैसे चावल की कनकी (40%), सरसों या सोयाबीन की खली (40%), मछली का चूर्ण (19%) तथा विटमिन एवं खनिज पदार्थो का मिश्रण (1%) को मिलाकर एवं भिगोकर मछलियों को आहार के रूप में प्रदान किया जाता है। मिश्रित मत्स्य पालन वाले संचय

सारणी 3 : मछलियों हेतु परिपूरक आहार की मात्रा (400 अँगुलिकाएं/100 मी2 हेतु)

माह	मात्रा (किग्रा/दिन)	कुल मासिक मात्रा (किग्रा)
पहला	0.2	6.0
दूसरा	0.3	9.0
तीसरा	0.4	12.0
चौथा	0.5	15.0
पाँचवा	0.6	18.0
छठा	0.7	21.0
सांतवा	0.8	24.0
आठवाँ	0.9	27.0
नवाँ	1.0	30.0
दसवाँ	1.1	33.0
	कुल योग	195.0

तालाब में परिपूरक आहार की मात्रा कुल मछलियों के वजन का 2–3 प्रतिशत होना चाहिए (सारणी–3)। इस मात्रा को दो भागों में बॉट कर सुबह शाम देने से मछलियों की बढ़वार एक जैसी होती है तथा भोजन का उपभोग भी अधिकतम् होता है। वैसे तो आहार देने की अनेक विधियॉ है जैसे आहार का बाल बना कर ट्रे में रखना, थैले में भरकर देना, फीडर द्वारा आहार देना, तैरने वाले पैलेटेड आहार को सतह पर फेक कर देना इत्यादि लेकिन सामान्य तौर पर मत्स्य पालक आहार को भिगोकर बाल बनाकर ट्रे में उपलब्ध कराते हैं। आजकल तैरने वाले पैलेटेड आहार के प्रयोग का प्रचलन काफी हो रहा है।

मत्स्य बीज संचय के बाद तालाब की देख–रेख–

तालाब में मत्स्य अंगुलिकाओं के संचय के बाद तालाब की देख–रेख आवश्यक है। इसमें विशेष रूप से तालाब में प्राकृतिक भोजन, परिपूरक आहार एवं पानी के भौतिक एवं रासायनिक गुणों का ध्यान रखा जाता है। यदि तालाब के जलीय गुणों को उचित मानदण्डों में (सारणी 2) बनाये रखा जाये तो मछली का उत्पादन काफी अच्छा होता है। इन गुणों को उचित बनाए रखने के लिए आवश्यक जैविक खाद चूने इत्यादि का प्रयोग करते रहना चाहिए। समय–समय पर तालाब में जाल चलाकर मछलियों की बढ़वार एवं बीमारी का ध्यान रखना भी अति आवश्यक होता है।

तालाब से मछली का प्रगहण–

साधारणतः तालाब से मछलियों को साल में एक बार ही निकाला जाता है लेकिन यदि तालाब से इन्हें धीरे–धीरे आंशिक रूप से निकाला जाये तो अधिक उत्पादन प्राप्त होता है। एक खास अवस्था के बाद मछलियॉ उतनी तेजी से नहीं बढ़ती है चाहे कितना ही खाद या आहार की मात्रा बढ़ाई जाये। ठण्डे जल के तालाबों में लगभग 10–12 महीनों में सिल्वर कार्प, ग्रास कार्प एवं कामन कार्प लगभग 600–700 ग्राम का वजन प्राप्त कर लेती है। मछली पालन काल के अंत में तालाब सुखाकर सभी मछलियों को निकाल कर बाजार में बेच देना चाहिए। ठण्डे जल में मिश्रित मत्स्य पालन द्वारा मछली उत्पादन का लेखा जोखा सारणी–4 में दिया गया है।

अतः पर्वतीय क्षेत्रों के ठण्डे जल में जहॉ ऊँचाई

सारणी 4: मिश्रित मत्स्य पालन हेतु आय व्यय का वार्षिक लेखा जोखा

क्र.स.	मद	मात्रा	दर (रू०/इकाई)	खर्च (रू०)
(अ) लागत				
1.	जल क्षेत्र की सरकारी वार्षिक जमा	100 मी^{2}	3000 / है.	300.00
2.	तालाब की बनवाई पर खर्च (लागत का अवमूल्यन 10 प्रतिशत)	100 मी^{2}	30,000 / 100 मी^{2}	3000.00
3.	जैविक खाद 200 किग्रा	100 / कुन्तल	200.00	
4.	चूना 10 किग्रा	12 / किग्रा	120.00	
5.	अंगुलिकाओं की मद	400	650 / हजार	260.00
6.	परिपूरक आहार 195 किग्रा	40 / किग्रा	7800.00	
7.	अन्य खर्च (जाल चलाना मजदूर, दवाई इत्यादि)	–	–	2000.00
	कुल खर्च			**13680.00**
(ब) उत्पादन से आय				
8.	मछली	120 किग्रा	175 / किग्रा	21000.00
	आय	**रू० 21000.00–13680 = रू० 7320.00**		

1500 वर्ग मी0 से कम हो वैज्ञानिक ढंग से मिश्रित मत्स्य पालन कर काफी अच्छा उत्पादन यथा् लगभग 100–120 किग्रा / 100 वर्ग मीटर प्राप्त किया जा सकता है तथा कष्षकों / मत्स्य पालकों द्वारा अपनी आय बढ़ाई जा सकती है, साथ–साथ उन्हें एक पौष्टिक आहार भी प्राप्त होगा।

◆◆◆

डेयरी प्रबन्धन

डा० ए०के० घोष
संयुक्त निदेशक (षैक्षणिक डेयरी फार्म)
गो०ब० पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल : goshashiskr@gmail.com

भारत एक कृषि प्रधान देश है, किन्तु यहाँ अधिकत्तर किसान छोटी जोत वाले हैं तथा पशुपालन खेती का महत्वपूर्ण हिस्सा है, जिसमें किसान अपनी आय बढाने के साथ–साथ खेतों की उर्वरा शक्ति एवं उपज बढाने के लिये गोबर की खाद का प्रयोग करते हैं। आज वैज्ञानिक का भी यह मानना है कि कृषि एवं पशुपालन एक–दूसरे के पूरक है, किन्तु पशुपालकों के पशुओ के स्वास्थ के बारे में, आवास व्यवस्था एवं आहार के बार में जानकारी नही होने के कारण नुकसान उठाना पडता है।

अतः इस प्रबन्धन में स्वस्थ गाय एवं भैसों के लक्षण, उनके आवास व्यवस्था एवं आहार व्यवस्था तथा डेयरी वेस्ट मेटेरियल (waste material) का उपयुक्त व्यवहार (वर्मी कम्पोस्ट) के बारे में प्रकाश डालने का प्रयास है।

स्वस्थ गाय एवं भैसों के लक्षण

पशुओं में होने वाली बीमारियों को पहचानने के लिए पशु स्वास्थ्य सम्बन्धी सामान्य जानकारी का होना अति आवश्यक है। एक स्वस्थ पशु में निम्न लक्षण देखने को मिलते हैं: –

1 नियमित रूप से चारा खाना, पानी पीना एवं जुगाली करना।
2 देखने पर चौकन्ना, खड़े कान एवं उनके बाल व त्वचा चमकदार होते है।
3 ऑखे चमकदार एवं चौकन्नी होती है।
4 नाक का बाहरी एवं निचला भाग (Muzzle) चमकदार एवं गीला रहता है।
5 अपनी पूँछ, कान तथा सिर हिलाते रहते हैं।
6 गोबर ढीला और साधारण सख्त रहता है।
7 पेशाब साफ एवं भूसे के रंग का होता है।
8 शरीर का तापमान एवं श्वास क्रिया प्रति मिनट सामान्य रहता है।

पशुओं के स्वास्थ्य मापदण्डों में अप्रत्याशित रूप में परिवर्तन उसके बीमार होने को परिलक्षित करता है। पशुपालक जो सदैव पशुओं के साथ रहते हैं और उनकी देखभाल करते हैं वे बीमार पशु को बड़ी आसानी से पहचान सकते है। एक बीमार पशु में निम्नलिखित लक्षण देखने को मिल सकते हैं–

1 अनियमित रूप से चारा खाता हैं और पानी पीता है। ज्यादातर पशु जुगाली करना बन्द कर देते है।
2 हिलना–डुलना कम कर देता है, उसकी त्वचा खुष्क हो जाती है तथा कान लटक जाते है।
3 नाक का उपरी तथा निचला भाग खुष्क हो जाता है। पशु सामान्य रूप से सुस्त दिखाई देता है।
4 शरीर का तापमान, ष्वसन क्रिया तथा नाड़ी घट या बढ़ सकती है।
5 गोबर तथा पेशाब में परिवर्तन आ सकता है।
6 दूध में कमी आ सकती है तथा कभी–कभार दूध नही निकालने देते हैं।

स्वस्थ पशु की सामान्य नाड़ी क्रिया तथा श्वास क्रिया

क्र.सं.	पशु	तापमान	नाड़ी क्रिया प्रति मिनट	श्वास प्रति मिनट
1	गाय / भैंस	38.3^0 से0 (101.5^0 फा0)	60–90	12–20
2	बछड़ा / बाछिया	39.5^0 से0 (103^0 फा0)	90–100	30

आवास व्यवस्था

हमारे देश में पशुओं की आवास व्यवस्था पर विशेष ध्यान नही दिया जाता है। डेयरी पशुओं की वैज्ञानिक विधि से आवास व्यवस्था करने पर कम से कम जगह में अधिक से अधिक पशु रखे जा सकते है। पशुओं को वातावरण के प्रकोप से बचाने के लिए उचित आवास व्यवस्था की जरूरत पड़ती है। पशुधन फार्म के लिए जगह की योजना बनाने से पहले हमें निम्न बातो पर ध्यान देना आवश्यक होगा–

1. फार्म की जगह शहर के नजदीक हो जिससे डेयरी उत्पादों को आसानी से बाजार भेजा जा सके।
2. भूमि समतल, जल निकास की व्यवस्था तथा कुछ भूमि उपजाऊ हो, जिसमें पशुओं के लिए चारा उगाया जा सकें।
3. उस स्थान पर बिजली, पानी तथा यातायात की सुविधा आसानी से उपलब्ध हो सके।

भवनों के प्रकार –

हमारे देशे में पशुओं को रखने की दो विधियाँ अपनायी जाती है:

(क) बन्द घर प्रणाली : इसमें पशु बाँधकर रखे जाते तथा सभी मकान बन्द प्रणाली के होते है।

(ख) खुले घर प्रणाली : इसमें पशु खुले रखे जाते हैं तथा सभी पशु स्वतंत्र रूप से खुले बाड़े में चारा खाते हैं, पानी पीते है और घूमते हैं।

गाय-भैंसो की आवास व्यवस्था में निम्नलिखित भवनों का होना आवश्यक है:

1. दुहान बाड़ा
2. दूध देने वाली तथा सूखी गायों के बाड़े
3. ब्याने के कमरे
4. बीमार गायों के कमरे
5. बछड़ा/बछिया गृह
6. सॉड़ घर
7. कार्यालय
8. चारा एवं दाना स्टोर

1) दुहान बाड़ा– दुहान बाड़ा मुख्य रूप से दूध निकालने के लिए बनाया जाता है। ये बन्द घर प्रणाली के होने चाहिए। इसमें पशुओं को खड़ा करने, बॉधने तथा नियन्त्रित करने का उचित प्रबन्ध होना चाहिए। दुहान बाड़ा एक पंक्ति वाले या दो पंक्ति वाले घर के रूप में हो सकते हैं। यादि पशुओं की संख्या दस या इससे कम हो तो उन्हे एक ही पंक्ति में बॉध दिया जाता है। यादि पशुओं की संख्या दस से ज्याद है तो उन्हें दो पंक्तियो में बॉधना चाहिए। पशुओं के आकार एवं उम्र को ध्यान देते हुए 1.5 से 1.7 मीटर लम्बी तथा 1.05 मीटर से 1.20 मीटर चौड़ी जगह की आवश्यकता होती है। दो पंक्ति वाले घर बनाने पर बीच में 1.5 से 1.8 मीटर चौड़ा बीच का रास्ता छोड़ा जाता है। दीवारों के साथ 75 से.मी. चौड़ी चारा नाली रखी जाती है। दुहान बाड़ा में बड़ी–बड़ी जालियों वाले रोषनदान लगाने से पर्याप्त रोषनी तथा हवा मिलती है।

2) दूध देने वाली तथा सूखी गायों के बाड़े– प्रत्येक पशु को कुल मिलाकर 5.4 से 6.3 वर्ग मीटर फर्श स्थान (Floor Space) की आवश्यकता होती है। छोटे डेयरी फार्म पर दोनो प्रकार की गायों को एक साथ रखा जाता है परन्तु बड़े फार्म पर इन्हें अलग–अलग रखना अच्छा रहता है। इन घरों में सभी गायों के लिए चारे व पानी का उचित प्रबन्ध रहना चाहिए।

3) ब्याने के कमरे या प्रसूति गृह – ये कमरे ऐसी जगह होने चाहिये जहॉ प्रत्येक गाय पर अच्छी तरह नजर रखी जा सके। ये घर हर एक गाय के लिए अलग–अलग होने चाहिए।

4) बीमार गायों के कमरे – ये कमरे भी ब्याने वाली गायों की तरह अलग–अलग होने चाहिए। बीमार गायों का घर भी अन्य घरों से अलग बनाना चाहिए।

5) बछड़ा/बछिया गृह –प्रत्येक बछिया को 3.06 से 4.5 वर्ग मीटर स्थान की आवश्यकता होती है। बछड़ों के सुप्रबन्ध के लिए उनको समूहो में विभक्त किया जा सकता है।

क्र.सं.	बच्चो का समूह	प्रति बच्चा क्षेत्रफल
1.	3 माह से कम के बच्चे	1.8 से 2.25 वर्ग मीटर
2.	3 से 6 माह के बच्चे	2.25 से 2.7 वर्ग मीटर
3.	6 से 12 माह के बच्चे	2.7 से 3.6 वर्ग मीटर
4.	1 वर्ष से उपर के बच्चे	3.6 से 4.5 वर्ग मीटर

6) सॉड़ घर– सॉड़ घर डेयरी फार्म के एक तरफ किनारे पर होना चाहिए। प्रत्येक सॉड़ के लिए

अलग–अलग घर होने चाहिए। प्रत्येक सॉड़ को 3.05 से 4.5 मीटर लम्बा तथा 3 से 3.5 मीटर चौड़ा रहने के लिए स्थान चाहिए।

7) कार्यालय– डेयरी फार्म पर एक कार्यालय होना आवश्यक है। कार्यालय को फार्म के मुख्य द्वार के पास ही बनाना उचित रहता है जिससे कार्यालय सम्बन्धित कार्य बिना फार्म में प्रवेष किए ही पूर्ण किये जा सकें।

8) चारा एवं दाना स्टोर– चारा दाना इत्यादि को भण्डारित करने के लिए मकान की आवश्यकता होती है। चारा एवं दाना स्टोर पशुओं की संख्या को ध्यान में रखते हुए बनाने चाहिए।

9) अस्पताल– बीमार पशुओं के इलाज के लिए फार्म पर अस्पताल का होना आवश्यक है।

आहार व्यवस्था

पशुओं की आहार व्यवस्था निम्न बातों जैसे पशु की उम्र, शरीर का भार, पशु की नस्ल, शरीर की अवस्था आदि पर निर्भर करती है। वृद्विरत बच्चों, दुधारू गाय, गर्भवती गाय आदि को ज्यादा पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। जबकि शुष्क गाय को कम पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। विभिन्न वर्ग के पशुओ को पोषक तत्वों की आवश्यकता अलग–अलग होती है।

गाय–भैसों के लिए पोषक तत्वों की आवश्यकता–

गाय–भैंसो के पोषक पदार्थ, ऊर्जा देने वाले पदार्थ एवं प्रोटीन देने वाले पदार्थ प्रमुख है। यह पाया गया है कि एक दुधारू मुर्रा भैंस अपने भार के 2.54 प्रतिशत तथा दुधारू गाय अपने भार के लगभग 2.5 प्रतिशत के बराबर शुष्क पदार्थ ग्रहण करती है। ऊर्जा की आवश्यकता पशु की उम्र, भार, उत्पादन, प्रजनन एवं जलवायु पर निर्भर करती है। निर्वाह के लिए भैसों को औसतन 125 किग्रा. कैलौरी उपापचयी ऊर्जा की प्रति किग्रा. उपापचयी शरीर भार पर आवश्यकता पड़ती है। दुग्ध स्रवण काल ऊर्जा की आवश्यकता पशु द्वारा उत्पादन किए गये दूध की मात्रा एवं दूध में वसा की मात्रा पर निर्भर करती है।

प्रोटीन की आवश्यकता गाय तथा भैंसों में अलग–अलग होती है। निर्वाह के लिए गायों को 2.84 ग्राम पचनीय प्रोटीन तथा भैंसो को 2.54 ग्राम पचनीय प्रोटीन प्रति किग्रा. उपापचयी शरीर भार पर आवश्यकता पड़ती है। दुधारू गाय/भैंसो को 55 ग्राम पचनीय प्रोटीन प्रति किग्रा. 4 प्रतिशत वसा वाले दूध के लिए आवश्यकता पडती है। गर्भवती मादाओं में 6–6 माह बाद भ्रूण की वृद्वि तीव्र गति से होती है। अतः 7 वें माह में 30, 8 वें माह में 50 तथा 9 वें माह में 80 प्रतिशत अधिक प्रोटीन की आवश्यकता पड़ती है।

शुष्क गाय–भैंसों के लिए पोषक तत्वों की आवश्यकता–

शुष्क गाय तथा भैसों को यदि भरपेट हरा चारा मिलता रहे तो उन्हें अलग से दाना देने की आवश्यकता नही पड़ती है। प्रत्येक पशु को लगभग 30 ग्राम नमक तथा 30 ग्राम खनिज मिश्रण देने की आवश्यकता होती है। गाभिन बछिया को उनके गर्भकाल के अन्तिम दिनों में 1–2 किग्रा. दाना प्रति दिन देने से उनकी उत्पादन तथा प्रजनन क्षमता पर अच्छा प्रभाव पडता है।

गर्भवती गाय–भैसों के लिए पोषक तत्वों की आवश्यकता–

मादाओं के गर्भकाल के शुरूआत में अधिक पोषक तत्वों की आवश्यकता नही पड़ती है यद्यपि खनिज देना आवश्यक होता है। गर्भकाल के मध्य में पोषक तत्वों की आवश्यकता बढ़ जाती है। अतः इन दिनों 10 प्रतिशत अधिक पोषक तत्व देने की आवश्यकता होती है। छः माह के बाद भ्रूण का विकास तेजी से होने लगता है। अतः 400 से 500 किग्रा. की एक मादा में गर्भकाल के अन्तिम दिनों में लगभग 10 से 12 प्रतिशत अधिक ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। प्रोटीन, कैल्शियम एवं फास्फोरस की आवश्यकता इन दिनों में अधिक बढ़ जाती है। अतः पशु को उनके निर्वाह राषन का लगभग 50 प्रतिशत अधिक कैल्शियम, फास्फोरस तथा प्रोटीन देनी चाहिए। गर्भावस्था के 6 माह के लगभग 500 ग्राम से 1 किग्रा. दाना प्रतिदिन देना शुरू करके तथा उसे धीरे–धीरे बढाते हुय गर्भकाल के अन्तिम दिनांक तक लगभग 1–2 किग्रा. कर देना चाहिये। दाने में की गयी इस प्रकार की बढ़ोत्तरी पशु की उत्पादन एवं प्रजनन क्षमता को सुचारू एवं सामान्य बनाए रखती है।

दुधारू पशुओं के लिए पोषक तत्वों की आवश्कता–

प्रत्येक गाय–भैंस के दुग्ध उत्पादन में आहार

की आवश्यकता उसके दूध की मात्रा तथा दूध में उपलब्ध वसा के प्रतिशत पर निर्भर करती है। प्रथम ब्यात वाले पशुओ की षारीरिक वृद्वि के लिए दुग्ध उत्पादन आहार के साथ–साथ षारीरिक वृद्वि के लिए भी आहार दिया जाना आवश्यक है। सामान्यतः अच्छे किस्म के फलीदार चारे भरपेट उपलब्ध हो तो 10 किग्रा. दूध देने वाली गाय तथा 7 किग्रा. दूध देने वाली गायों को 2.5 किग्रा. दूध पर 1 किग्रा. दाना मिश्रण तथा 7 किग्रा. से अधिक दूध देने वाली भैसों को 2 किग्रा. दूध पर 2 किग्रा. दाना मिश्रण प्रतिदिन खिलाना चाहिए। दुग्ध स्रवण काल में पशुओ की उर्जा की आवश्यकता लगभग 30–40 प्रतिशत बढ़ जाती है। अच्छे परिणाम पाने के लिए पशु आहार में 30–40 प्रतिशत पोषक तत्व दानों से तथा 60–70 प्रतिशत पोषक तत्व चारे से देने चाहिए।

वृद्विरत ओसरों के लिए पोषक तत्व की आवश्यकता–

अक्सर यह देखने में आता है कि वृद्विरत ओसरों को दाना नही दिया जाता है। निम्न कोटि के चारे को खिलाने से ओसरों में वृद्वि कम हो जाती है। परिणाम स्वरूप गर्भधारण में देरी होती है। अतः निम्न कोटि के चारे के साथ थोड़ा दाना तथा खनिज मिश्रण देना लाभदायक होता है। ओसर बछियों में वृद्वि दर मालूम करने के लिए प्रति माह उनके शरीर का भार लेते रहना आवश्यक है। बछियों में उचित मात्रा में पोषक तत्व देने पर भी यदि वृद्वि दर कम हो, तो उनके चारे तथा पशु के स्वास्थ्य की सामान्य जॉच करानी चाहिए।

पशुओ के लिए संतुलित रातिब मिश्रण–

आमतौर पर हमारे पशुपालक पशुओ को भूसा अथवा पुआल जैसे सूखे चारे ज्यादा देते है, जिससे पशु का पेट तो भर जाता है, परन्तु उनमें आवश्यक पोषक तत्वों की कमी हो जाती है। परिणाम स्वरूप पशु की उत्पादन एवं प्रजनन क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। इसलिए यह आवश्यक है कि पशुओं के नित्य प्रति आहार में कुछ ऐसे खाद्य–मिश्रण का समावेश किया जाए जो पोषक तत्वों की मात्रा को संतुलित रखता हो तथा जिसे चारे के अतिरिक्त खिलाया जाय। प्रायः ऐसे मिश्रण अनाजों, खलियो तथा खनिज मिश्रणों को मिलाकर बनाये जाते हैं। ऐसे मिश्रण को रातिब मिश्रण कहते हैं। पशुपालकों को रातिब मिश्रण स्वयं बनाना चाहिए। तीन माह से अधिक उम्र के गौ पशुओ के लिए रातिब मिश्रण बनाने के लिए निम्नलिखित खाद्य अवयवों को मिलाया जा सकता है।

रातिब मिश्रण के विभिन्न अवयवों में खलियॉ काफी महंगी होती है, जो रातिब मिश्रण का दाम बढ़ा देती है। यदि इन रातिब मिश्रण में यूरिया की कुछ मात्रा मिला दी जाय तो मिश्रण का दाम कम हो जाता है। गाय–भैंसो के पाचन तंत्र में यूरिया की नाईट्रोजन को प्रोटीन में बदलने की क्षमता होती है। कुछ पशुपालक ऐसा मानते है कि यूरिया खिलाना पशुओं को नुकसान दायक होता है, परन्तु ऐसा बिल्कुल नही है। यूरिया युक्त रातिब मिश्रण प्रयोग करते समय कुछ बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है। यूरिया को रातिब में

खाद्य अवयव	मात्रा (किग्रा./100 किग्रा.)		
	I	II	III
मक्का, गेहूँ, ज्वार या बाजरा	30	20	25
चोकर या चूनी	38	32	35
खल (मूँगफली, अलसी या सोयाबीन)	30	–	20
खली (सरसों, बिनोला या तिल)	–	46	18
खनिज मिश्रण	1.5	1.5	1.5
साधारण नमक	0.5	0.5	0.5
कुल	**100**	**100**	**100**

खाद्य अवयव	मात्रा (किग्रा./100 किग्रा.)		
	I	II	III
मक्का, गेहूँ, ज्वार या बाजरा	35	36	30
चोकर या चूनी	40	35	46
खल (मूँगफली, अलसी या सोयाबीन)	21	–	10
खली (सरसों, बिनोला या तिल)	–	25	10
यूरिया	2	2	2
खनिज मिश्रण	1.5	1.5	1.5
साधारण नमक	0.5	0.5	0.5
कुल	**100**	**100**	**100**

भली–भॉति मिलाये तथा उसमें षीरे की 5–10 किग्रा. अतिरिक्त मात्रा अवश्य मिलायें। यूरिया युक्त रातिब मिश्रण को 6 माह से कम उम्र के रोमनिथ (ruminant) पशुओ को न खिलायें। यूरिया युक्त रातिब बनाने के लिए निम्न सारणी का प्रयोग किया जा सकता है।

किसानो के लिये वरदान केंचुआ पालन (वर्मी कम्पोस्ट)

वर्मी कल्चर/वर्मी कम्पोस्ट–

जैविक पदार्थ (Biomass) या कचरा (घरेलू, शहरी, कृषि अवशेष, खरपतवार, वानिकी व्यर्थ, गोबर आदि) जो सड़ सकता है, में एपीजैईक (Epigeic) केचुएं को पालकर खाद उत्पादन करना वर्मी कल्चर कहलाता है। इस सड़े पदार्थ को केचुएं द्वारा खाकर निकाले गये मल को वर्मी कम्पोस्ट कहते हैं। यह सभी प्रकार के पेड़–पौधे, फल, वृक्षों, सब्जियों एवं फसलों आदि हेतु पूर्ण रूप से कार्बनिक, प्राकृति एवं संतुलित खाद है, जो कि कार्बनिक खेती या जैविक खेती हेतु सर्वोत्तम मानी जाती है।

केचुआ (Earthworms)–

वर्मी कम्पोस्ट तैयार करने हेतु सही केचुओं को जो मृदा कम एवं कार्बनिक पदार्थ अधिक खाते है Biological Tools के रूप में प्रयोग किया जाता है, जिसमें आइसीनिया फीटिडा (*Eisenia Fetida*) व यूड्रीलस यूजेनी (*Eudrilus Eugeniae*) विश्व भर में क्रमशः 95 प्रतिशत व 4 प्रतिशत प्रयोग किये जाते हैं। आईसीनिया फीटिडा जो प्रमुख रूप से प्रयोग किया जाता है की लम्बाई 3 से 4 इंच व भार 0.8 से 1.4 ग्राम तक होता है। इसे सीवेज वर्म व रेड वर्म भी कहते हैं ये केचुआ त्वचा द्वारा ष्वसन क्रिया करते हैं और अपने वजन का 3 से 6 गुना प्रतिदिन खाते हैं। हैचिंग से 50 से 55 दिन में वयस्क होकर प्रति सप्ताह 3 से 4 कोकुन (अण्डे) देते हैं। कोकुन अवस्था 23 दिन की होती है। प्रति कोकुल 6 से 14 बच्चे निकालते हैं, जिसमें से 8 से 10 ही वयस्कता प्राप्त कर पाते हैं। जीवनकाल 75 से 80 दिन का होता है।

कल्चर (जैविक पदार्थ)–

केचुंआ पालन हेतु जैविक पदार्थ या कचरा (घरेलू, शहरी, कृषि अवशेष, खरपतवार, वानिकी व्यर्थ, गोबर आदि) जो सड़ सकता है प्रयोग किया जाता है। जैविक पदार्थ जो कि आधा सड़ा हुआ हो में गोबर 30 प्रतिशत से अधिक मिलाया जाता है। प्रयोग किया जाने वाला गोबर 15 दिन से कम का न हो व 60 दिन से पुराना न हो। गोबर गैस (Bio-gas plant salary) की सलरी सर्वोत्तम मानी जाती है। जैविक पदार्थ व गोबर रसायन मुक्त हों, इसमें किसी प्रकार का न सड़ने वाला पदार्थ न मिला हो। यदि कचरा सूखा हो तो उसे 10 से 15 दिन तक ढेर बनाकर लगातार पानी छिड़कते हुये आधा सड़न युक्त बनाया जाता है जो कि सर्वोत्तम होता है।

बेड या पिट का आकार (Bed Size)–

चौड़ाई 2.5 फुट से 3.5 फुट, ऊंचाई, 1.0 से 2.0 फुट, लम्बाई प्रति किग्रा. केंचुआ पर 2 से 3 फीट

पर्याप्त है। लम्बाई प्रारम्भ में 10 से 12 फुट रखते हैं व बाद में केचुएं या जगह के अनुसार कितनी भी रख सकते हैं। लेकिन चौड़ाई किसी भी दशा में 1.5 फुट से कम न हो व 3.5 फुट से अधिक न हो एवं ऊंचाई 1 फुट से कम न हो व 2.5 फुट से अधिक न हो। बेड की ऊंचाई शरद ऋतु में अधिकतम एवं ग्रीष्म ऋतु में न्यूनतम रखनी चाहिये। बेड बनाने हेतु पहले 8–10 इंच कचरा (आधा सड़ा हुआ) व इसके ऊपर 1.0 से 1.5 फीट गोबर डालकर 3 से 4 दिन तक पानी से अच्छी तरह भिगो देना चाहियें। ध्यान रहे कि केंचुएं सदैव बेड को 3 से 4 दिन तक भीगने के बाद ही छोड़ने चाहिये। केचुएं डालने के बाद बेड 1–2 दिन खरपतवार या बोरी के टाट से अवश्य ढकना चाहिये।

मापदण्ड/सीमायें (Limitation/Parameters)–

- बेड को सदैव सूर्य के प्रकाश से (Sunlight) से बचाना चाहिये जिस हेतु बेड के ऊपर शेड बना होना चाहिये या पेड़ की छाया का भी प्रयोग अच्छा रहता है। बेड को 1 से 2 इंच घास या बोरी के टाट से अवश्य ढककर रखना चाहिये।
- बेड में नमी 40 से 60 प्रतिशत, तापमान 8 से 32°C तक वे हवा सुचारू रूप से हो। इस हेतु 7 से 10 वें दिन में पानी अवश्य छिड़कें।
- बेड में सूखी घास, ताजा गोबर, अधिक पुराना गोबर, मोटी लकड़ी तथा रसायनयुक्त पानी या पदार्थ का भी प्रयोग न करें।
- बेड को मेंढ़क, सांप, चिड़िया, छिपकली, लाल चींटी, दीमक से सुरक्षा प्रदान करें।
- बेड में रेतीली मिट्टी, रेत, पत्थर, पॉलिथीन आदि न सड़ने वाला पदार्थ न हो।
- बेड को केचुएं डालने के 20 से 25वें दिन में कभी भी हाथ से या लकड़ी से खंगाल लें जिससे हवा सुचारू रूप से जा सके।
- बेड के नीचे या ऊपर कभी भी पॉलिथीन के सीट का प्रयोग न करें।
- उपयुक्त नमी हेतु सप्ताह में एक बार पानी अवश्य डालना चाहिये।
- छनाई से 10 से 15 दिन पूर्व पानी डालना बन्द कर दें एवं बगल में बनाई गई नई बेड में पानी डालना शुरू करना चाहिये।

वर्मी कम्पोस्ट से लाभ–

वर्मी कम्पोस्ट में किसी भी प्रकार से बनाई गई फार्मयार्ड कम्पोस्ट या अन्य खाद की तुलना में सामान्यतः 5 गुना नत्रजन, 8 गुना फॉस्फोरस, 11 गुना पोटाश, 3 गुना कैल्शियम, 1.9 गुना मैग्निषियम अधिक पाया जाता है। वर्मी कम्पोस्ट में नाईट्रोजन 2.0 से 2.8, फास्फोरस 1.3 से 2.4 और पोटाश 1.2 से 2.5 प्रतिशत पाया जाता है। इन तत्वों के अतिरिक्त पौधे हेतु आवश्यक सभी तत्व एवं नाईट्रोजन फिक्सेषन बैक्टीरिया, फास्फोरस सोल्यूब्लाईजिंग बैक्टीरिया, एक्टीनोमाईसिटीज, इन्जाइम्स आदि तत्व भी पाये जाते हैं जो कि भूमि की उर्वरा शक्ति को कई वर्ष तक बनाये रखते हैं।

- भूमि की उर्वरकता या उपजाऊपन को बढ़ाने के साथ–साथ मृदा की जल धारण क्षमता में वृद्धि भी करता है । पी0एच0मान को संतुलित बनाये रखता है।
- पौधों की वृद्धि में, इसमें उपस्थित इन्जाइम्स उत्तेजक का कार्य करते हैं। इसके अलावा पौधों में प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाकर फसलोत्पादन बढ़ाता है।
- जैविक खेती से उत्पादित उत्पाद (फसल, सब्जी, फल आदि) का अधिक मूल्य मिलता है।
- रासायनिक उर्वरकों की तुलना में काफी सस्ता है व हर कृषक घर पर ही काफी आसानी से बना सकता है जिससे पैसे की बचत होती है, लागत कम आती है।
- वर्मी कम्पोस्ट, वर्मी प्रोटीन केचुंआ आदि से कृषक अतिरिक्त आय अर्जित कर सकता है।
- मैदानी क्षेत्रों से लेकर 2500 मी0 तक के पर्वतीय क्षेत्रों तक आसानी से केचुंआ पालन हो सकता है।

◆◆◆

मवेशियों के प्रमुख रोग

डा० संजय चौधरी, प्राध्यापक, पशु परजीवी विज्ञान
प्रसार शिक्षा निदेशालय, गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल : schaudharypantnagar@gmail.com

मवेशियों में होने वाले रोगों को सामान्यतः तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है –

(क) संक्रामक रोग (छूतही बीमारियाँ)–

संक्रामक रोग छूत से एक मवेशी से अन्य मवेशियों में फैल जाते हैं। ये छूतही बीमारियाँ आमतौर पर महामारी का रूप ले लेती है। संक्रामक रोग प्रायः जीवाणुओं/विषाणुओं द्वारा फैलाये जाते हैं, लेकिन अलग–अलग रोग में इनके प्रसार के तरीके अलग–अलग होते हैं। उदहारणतः खुरपका–मुहँपका रोग के विषाणु बीमार पशु की लार से गिरते रहते हैं तथा गौत–पानी में घुस कर उसे दूषित कर देते हैं। इस गौत–पानी के जरिए अनेक पशु इससे संक्रमित हो जाते हैं। अन्य संक्रामक रोग के जीवाणु भी गौत, पानी, मृत के चमड़े या छींक इत्यादि द्वारा एक पशु से अन्य पशुओं को रोग ग्रस्त बनाते हैं। इसलिए यदि गांव या पड़ोस के गाँव में कोई संक्रामक रोग फैल जाए तो मवेशियों के बचाव के लिए निम्नाकिंत उपाय कारगर होते हैं –

1. सबसे पहले रोग के फैलने की सूचना अपने नजदीक के पशुधन प्रसार अधिकारी अथवा ब्लॉक (प्रखंड) के पशुचिकित्सा अधिकारी को देनी चाहिए वे इसकी रोकथाम का इंतजाम तुरंत करते हुए बचाव का उपाय बता सकते हैं।
2. अगर पड़ोस के गाँव में बीमारी फैली हो तो उस गाँव से मवेशियों या पशुपालकों का आवागमन बंद कर देना चाहिए।
3. सार्वजनिक तालाब या आहार में मवेशियों को पानी पिलाना बंद कर देना चाहिए।
4. सार्वजनिक चारागाह में पशुओं को भेजना तुरंत बंद कर देना चाहिए।
5. इस रोग के ग्रसित पशु को अन्य स्वस्थ पशुओं से अलग रखना चाहिए।
6. संक्रामक रोग से मरे हुए पशु को जहाँ–तहाँ खुले में नहीं छोड़ना चाहिए। खाल उतारना भी खतरनाक होता है। मृत पशु को जला देना चाहिए या 5–6 फुट गड्ढा खोद कर चूना के साथ विधि पूर्वक गाड़ देना चाहिए।
7. जिस स्थान पर बीमार पशु रखा गया हो या मरा हो उस स्थान को फिनाइल अथवा अन्य जीवाणुनाशक घोल से अच्छी तरह धो दें तथा साफ–सुथरा कर चूना छिड़क देना चाहिए, ताकि रोग के जीवाणु या विषाणु मर जाएँ।
8. खाल की खरीद–बिक्री करने वाले लोग भी इस रोग को एक गाँव से दूसरे गाँव तक ले जा सकते हैं। ऐसे समय में इसकी खरीद–बिक्री बंद रखनी चाहिए।

1. गला घोंटू–

यह बीमारी सामान्यतः गाय–भैंस में बरसात के मौसम में ज्यादा होती है। भेड़ तथा सुअरों को भी यह बीमारी लग जाती है।

लक्षण– शरीर का तापमान बढ़ जाता है और पशु सुस्त हो जाता है। रोगी पशु का गला सूज जाता है, जिससे खाना निगलने में व साँस लेने में कठिनाई होती है। इसलिए पशु खाना–पीना छोड़ देता है। सूजन गर्म रहती है तथा उसमें दर्द होता है। किसी–किसी पशु को कब्जियत और उसके बाद पतला दस्त भी होने लगता है। बीमार पशु 6 से 24 घंटे के भीतर मर जाता है। पशु के मुंह से लार गिरती है।

बचाव– इस बीमारी से बचाव हेतु बरसात मौसम से पूर्व पशुओं को गलाघोंटू बीमारी से बचाव हेतु टीका लगाया जाना चाहिए। बीमारी होने पर तुरन्त नजदीकी पशु चिकित्सालय से सम्पर्क करना चाहिए।

2. जहरवाद (ब्लैक क्वार्टर)–

यह रोग भी ज्यादातर बरसात में फैलता है। इसकी विशेषता यह है कि यह खास कर छः से 18

महीने के स्वस्थ बछड़ों को ही अपना षिकार बनाता है।

लक्षण– इस रोग से आक्रांत पशु का पिछला पुट्ठा सूज जाता है। पशु लंगड़ाने लगता है। किसी किसी पशु का अगला पैर भी सूज जाता है। सूजन धीरे–धीरे शरीर के दूसरे भाग में भी फैल सकती है। सूजन में काफी पीड़ा होती है तथा उसे दबाने पर चरचराहट की आवाज आती है। शरीर का तापमान 104 से 106 डिग्री रहता है। बाद में सूजन सड़ जाती है। तथा उस स्थान पर सड़ा हुआ घाव हो जाता है।

बचाव– इस बीमारी से बचाव हेतु बरसात मौसम से पूर्व पशुओं को गलाघोंटू बीमारी से बचाव हेतु टीका लगाया जाना चाहिए। बीमारी होने पर तुरन्त नजदीकी पशु चिकित्सालय से सम्पर्क करना चाहिए।

3. प्लीहा या पिलबढ़वा (एंथ्रेक्स)–

यह भी एक खतरनाक संक्रामक रोग है। इस रोग से आक्रांत पशु की शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है। इस रोग के षिकार मवेशी के अलावे भेड़, बकरी और घोड़े भी होते हैं।

लक्षण– तेज बुखार 106 डिग्री से 107 डिग्री तक। मृतयु के बाद नाक, पेशाब और पैखाना के रास्ते खून बहने लगता है। आक्रांत पशु शरीर के विभिन्न अंगों पर सूजन आ जाती है। प्लीहा काफी बढ़ जाती है तथा पेट फूल जाता है।

4. खुरपका–मुहँपका (फूट एंड माउथ डिजीज)–

यह रोग बहुत ही छूआछूत रोग है और इसका संक्रामण बहुत तेजी से होता है। यद्यपि इससे आक्रांत पशु के मरने की संभावना बहुत कम रहती है, तथापि इस रोग से पशु पालकों को को काफी नुकसान होता है। रोग ग्रसित पशु कमजोर हो जाता है तथा उसकी कार्यक्षमता और उत्पादन काफी दिनों तक के लिए कम हो जाता है। यह बीमारी गाय, बैल और भैंस के अलावा भेड़ों को भी अपना षिकार बनाती है।

लक्षण– बुखार हो जाना, भोजन से अरूचि, पैदावार कम, मुहं और खुर में पहले छोटे–छोटे दाने निकलना और बाद में पक कर घाव हो जाना आदि इस रोग के लक्षण हैं।

बचाव– पशुओं को साल में दो बार छः माह के अंदर पर रोग निरोधक टीका लगवाना चाहिए। बीमारी होने पर तुरन्त नजदीकी पशु चिकित्सालय से सम्पर्क करना चाहिए।

5. पशु– यक्ष्मा (टी.बी.)–

पशुओं के साथ–साथ मनुष्य के स्वास्थ्य के रक्षा के लिए भी इस रोग से काफी सतर्क रहने की जरूरत है, क्योंकि रोग ग्रसित पशुओं के संसर्ग में रहने वाले या दूध इस्तेमाल करने वाले मनुष्य को भी अपने चपेट में ले सकता है।

लक्षण– पशु कमजोर और सुस्त हो जाता है। कभी–कभी नाक से खून निकलता है, सूखी खाँसी भी हो सकती है। खाने के रुचि कम हो जाती है तथा उसके फेफड़ों में सूजन हो जाती है।

6. थनैला–

दुधारू मवेशियों को यह रोग दो कारणों से होता है। पहला कारण है थन पर चोट लगना या थन का कट जाना और दूसरा कारण है संक्रामक जीवाणुओं का थन में प्रवेष कर जाना। पशु को गंदे दलदली स्थान पर बांधने तथा दूहने वाले की असावधानी के कारण थन में जीवाणु प्रवेष कर जाते हैं। अनियमित रूप से दूध दूहना भी थनैला रोग को निमंत्रण देना है। साधारणतः अधिक दूध देने वाली गाय–भैंस इसका षिकार बनती है।

लक्षण– थन गर्म और लाल हो जाना, उसमें सूजन होना, शरीर का तापमान बढ़ जाना, भूख न लगना, दूध का उत्पादन कम हो जाना, दूध का रंग बदल जाना तथा दूध में जमावट हो जाना इस रोग के खास लक्षण हैं।

7. संक्रामक गर्भपात–

यह बीमारी गाय–भैंस को ही आम तौर पर होती है। कभी–कभार भेंड बकरी भी इससे आक्रांत हो जाते हैं।

लक्षण– पहले पशु को बेचैनी हो जाती है और बच्चा पैदा होने के सभी लक्षण दिखाई देने लगते हैं। योनि मुख से तरल पदार्थ बहने लगता है। आमतौर पर पांचवे, छठे महीने ये लक्षण दिखाई देने लगते हैं और गर्भपात हो जाता है। प्रायः जेर अंदर ही रह जाता है।

(ख) सामान्य रोग या आम बीमारियाँ–

संक्रामक रोगों के अतिरिक्त बहुत सारे अन्य रोग भी हैं, जो पशुओं की उत्पादन–क्षमता कम कर देते है। ये रोग ज्यादा भयानक नहीं होते, लेकिन समय पर इलाज नहीं कराने पर काफी खतरनाक सिद्ध हो सकते हैं। नीचे साधारण बीमारियों के लक्षण और प्राथमिक चिकित्सा के तरीके बतलाए जा रहे है।

1. अफारा–

हरा और रसीला चारा, भींगा चारा या दलहनी चारा अधिक मात्रा में खा लेने के कारण पशु को अफारा बीमारी हो जाती है। खासकर, रसदार चारा जल्दी–जल्दी खाकर अधिक मात्रा में पीने से यह बीमारी पैदा होती है। बछड़ा–बछिया द्वारा ज्यादा दूध पी लेने के कारण भी यह बीमारी हो सकती है। पाचन शक्ति कमजोर हो जाने पर मवेशी को इस बीमारी से ग्रसित होने की आषंका होती है।

लक्षण– एकाएक पेट फूल जाता है। ज्यादातर रोगी पशु का बायाँ पेट पहले फूलता है। पेट को थपथपाने पर ढोल की तरह (ढप–ढप) की आवाज निकलती है। पशु कराहने लगता है और फूले पेट की ओर बराबर देखता है। पशु झुक कर खड़ा होता है और अगल–बगल झांकता रहता है। रोग के तीव्र अवस्था में पशु बार–बार लेटता और खड़ा होता है। पशु कभी–कभी जीभ बाहर लटकाकर हांफता और पैरों को बार पटकता है। रोग बढ़ जाने पर पशु चारा–दाना छोड़ देता है।

2. दुग्ध–ज्वर–

सामान्यतः बच्चा देने के 24 घंटे के अदंर दुग्ध–ज्वर के लक्षण दिखते हैं। दुधारू गाय, भैंस या बकरी इस रोग के चपेट में आती हैं। ज्यादा दुधारू पशु को ही यह बीमारी अपना षिकार बनाती है।

लक्षण– पशु बेचैन, कांपने और लड़खड़ाने लगता है। मांसपेसियों में कंपन होता है, जिसके कारण खड़ा रहना कठिन होता है। मुंह सूखा, पलकें झुकी–झुकी और आंखे निस्तेज सी दिखाई देती है। पशु सीने के सहारे जमीन पर बैठता है और गर्दन शरीर को एक ओर मोड़ लेता है। तीव्र अवस्था में पशु बेहोष होकर गिर जाता है। चिकित्सा नहीं करने पर कोई–कोई पशु 24 घंटे के अंदर मर भी जाता है।

3. दस्त और मरोड़–

इस रोग के दो कारण हैं– अचानक ठंडा लग जाना और पेट में कीटाणुओं का होना। इसमें आंत में सूजन हो जाती है।

लक्षण– पशु को पेट में मरोड़, पतला और पानी जैसा दस्त होता है। साथ ही आंव के साथ खून गिरता है।

4. जेर का अंदर रह जाना–

पशु के व्याने के बाद चार–पाँच घंटों के अंदर ही जेर का बाहर निकल जाना बहुत जरूरी है। कभी–कभार जेर अंदर ही रह जाता है, जिसका कुपरिणाम मवेशी को भुगतना पड़ता है। इससे मवेशी के बाँझ हो जाने आंशका भी बनी रहती है। जेर रह जाने के कारण गर्भाशय में सूजन आ जाती है और खून भी विकृत हो जाता है।

लक्षण– बीमार गाय या भैंस बेचैन हो जाती है। झिल्ली का एक हिस्सा योनि मुख से बाहर निकल जाता है। चाकलेटी रंग का बदबूदार पानी निकलने लगता है।

5. योनि प्रदाह–

यह रोग गाय–भैंस के व्याने के कुछ दिन बाद होता है। इससे भी दुधारू मवेशियों को काफी नुकसान पहुँचता है। प्रायः जेर का कुछ हिस्सा अंदर रह जाने के करण यह रोग होता है।

लक्षण– मवेशी का तापमान थोड़ा बढ़ जाता है एवं बेचैनी बहुत बढ़ जाती है। योनि मार्ग से दुर्गन्धयुक्त पिब की तरह पदार्थ गिरता रहता है। बैठे रहने की अवस्था में तरल पदार्थ गिरता है। दूध घट जाता है या ठीक से शुरू ही नहीं हो पाता है।

6. निमोनिया–

पानी में लगातार भींगते रहने या सर्दी के मौसम में खुले स्थान में बांधे जाने वाले मवेशी को निमोनिया रोग हो जाता है। अधिक बाल वाले पशुओं को यदि नहलाने के बाद ठीक से पोंछा न जाए तो उन्हें भी यह रोग हो सकता है।

लक्षण– शरीर का तापमान बढ़ जाता है एवं सांस लेने में कठिनाई होती है। नाक से पानी बहता है एवं भूख कम हो जाती है। उत्पादन घट जाता है एवं पशु कमजोर हो जाता है। निदान हेतु बीमार मवेशी को साफ तथा गर्म स्थान पर रखना चाहिए।

7. घाव–

पशुओं को घाव हो जाना आम बात है। चरते समय बाड़ा के कटीले तार, काँटा या झाड़ी से कट कर अथवा किसी दूसरे प्रकार की चोट लग जाने से मवेशी को घाव हो जाता है। बैल के कंधों पर पालों की रगड़ से भी सूजन और घाव हो जाता है।

(ग) परजीवी जनित रोग–

बाह्य एवं आन्तरिक परजीवियों के कारण भी मवेशियों को कई प्रकार की बीमारियों परेशान करती है।

बछड़ों का रोग–

निम्नांकित रोग खासकर कम उम्र के बछड़ों को परेषान करते हैं।

1. नाभि रोग–

लक्षण– नाभि के आस–पास सूजन हो जाती है, जिसको छूने पर रोगी बछड़े को दर्द होता है। बाद में सूजा स्थान मुलायम हो जाता है तथा उसे दबाने पर खून मिला हुआ पीव निकलता है। बछड़ा सुस्त और हल्के बुखार में रहता है।

2. कब्जियत–

बछड़ों के पैदा होने के बाद अगर मल नहीं निकले तो कब्जियत हो सकती है।

3. सफेद दस्त–

यह रोग बछड़ों को जन्म से तीन सप्ताह के अंदर तक हो सकता है। यह छोटे–छोटे कीटाणु के कारण होता है। गंदे बथान में रहने वाले बछड़े या कमजोर बछड़े इस रोग का षिकार बनते हैं।

लक्षण– बछड़ों का पिछला भाग दस्त से लथ–पथ रहता है। बछड़ा सुस्त और खाना–पीना छोड़ देता है तथा शरीर का तापमान कम हो जाता है और आंखे अदंर की ओर धंस जाती है।

4. कौक्सिड़ोसिस–

यह रोग कौक्सिडिया नामक एक विशेष प्रकार के परजीवी के शरीर में प्रवेष कर जाने के कारण होता है।

लक्षण– रोग की साधारण अवस्था में दस्त के साथ थोड़ा–थोड़ा खून आता है। रोग की तीव्र अवस्था में बछड़ा खाना पीना छोड़ देता है और बछड़ा कमजोर होकर किसी दूसरी बीमारी का षिकार हो सकता है।

बचाव–

बीमारी से नियंत्रण के लिए किसान साथियों को सलाह दिया जाता है कि वो तुरन्त नजदीकी पशु चिकित्सालय में सम्पर्क करें। उचित होगा कि अधिकारी का सम्पर्क संख्या अपने पास रखें, जिससे आवश्यकतानुसार त्वरित उपचार कर सके। विश्वविद्यालय के हेल्पलाईन संख्या 05944–234810 पर भी किसी भी कार्य दिवस में प्रातः 9.30 से 1.00 बजे के बीच फोन कर निदान प्राप्त किया जा सकता है।

◆◆◆

उन्नत कुक्कुट पालन प्रबन्धन

डा० रिपुसूदन कुमार
सहायक निदेशक (षैक्षणिक कुक्कुट फार्म)
गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर
ई–मेल : kumar.ripusudan@gmail.com

भारत एक कृषि प्रधान देश है। कृषि का अर्थ फसल उत्पादन करने की क्रिया या कला, विज्ञान या तकनीक से है। इसके अन्तर्गत फसल उत्पादन, पशुपालन, मुर्गी पालन एवं कुक्कुट पालन, मधुमक्खी पालन इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है। पशुपालन एवं कुक्कुट पालन व्यवसाय को भारत की जी0डी0पी0 में महत्वपूर्ण योगदान है। उन्नत मुर्गी पालन एक ऐसा व्यवसाय है जो आय का अतिरिक्त साधन बन सकता है। यह व्यवसाय बहुत ही कम लागत में शुरू किया जा सकता है, और इसमें मुनाफा भी काफी ज्यादा है, भारत में दिन–प्रतिदिन मुर्गी पालन व्यवसाय का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। भारत, अण्डों के उत्पादन में तीसरे स्थान पर है।

मुर्गी पालन के लिए आवश्यकता–

अधिक अण्डे उत्पादन के लिए सबसे अच्छी नस्ल 'व्हाइट लेगहार्न' होती है। मांस उत्पादन के लिए कॉर्निस, असील, चटगांव आदि नस्ले हैं। मुर्गी पालन के लिए हमेशा ऐसी मुर्गियॉ पालनी चाहिए जो बड़ा अण्डा देने वाली हों। उन्नत नस्ल की मुर्गियॉ साल भर में लगभग 280–320 अण्डे देती हैं, जबकि देशी मुर्गियां केवल 150–160 अण्डे ही देती हैं। मुर्गी पालन में आहार पर 65–70 प्रतिशत खर्च होता है। इसलिए कमजोर तथा कम अण्डे देने वाली मुर्गियों की बराबर छटाई करते रहना चाहिए। मुर्गी फार्म खोलने के लिए मुर्गी पालन घर, दाना, पानी देने के लिए बर्तन, ब्रूडर, अण्डा देने का बक्सा आदि की आवश्यकता होती है।

चूजों का पालन पोशण–

छोटे चूजों की बढ़ोत्तरी के लिए उचित मात्रा में गर्मी का इंतजाम किया जाना चाहिए। यदि चूजों के घर के बाहर वातावरण काफी ठंडा हो तो चूजे के घर के अन्दर ऊँचे स्थान पर किसी बर्तन में आग जलाकर घर को गर्म रखना चाहिए। इसके अलावा बिजली चूल्हे व लैम्प जलाकर भी घर को गर्म किया जा सकता है, चूजे को किसी कमरे में 3 इंच गहरे लकड़ी के बुरादे, धान की भूसी, पुवाल की कुट्टी या भूसी जिन्हें लीटर कहते हैं, पर रखकर पालते हैं।

मुर्गी की कुछ जातियॉ तथा उनका चुनाव–

1. अधिक अण्डे देने वाली– व्हाइट लेगहार्न, मिनार्का
2. मांस देने वाली– असील, कार्निस, व्हाइट राक
3. मांस और अण्डा देने वाली– आइलैंड रेड, आस्ट्रॉलार्प इत्यादि।

मुर्गी पालन के लिए ऐसी मुर्गियां पाली जाये, जो अधिक और बड़े अण्डे देने वाली हो।

मुर्गी घर–

घर बनाते समय निम्न बातों का ध्यान रखें–

1. घर ऊँची सतह पर बनाना चाहिए।
2. अधिक धूप, ठंडक एवं वर्षा से मुर्गियों का बचाव होना चाहिए।
3. मुर्गी घर का फर्श बाहर की जमीन से 10 इंच ऊँचा होना चाहिए।

उन्नत मुर्गी पालन के लिए संतुलित आहार–

जिस आहार पर पलने वाली मुर्गियां स्वस्थ रहें उनकी बढ़ोत्तरी अच्छी हो और वे अधिक अण्डा दें उसे संतुलित आहार कहा जाता है। मुर्गियों की स्वास्थ्य एवं उत्पादन क्षमता बनाए रखने के लिए पानी, शर्करा, चिकनाई, प्रोटीन, खनिज पदार्थ तथा विटामिन आवश्यक हैं। उन्नत मुर्गी पालन के लिए साफ पानी की भी उतनी ही महत्व है जितना कि आहार का। चूजों को पहली खुराक अण्डे से निकलने के 48 घंटे बाद ही दी जाती है। चूजों को शुरूआत में स्टार्टर राशन देना चाहिए। उसके उपरान्त वृद्धि के दौरान ग्रोवर राशन एवं अण्डा देने वाली मुर्गियों को लेयर राशन देना

लाभकारी रहता है।

मुर्गियों का बीमारियों से करें बचाव–

मुर्गियों की उचित देखभाल, संतुलित आहार, साफ तथा हवादार घर और अच्छी नस्ल का चुनाव करने से रोग की संभावना बहुत कम हो जाती है। याद रखे उन्नत मुर्गी पालन के लिए मुर्गियों में शुरू से ही रोग निरोधक उपायों का अमल करना आर्थिक दृश्टि से लाभप्रद होता है क्योंकि संक्रामक रोग हो जाने पर मुर्गियों का बचाना कठिन होता है। मुर्गी बीमार पड़ते ही उसे स्वस्थ मुर्गियों के झुंड से अलग कर देना चाहिए एवं जो आदमी बीमार मुर्गियों की देखभाल करे उन्हें भी स्वस्थ मुर्गियों के पास जाने से पहले हाथ अच्छी तरह धो लेने चाहिए। मुर्गी के घर में समय–समय पर रोगाणुनाशक एवं कीटनाशक रसायन का छिड़काव भी करना चाहिए।

मुर्गियों में सामान्य रूप से चेचक, खूनी दस्त, रानीखेत, कोराईजा, परजीवी अन्य रोग पोषाहार सम्बन्धित रोग होते हैं। इससे बचाव के लिए समय–समय पर टीकाकरण एवं परजीवी नाशक दवाईयों का प्रयोग करना चाहिए। यदि किसी बीमारी के लक्षण दिखाई देते हैं तो मुर्गी पालकों को अपने नजदीकी पशु चिकित्सक से सलाह लेकर ही इलाज करवाना चाहिए।

मुर्गियों से उत्पादित अण्डों एवं मांस का व्यापार–

एक उन्नत मुर्गी पालन के लिए उनसे उत्पादित अण्डों एवं मांस की खपत या व्यापार की व्यवस्था सही ढंग से की जानी चाहिए। इसके लिए सहकारी मुर्गीपालन संस्थानों का होना आवश्यक है। सहकारी मुर्गीपालन संस्था द्वारा रोजाना अण्डों का वितरण किया जाना चाहिए। अण्डों एवं मांस की बिक्री में उत्पादन, वितरक तथा उपभोक्ता का आपसी विचार एवं एक दूसरे पर विश्वास का भाव होना चाहिए। अन्यथा कभी ऐसा होता है कि उत्पादक से ज्यादा वितरत मुनाफा कमा लेता है।

आधुनिक मुर्गी पालन के लिए याद रखने वाली कुछ मुख्य बातें–

- व्यवसाय शुरू करने से पहले मुर्गी के घर, उपकरण एवं दाने का प्रबन्ध कर लेना चाहिए।
- हमेशा उत्तम नस्ल की मुर्गियों का ही चुनाव करें।
- सदैव 8–10 मुर्गियों के लिए एक मुर्गा रखना पर्याप्त है और यदि निर्जीव अण्डा उत्पादित करना है तो मुर्गा रखने की जरूरत नही है।
- घर का निर्माण ऊँची जगह पर होना चाहिए, ताकि जमीन में नमी न रहे, क्योंकि नमी से बीमारी फैलती है।
- चूजों के एक–डेढ़ माह तक पंख नही निकलते इसलिए पंख निकलने तक उन्हें गर्म रखने का प्रबन्ध करें।
- बिजली एवं स्वच्छ पानी का प्रबन्ध मुर्गी फार्म में अवश्य होना चाहिए।
- मुर्गियों को डीप लीटर पद्धति में रखने से समय तथा जगह की बचत होती है।
- मुर्गियों को हमेशा संतुलित आहार एवं पानी ही देना चाहिए।
- मुर्गियों को चेचक एवं रानीखेत आदि का टीका अवश्य लगवायें।

पशुपालन विभाग द्वारा मुर्गी पालकों को दी जाने वाली सुविधाओं का लाभ अवश्य उठाना चाहिए।

◆◆◆

तनाव प्रबन्धन

डा० आर० पी० सिंह
प्राध्यापक (प्रसार शिक्षा)
गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय–कृषि विज्ञान केन्द्र, मटेला, अल्मोड़ा
ई–मेल : rpsingh11@gmail.com

तनाव प्रबन्धन का अर्थ है मानसिक तनाव में कमी लाना विशेषतः पुराने तनाव में। मनुष्य में तनाव के कारण कोई भी षारीरिक, रासायनिक या भावनात्मक कारक हैं जो षारीरिक या मानसिक असान्ति का करणर बनता है। जीवन में तनाव का परिणाम और आगे जीवन में तनाव बनने की औसत डिग्री द्वारा वर्गीकृत किया जा सकता है। तनाव वास्तविक रूप से बाहरी अपमान का परिणाम है, जिनके लिए तनाव का अनुभव नियंत्रण के बाहर है। यह भी तर्क दिया जाता है कि वाह्य परिस्थितियों से किसी भी आन्तरिक क्षमता में तनाव का उपज नहीं होता है, बल्कि प्रभावित व्यक्ति किस प्रकार अपने विचारों, क्षमताओं और समझ से इसकी मध्यस्थता करते हैं।

तनाव प्रबन्धन मापने की तकनीकः

तनाव के स्तर को मापा जा सकता है। एक तरीका होम्स और रेह स्टैस स्केल के प्रयोग के माध्यम से तनाव पूर्ण जीवन की घटनाओं का मूल्य निरूपण किया जा सकता है। रक्तचाप और विद्युत उत्पन्न करने वाली त्वचा की प्रक्रिया में परिवर्तन से भी तनाव परीक्षण किया जा सकता है और तनाव के स्तर में बदलाव लाया जा सकता है। एक डिजिटल थर्मामीटर जिससे त्वचा के तापमान के बदलाव का मूल्यांकन किया जा सकता है, जो लड़ने की प्रतिक्रिया के क्रियान्वयन का संकेत कर रक्त को चरम सीमाओं तक पहुंचाने से अलग कर सकते हैं। तनाव कई लक्षण पैदा करता है जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्न होते हैं इसके अलावा यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि तनाव का पूर्ण उन्मूलन अवास्तविक है, इसलिये इससे गुजर रहे लोगों के लिये तनाव का प्रबन्धन करना बहुत महत्वपूर्ण है।

तनाव प्रबन्धन के मॉडलः

तनाव मांग एवं संसाधनों के बीच असंतुलन के परिणाम स्वरूप भी होता है अथवा किसी के सहने की क्षमता से अधिक दबाव से भी हो सकता है। तनाव प्रबन्धन विकास के विचार पर आधारित है। तनाव एक तनावग्रस्त व्यक्ति के लिए एक सीधी प्रक्रिया नहीं है बल्कि एक संसाधन है, जिसमें तनाव की प्रतिक्रिया में सहने की क्षमता, पक्ष को बदलने की क्षमता और मध्यस्थता की अनुमति से तनाव पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

नियमानुसार एक प्रभावी तनाव प्रबन्धन कार्यक्रम को विकसित करने के लिए सबसे पहले यह आवश्यक है कि व्यक्ति के अन्दर केन्द्रित कारकों की पहचान जो तनाव पर प्रभावी ढंग से हस्तक्षेप करते है और उन पर नियंत्रण करते हैं। तनाव ग्रसित लोग एवं उनके बाहरी वातावरण के बीच सम्बन्धित व्यवहार पर केन्द्रित होता है। कोई भी तनाव प्रबन्धन मॉडल तनाव की अवधारणा करता है कि कैसे एक व्यक्ति अपने तनाव की वजह का मूल्यांकन करता है और अपने संसाधनों के द्वारा तनाव पर काबू पाता है। एक सम्भावित तनाव सकारात्मक या चुनौती देने के बजाय एक खतरे के रूप में माना जाता है और अगर तनाव ग्रस्त को यह विश्वास है कि तनाव से सामना करने की रणनीतियों में कोई कमी नहीं है बल्कि पर्याप्त रूप सामना करने की है। यह जरूरी नहीं है कि तनाव उपस्थित सम्भावित कारकों का अनुसरण करें। मॉडल का अर्थ है कि तनाव को कम किया जा सकता है। तनाव ग्रसित लोगों की मदद उनके तनाव पैदा करने वाले कारकों के प्रति अपनी धारणा बदलने वाले और तनाव से मुक्ति के लिए कौशल प्रदान करता है, जिससे उनके आत्मविश्वास में सुधार हो सकें।

1. स्वाभाविक स्वास्थ्य मॉडल
2. कृत्रिम मॉडल

तनाव प्रबन्धन की तकनीकः

तनाव प्रबन्धन तकनीकों और मनोचिकित्सा का

आटोजैनिक प्रशिक्षण	संज्ञानात्मक चिकित्सा	संघर्ष का हल निकालना
व्यायाम	ध्यान	शौक बनाना
गहरी सांस	विश्राम तकनीक	कलात्मक अभिव्यक्ति
आंशिक विश्राम	प्रगतिशील विश्राम	स्पा
प्रकृति के साथ बिताया गया समय	तनाव गेंदें	प्राकृतिक चिकित्सा
चिकित्सीय वैकल्पिक उपचार	समय प्रबन्धन	आरामदायक संगीत सुनना

एक व्यापक स्पैक्ट्रम है जिसका उद्देश्य किसी व्यक्ति के तनाव के स्तर को नियंत्रित करना है। विशेष रूप से पुराने तनाव आमतौर पर रोजाना के काम काज में सुधार के उद्देश्य से उपयोग किया जाता है। तनाव कई षारीरिक एवं मानसिक लक्षण पैदा करता है जो प्रत्येक व्यक्ति के परिस्थितजन्य कारकों के अनुसार भिन्न होता है। इसमें षारीरिक स्वास्थ्य में गिरावट हो सकती है जैसे सिर दर्द, सीने में दर्द, थकान और नींद की समस्याऐं साथ ही साथ अवसाद (डिप्रेशन)। तनाव से मुकाबला करने के लिए कई तकनीक हैं। समय प्रबन्धन की कुछ तकनीकें किसी व्यक्ति के तनाव को नियंत्रित करने में मदद करती है। वास्तव में यदि मांग बड़ी हो तो प्रभावी तनाव प्रबन्धन सीखने की सीमा तय करने के लिए दूसरों की कुछ मांगों को 'ना' कर देना चाहिए।

तनाव प्रबन्धन की प्रभावशीलता:

बिना दवा के प्रयोग से अन्य संयोजनों का उपयोग कर सकारात्मक परिणाम पाने के लिए किये गये प्रयोग प्रभावी होते हैं।

- क्रोध या विद्वेश का निवारण
- वार्तालाप के माध्यम से रोगोपचार
- बायो फीडबैक
- चिंता के निदान हेतु उपाय
- संकट
- मनोवैज्ञानिक लचीलापन

तनावग्रस्त व्यक्तियों की मदद उनके सोच की प्रकृति को समझकर करना चाहिए। विशेष रूप से उन्हें पहचान कर क्षमता प्रदान करना चाहिए जब वे असुरक्षित सोच की चपेट में हों। तनावग्रस्त लोगों को तनाव से छुड़ाना चाहिए और उन्हें बल देना चाहिए कि वो अपनी प्राकृतिक सकारात्मक भावनाओं का उपयोग करें, जिससे उनका तनाव कम हो जायेगा।

◆◆◆

उच्च गुणवत्ता एवं लाभ हेतु धान का भंडारण, प्रबंधन एवं विपणन

डा० यू०सी० लोहनी

कनिश्ठ शोध अधिकारी (कटाई उपरान्त प्रबन्धन एवं खाद्य अभियांत्रिकी)

गो0ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर

ई–मेल : ulohani@gmail.com

चावल (ओरिज़ा सैटिवा) खाद्य स्टार्चयुक्त अनाज और घास के (परिवार पोएसी) का पौधा है। चावल दुनिया की दूसरी सबसे महत्वपूर्ण अनाज की फसल है। विश्व की 60 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या मुख्य भोजन के रूप में चावल पर निर्भर है। अर्थशास्त्र और सांख्यिकी निदेशालय के अनुसार, 2018–2019 विपणन वर्ष के दौरान वैश्विक स्तर पर लगभग 769.66 मिलियन मीट्रिक टन का उत्पादन किया गया था। इसका उत्पादन और खपत मुख्यतः एषिया में केंद्रित है; विशेष रूप से चीन और दक्षिण–पूर्व एषिया। 43.2 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में 168.50 मिलियन मीट्रिक टन उत्पादन के साथ भारत दुनिया में दूसरा प्रमुख योगदानकर्ता है। उत्तराखंड राज्य ने 0.3 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में 0.60 मिलियन टन धान का उत्पादन किया।

कुछ देशों में चावल इतना महत्वपूर्ण भोजन है कि "खाने" का अर्थ है "चावल खाना।" दुनिया के लगभग आधे लोगों को अपनी कैलोरी का लगभग 50 प्रतिशत चावल से मिलता है। ब्राउन राइस में प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों की तुलना में अधिक फाइबर होता है जो कोलेस्ट्रॉल को कम करता है साथ ही साथ हृदय रोग और स्ट्रोक के जोखिम को कम करता है। ब्राउन राइस में विटामिन और खनिज होते हैं जो रक्त को ऑक्सीजन पहुंचाने में मदद करते हैं और अन्य महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। ग्लूटिन मुक्त होने के कारण, यह सीलिएक रोग वाले लोगों के लिए एक अच्छा विकल्प है।

कृषि में उत्पादन किसी विशेष मौसम और जलवायु पर निर्भर होता है और प्राकृतिक पर्यावरण के संपर्क में है, लेकिन उत्पादन के बाद के प्रक्रिया खाद्य आपूर्ति श्रंखला में स्थिरता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विश्व बैंक (1999) के एक अध्ययन के अनुसार भारत में खाद्यान्नों की कटाई के बाद का नुकसान खेत से बाजार स्तर तक कुल उत्पादन का 7–10 प्रतिशत और बाजार और वितरण स्तर पर 4–5 प्रतिशत है। यह बताया गया है कि लगभग 9 प्रतिशत धान, धान कटाई, थ्रेसिंग, सुखाने, भंडारण, परिवहन, प्रसंस्करण और विपणन के दौरान नुकसान हो जाता है। कटाई के बाद के नुकसान को कम करने के लिए कटाई (20–22 प्रतिशत नमी) और थ्रेसिंग (16–20 प्रतिशत नमी) के लिए उचित दिशानिर्देशों का पालन करना महत्वपूर्ण है। भंडारण एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। फसल के बाद के नुकसान को कम करने में यह एक महत्वपूर्ण और संवेदनशील तरीका है। भंडारण के दौरान होने वाले नुकसान को कम करने के लिए उत्पाद के भंडारण के लिए आवश्यक अनुकूलतम पर्यावरण की स्थिति के साथ–साथ उन परिस्थितियों को जानना महत्वपूर्ण है जिनके तहत कीड़े / कीट उत्पाद को नुकसान पहुंचाते हैं।

निम्न तालिका विभिन्न भंडारण अवधि के लिए आवश्यक "सुरक्षित" नमी को दर्शाती है

अनाज के लिए मुख्यतः नियम यह है कि नमी की मात्रा में प्रत्येक 1 प्रतिशत की वृद्धि या भंडारण तापमान में 5^0 की वृद्धि के लिए अनाज का जीवन आधा हो जाता हैं।

किसान स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्रियों से

संग्रहण अवधि	सुरक्षित भंडारण के लिए नमी (प्रतिशत)	संभावित समस्या
2 से 3 सप्ताह	14–18 प्रतिशत	मोल्ड, श्वसन हानि
8 से 12 महीने	13 प्रतिशत या उससे कम	कीट क्षति
1 वर्ष से अधिक	9 प्रतिशत या उससे कम	जीवक्षमता

बने विभिन्न प्रकार के भंडारण संरचनाओं का उपयोग करके थोक में अनाज का भंडारण करते हैं। इसके अलावा, भंडारण संरचना डिजाइन और इसका निर्माण भी भंडारण के दौरान होने वाले नुकसान को कम करने या बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भंडारण की लंबाई एवं संग्रहीत किए जाने वाले उत्पाद के आधार पर कई प्रकार के भंडारण प्रणालियां अपनाई जाती हैं जिसके उदाहरण इस प्रकार हैं।

1. पारंपरिक भंडारण संरचना–

पारंपरिक तरीके से धान का भण्डारण मुख्यतः जूट के बैगों में, ग्रेनरी या मच्छु में, वोवन बास्केट में तथा क्ले एवं मिट्टी के पात्र में किया जाता है।

2. बेहतर भंडारण संरचना–

बेहतर भण्डारण संरचना कि बात करें तो कंक्रीट बिन जो कि अग्निरोधी है तथा स्टील के बिन जो कि अग्नि एवं नमी दोनों रोधी हैं, का उपयोग धान को संरक्षित करने में किया जाता है। पूसा बिन जो कि गांवों में उपयोग की जाने वाली सामान्य मिट्टी भंडारण संरचना का एक संषोधित रूप है, का उपयोग उचित सावधानियों के साथ धान के अनाज और बीज दोनों को एक वर्ष से अधिक समय तक सुरक्षित रखने में किया जाता है। नमी प्रूफ और वायुरोधी स्थिति प्रदान करने के लिए, 700 गेज मोटाई की पॉलीथीन फिल्म को मिट्टी के डिब्बे के ऊपर, नीचे और सभी तरफ एम्बेड किया जाता है। 45 सेमी तक की पक्की हुई ईंटों के साथ बाहरी दीवारों का निर्माण किया जाता है, जो उन्हें चूहा से भी बचता है।

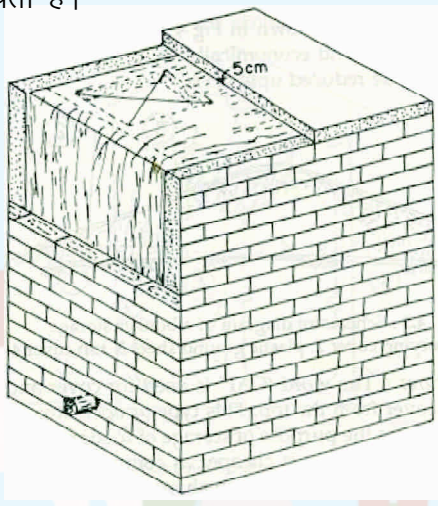

चित्र 1 : पूसा बिन

उपरोक्त के अतिरिक्त ईट की दीवारों से बने गोदाम जिनकी आमतौर पर 5000 टन की क्षमता होती है, का उपयोग भी धान को लम्बे समय तक संरक्षित रखने में किया जाता है।

3. मॉर्डन स्टोरेज स्ट्रक्चर–

3.1 साइलो–

साइलो का उपयोग आमतौर पर लंबे जीवनकाल और कीड़ों और कीट प्रतिरोध के कारण अधिकांश देशों में अनाज और धान के भंडारण के लिए किया जाता है। साइलो में भंडारण समय 6 महीने से कुछ वर्षों तक होता है और इसकी भंडारण क्षमता भी साइलो के आकार के साथ परिवर्तित होती है, जो 20 से 2000 टन के बीच हो सकती है। साइलो से अनाज को इकट्ठा करना और परिवहन करना भी आसान है। कंटेनर के सापेक्ष आयामों के आधार पर दो प्रकार की साइलो भंडारण संरचनाएं होती हैं। इन्हें इस प्रकार वर्गीकृत किया गया है।

3.1.1 शैलो बिन–

स्क्वाट साइलो षैलो बिन के अंतर्गत आते हैं। एक स्क्वाट साइलो में दीवार की ऊंचाई से व्यास अनुपात 0.5 या उससे भी कम होता है। कम लागत वाले गुणवत्ता भंडारण के लिए स्क्वाट साइलो शेड संरचना के साथ प्रतिस्पर्धा कर सकता है।

3.1.2 डीप बिन–

इस प्रकार के स्टोरेज स्ट्रक्चर के अंतर्गत वर्टिकल साइलो आते हैं। वर्टिकल साइलो दो प्रकार के होते हैं (ए) फ्लैट बॉटम वर्टिकल साइलो (बी) हॉपर

चित्र 2 : साइलो

बॉटम वर्टिकल साइलो।

4. भंडारण– सुविधाएँ–

अनाज का थोक भंडारण मुख्य रूप से व्यापारियों, सहकारी समितियों और सरकारी एजेंसियों जैसे सी. डब्ल्यू.सी, एस.डब्ल्यू.सी और अनाज विपणन सहकारी समितियों द्वारा किया जाता है।

4.1 उत्पादकों का भंडारण–

उत्पादकों द्वारा विभिन्न प्रकार की पारंपरिक और उन्नत संरचनाओं का उपयोग करके धान/चावल को फार्म गोदाम या अपने घर में थोक में स्टोर करते हैं। आमतौर पर, इन भंडारण कंटेनरों का उपयोग कम अवधि के लिए किया जाता है। निर्माता आमतौर पर अस्थायी भंडारण के लिए लचीली पीवीसी षीट का उपयोग करते हैं। कुछ उत्पादक धान/चावल को जूट की बोरियों में या पॉलीथिन से बनी बोरियों में पैक कर कमरों में रखते हैं।

4.2 ग्रामीण गोदाम–

कृशि उपज के विपणन में ग्रामीण भंडारण के महत्व को ध्यान में रखते हुए, विपणन और निरीक्षण निदेशालय ने नाबार्ड और एनसीडीसी के सहयोग से ग्रामीण गोदाम योजना शुरू की। इसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में सुविधाओं के साथ वैज्ञानिक भंडारण गोदामों का निर्माण करना और राज्यों और केंद्र षासित प्रदेशों में ग्रामीण गोदामों का एक नेटवर्क स्थापित करना है।

4.3 मंडी गोदाम–

अधिकांश धान/चावल कटाई के बाद बाजार में ले जाया जाता है। आम तौर पर, धान को थोक और बैग दोनों में हर राज्य में संग्रहित किया जाता है, जबकि चावल को बैग में रखा जाता है। अधिकांश राज्य और केंद्र षासित प्रदेशो ने कृशि उत्पाद विपणन विनियमन अधिनियम लागु किये है। एपीएमसी ने मार्केट यार्ड में भंडारण गोदामों का निर्माण किया है। आम तौर पर धान/चावल बाजार की मांग के आधार पर या प्रत्याषी लाभ के लिए बाजारों में एक महीने से छह महीने की अवधि के लिए रखा जाता है।

4.4 केंद्रीय भंडारण निगम–

कटे हुए अनाज के भंडारण के लिए, भारत सरकार ने 1956 में केंद्रीय भंडारण निगम की स्थापना की थी। जो पर्याप्त गुणवत्ता और स्वच्छ मानकों के साथ 120 कृष्ा उत्पादों को भंडारण की सुविधा प्रदान करता है। भारत सरकार के अनुसार, सेंट्रल वेयरहाउसिंग कॉरपोरेशन पूरे देश में सबसे बड़ा सार्वजनिक नियंत्रित खाद्यान्न भंडारण प्रणाली है और यह संस्था गोदाम क्षेत्र की सफाई, हैंडलिंग, परिवहन, खरीद, वितरण, कीटाणुषोधन और अन्य गुणवत्ता नियंत्रण पहलुओं जैसी सुविधाएं भी प्रदान करता है।

4.5 राज्य भंडारण निगम–

विशेष राज्यों के खाद्यान्नों के भंडारण के लिए राज्यवार राज्य भंडारण निगम का निर्माण किया गया है। राज्यों के विभिन्न जिलों के विशेष क्षेत्र के खाद्यान्नों का थोक भंडारण के लिए राज्यों में गोदामों की सुविधा प्रदान की जाती है और किसी विशेष राज्य के गोदाम में संग्रहीत अनाज की मात्रा को भारत स्तर पर उस राज्य के हिस्से के रूप में रखा जाता है।

5. विपणन प्रथाएं और बाधाएं–

संयोजन और वितरण प्रणाली एक दूसरे से संबंधित हैं। उत्पादक धान को खेत से असेंबलिंग केंद्रों तक ले जाता है, जबकि कई बाजार कार्यकर्ता अंतिम उपभोक्ता तक धान के वितरण में शामिल होते हैं। निम्नलिखित एजेंसियां विपणन के विभिन्न चरणों में धान/चावल के वितरण में शामिल हैं।

निर्माता
ग्राम व्यापारी
यात्रा करने वाले व्यापारी
खुदरा विक्रेता
थोक व्यापारी
कमीशन एजेंट
चावल मिल मालिक
सहकारी संगठन
सरकारी संगठन
निर्यात और आयात

विपणन बाधाएं:

- अस्थिर कीमतें आम तौर पर, बाजार में भारी आवक के कारण धान/चावल की कीमत फसल के बाद की अवधि (कटाई के तुरंत बाद 3–4 महीने) में कम हो जाती है और बाद में बढ़ जाती है, जिसके

परिणामस्वरूप अस्थिर कीमतें होती हैं।

- विपणन की जानकारी का अभावः प्रचलित कीमतों, आवक आदि के संबंध में बाजार की जानकारी के अभाव के कारण, अधिकांश उत्पादक धान/चावल का विपणन गाँव में ही करते हैं, जिससे उन्हें पारिश्रमिक लाभ प्राप्त नहीं हो पता।
- उत्पादकों के स्तर पर धान/चावल की ग्रेडिंग उत्पादकों को बेहतर कीमत और उपभोक्ताओं को बेहतर गुणवत्ता सुनिश्चित करती है। हालांकि, अधिकांश बाजार उत्पादकों के स्तर पर ग्रेडिंग सेवा प्रदान करने में पिछड़ें हुए हैं।
- उत्पादकों के स्तर पर परिवहन सुविधाएंः ग्रामीण स्तर पर परिवहन की अपर्याप्त सुविधाओं के कारण, अधिकांश राज्यों में, उत्पादकों को गाँव में ही धान/चावल को सीधे कम कीमत पर व्यापारियों को बेचने के लिए मजबूर होते है।
- किसानों को विपणन प्रणाली में प्रशिक्षित नहीं किया जाता है। प्रशिक्षण से उनकी उपज के बेहतर विपणन के लिए उनके कौशल में सुधार किया जा सकता है।
- बाजारों में कदाचारः धान/चावल के बाजारों में कई तरह के कदाचार होते हैं। अधिक वजन, भुगतान में देरी, उच्च कमीशन शुल्क, वजन में देरी और नीलामी, धार्मिक और धर्मार्थ उद्देश्यों आदि के लिए विभिन्न प्रकार की मनमानी कटौती की जाती है।
- बुनियादीढांचा सुविधाएंः उत्पादकों, व्यापारियों, मिल मालिकों और बाजार स्तर पर अपर्याप्त बुनियादी ढांचागत सुविधाओं के कारण, विपणन दक्षता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
- ज़रूरत से ज़्यादा बिचौलिएः बिचौलियों की एक लंबी श्रंखला होने से उत्पादक का हिस्सा कम हो जाता है।

6. विपणन की वैकल्पिक प्रणाली

6.1 प्रत्यक्ष विपणनः

प्रत्यक्ष विपणन एक अभिनव अवधारणा है, जिसमें किसानों द्वारा बिना किसी बिचौलिए के सीधे उपभोक्ताओं/मिलरों को उपज यानी धान/चावल का विपणन शामिल है। प्रत्यक्ष विपणन उत्पादकों और मिल मालिकों और अन्य थोक खरीदारों को परिवहन लागत पर बचत करने और मूल्य वसूली में सुधार करने में सक्षम बनाता है। यह बड़े पैमाने की मार्केटिंग कंपनियों यानी मिल मालिकों और निर्यातकों को सीधे उत्पादक क्षेत्रों से खरीदारी करने के लिए प्रोत्साहन भी प्रदान करता है।

6.2 अनुबंध विपणन

अनुबंध विपणन, विपणन की एक प्रणाली है जिसमें किसानों द्वारा व्यापार या प्रसंस्करण में लगी एजेंसी के साथ पूर्व–सहमत बैंक द्वारा अनुबंध के तहत कमोडिटी का विपणन किया जाता है। अनुबंध विपणन में, एक निर्माता पूर्व–सहमत मूल्य पर प्रत्याषित उपज और अनुबंधित रकम के आधार पर, उत्पादन की आवश्यक मात्रा का उत्पादन कर ठेकेदार को वितरित करेगा।

6.3 सहकारी विपणनः

"सहकारी विपणन" विपणन की वह प्रणाली है, जिसमें उत्पादकों का एक समूह आपस में एक साथ जुड़ता है और उन्हें संबंधित राज्य सहकारी समिति अधिनियम के तहत अपनी उपज का संयुक्त रूप से विपणन करने के लिए पंजीकृत करता है। सदस्य कई सहकारी विपणन गतिविधियों में भी काम करते हैं जैसे कि उत्पादन, ग्रेडिंग, पैकिंग, भंडारण, परिवहन, वित्त, आदि का प्रसंस्करण। सहकारी विपणन का मुख्य उद्देश्य उत्पादकों को लाभकारी मूल्य सुनिश्चित करना तथा विपणन की लागत में कमी करना है। यह व्यापारियों के एकाधिकार को कम करता है और विपणन प्रणाली में सुधार करता है। विभिन्न राज्यों में सहकारी विपणन संरचना में शामिल हैं:

1. मंडी स्तर पर पी.एम.एस (प्राइमरी मार्केटिंग सोसाइटी)
2. राज्य स्तर पर एस.सी.एम.एफ (राज्य सहकारी विपणन संघ)
3. ने.फे.ड (नेशनल एग्रीकल्चरल कोऑपरेटिव मार्केटिंग फेडरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड) राष्ट्रीय स्तर पर है।

7. ग्रेड विनिर्देशः

7.1 एगमार्क के तहत निर्दिष्टीकरणः

कृषि उत्पाद ग्रेडिंग और मार्किंग एक्ट 1937 के तहत धान/चावल के राष्ट्रीय मानकों को अधिसूचित

किया गया है। इस अधिनियम में बासमती चावल सहित कुछ किस्मों को शामिल किया गया है। विभिन्न गुणवत्ता कारक, ग्रेड निर्धारित करते हैं, जैसे (ए) चावल के अलावा अन्य पदार्थ (बी) टूटे चावल (सी) टुकड़े (डी) क्षतिग्रस्त अनाज (ई) चाकली अनाज (एफ) 1000 कर्नेल वजन और (जी) अनाज का आकार यानी लंबाई और चौड़ाई (एल/बी अनुपात)। धान और चावल के लिए एगमार्क मानक नीचे दिए गए हैं एगमार्क के तहत धान की ग्रेड विशिष्टता

7.2 भारतीय खाद्य निगम

भारतीय खाद्य निगम सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत वितरण और धान/चावल के बफर स्टॉक को बनाए रखने के लिए सभी राज्यों से धान/चावल की खरीद के लिए नोडल सरकारी एजेंसी है। खरीद के उद्देश्य से, एफसीआई धान/चावल के लिए कुछ ग्रेड विनिर्देशों को अपनाता है। इन विशिष्टताओं को प्रत्येक सीजन के लिए अलग से एफसीआई द्वारा परिचालित और अपनाया जाता है। इन विशिष्टताओं के अनुसार, धान और चावल को दो समूहों सामान्य और ग्रेड 'ए' में वर्गीकृत किया गया है।

7.3 कृषि और प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद निर्यात विकास के विनिर्देश प्राधिकरण (एपीडा):

एपीडा ने भारतीय बासमती को रॉ मिल्ड राइस, मिल्ड पारबोल्ड राइस, ब्राउन बासमती राइस और पारबोल्ड ब्राउन बासमती राइस के रूप में वर्गीकृत किया है। इन मानकों को उनकी न्यूनतम और अधिकतम सीमाओं को ध्यान में रखते हुए कुछ गुणवत्ता विशेषताओं के आधार पर तैयार किया गया है। मुख्य विशेषताएं चावल के दाने की औसत प्रीकुक लंबाई, नमी प्रतिशत, रंगहीन, चालकी और टूटे हुए अनाज प्रतिशत, विदेशी पदार्थ आदि हैं।

◆◆◆

कृषि विभाग की प्रमुख योजनाएं एवं कृषकों को देय सुविधायें

श्रीमती विधि उपाध्याय, पादप सुरक्षा अधिकारी एवं **डा० अजय कुमार वर्मा**, मुख्य कृषि अधिकारी
कृषि विभाग, जनपद–ऊधम सिंह नगर
ई–मेल : caousnagar@gmail.com

1. राष्ट्रीय कृषि विकास योजना – (RKVY)

- **कृषि यंत्रीकरण :** योजनान्तर्गत कृषि से सम्बन्धित विभिन्न यंत्र किसानों को अनुदान पर उपलब्ध करायें जा रहे हैं।
- **भूमि संरक्षण कार्यक्रम :** इस परियोजना के अन्तर्गत प्रदेश के विभिन्न जनपदों में एकीकृत कृषि विकास कार्य सम्पादित किये जा रहे हैं, जिसमें कृषकों को खेतों में चैकडैम, चैकवाल, पौधरोपण, उद्यानीकरण, सुरक्षा दीवार, कृषि कार्य, घास रोपण आदि कार्य किये जाते हैं।
- खरीफ एवं रबी मौसम में कृषक महोत्सव का आयोजन न्याय पंचायत स्तर पर किया जाता है।
- उपरोक्त के अतिरिक्त 18 विभागों जैसे– उद्यान, पशुपालन, रेषम, डेयरी, कृषि उत्पादन विपणन बोर्ड, मत्स्य, जड़ी–बूटी, भेड़ एवं ऊन आदि विभागों द्वारा योजना के अन्तर्गत परियोजनायें संचालित की जा रही हैं।

2. राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (NFSM)

प्रदेश में चावल, गेहूं, दलहन एवं तिलहन फसलों का उत्पादन तथा उत्पादकता बढ़ाने के उद्देश्य से राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन योजना चलाई जा रही है। योजना भारत सरकार तथा राज्य सरकार के मध्य 90:10 के फण्डिंग पैटर्न पर संचालित है। इसके अन्तर्गत विभिन्न कार्यक्रम सम्मिलित हैं :–

2.1 राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (एन.एफ.एस.एम.)– चावल

क्र. सं.	कार्य मद	अनुदान की धनराशि/मानक
1.	**क्लस्टर डिमोन्स्ट्रेशन**	
	सीधी बुवाई/लाइन ट्रान्सप्लांटिंग/श्री धान/हाइब्रिड–धान	₹ 9000 प्रति है.
	क्रॉपिंग सिस्टम बेस्ड डिमोन्स्ट्रेशन (धान–मटर/धान–मसूर)	₹ 15000 प्रति है.
2.	बीज वितरण (अ) हाइब्रिड–धान बीज	मूल्य का 50 प्रतिशत या ₹ 10000/कुंतल जो भी कम हो
	(ब) अधिक उपजदायी प्रजाति बीज (दस वर्ष से कम अवधि की प्रजाति)	मूल्य का 50 प्रतिशत या ₹ 2000/कुंतल जो भी कम हो
	(स) अधिक उपजदायी प्रजाति बीज (दस वर्ष से अधिक पुरानी प्रजाति)	मूल्य का 50 प्रतिशत या ₹ 1000/कुंतल जो भी कम हो
3.	**पौध एवं मृदा प्रबन्धन** सूक्ष्म पोषक तत्व/कृषि रक्षा रसायन/ खरपतवारनाशी वितरण	मूल्य का 50 प्रतिशत या ₹ 500/हैक्टेयर जो भी कम हो
4.	यंत्र वितरण एवं जल अनुप्रयोग यंत्र– (अ) मैनुअल स्प्रेयर/ड्रम सीडर/सीड ड्रिल/जीरो टिल सीड ड्रिल/ पावर टिलर/पावर वीडर्स/रोटावेटर/टर्बोसीडर/लेजर	मूल्य का 50 प्रतिशत या अनुदान की अनुमन्य सीमा जो कि विभिन्न यंत्रों हेतु पृथक–पृथक है।

	लैण्ड लेवलर/पैडी थ्रेसर/मल्टी क्रॉप थ्रेसर/जल पंप/जल संवहन पाईप	
5.	**कृषक प्रशिक्षण**	₹ 3000/सत्र या ₹ 14000 प्रति प्रशिक्षण/4 सत्र
6.	लोकल इनिसियेटिव – (अ) कस्टम हायरिंग हेतु सहायता	₹ 1500/है.
	(ब) एन.जी.ओ. द्वारा प्रदर्शन	₹ 9900/है.

2.2 राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (एन.एफ.एस.एम.)– गेहूं

क्र. सं.	कार्य मद	अनुदान की धनराशि/मानक
1.	गेहूं के उन्नत तकनीकों के फसल प्रदर्शन	
	(अ) क्लस्टर डिमोन्स्ट्रेशन	₹ 9000/है.
	(ब) क्रॉपिंग सिस्टम बेस्ड डिमोन्स्ट्रेशन मक्का/उर्द/ राजमा–गेहूं	₹ 15000/है.
2.	(अ) अधिक उपजदायी प्रजाति बीज (10 वर्ष से कम अवधि की प्रजातियां)	मूल्य का 50 प्रतिशत या ₹ 2000/कुंतल जो भी कम हो
	(ब) अधिक उपजदायी प्रजाति बीज (10 वर्ष से अधिक अवधि की प्रजातियां)	मूल्य का 50 प्रतिशत या ₹ 1000/कुंतल जो भी कम हो
3.	आवश्यकतानुसार पौध एवं मृदा प्रबन्धन–सूक्ष्म पोषक तत्व/जिप्सम/कृषि रक्षा रसायन एवं जैस रसायन/खरपतवारनाशी वितरण	मूल्य का 50 प्रतिशत या ₹ 500/हैक्टेयर एवं जिप्सम हेतु ₹ 750/हैक्टेयर जो भी कम हो
4.	संसाधन संरक्षण यंत्र वितरण/ऊर्जा प्रबन्धन एवं जल अनुप्रयोग यंत्र–मैनुअल स्प्रेयर/पावर नैपसेक स्प्रेयर/जीरो टिल सीड ड्रिल कम फर्टीलाइजर ड्रिल/पावर वीडर/पावर टिलर/पावरवीडर/रीपर/सीडड्रिल/रोटावेटर/टर्बोसीडर/लेजर लैण्ड लेवलर/पैडी थ्रेसर/मल्टी क्रॉप थ्रेसर/रीपर बाइन्डर/जल पंप/जल संवहन पाईप, स्प्रिंकलर सेट एवं मोबाइल रेन गन।	मूल्य का 50 प्रतिशत या अनुदान की अनुमन्य सीमा जो कि विभिन्न यंत्रों हेतु पृथक–पृथक है।
5.	फसल चक्र आधारित प्रशिक्षण (चार सत्र– एक खरीफ एवं रबी से पहले तथा एक–एक प्रत्येक खरीफ एवं रबी के मध्य में)	₹ 3500/सत्र या ₹ 14000 प्रति प्रशिक्षण
6.	अन्य पहल– (अ) कस्टम हायरिंग केन्द्रों हेतु सहायता –	₹ 1500/है.
	(ब) विशेष परियोजना स्वयं सहायता समूहों हेतु आटा चक्की पर सहायता (100–500 किग्रा. क्षमता प्रतिदिन)	₹ 76000/इकाई या मूल्य का 50 प्रतिशत जो भी कम हो
	(स) एन.जी.ओ. द्वारा फसल प्रदर्शन	₹ 9900/है.

2.2 राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (एन.एफ.एस.एम.)– मोटे अनाज

क्र. सं.	कार्य मद	अनुदान की धनराशि/मानक
1.	उन्नत तकनीकी के फसल प्रदर्शन–	
	(अ) मक्का/जौ	₹ 6000/है.
	(ब) अर्न्तवर्तीय फसल प्रदर्शन–(मक्का+दलहन)	₹ 6000/है.

2.	उन्नतशील प्रजातियों के बीज वितरण–मक्का/जौ	
	(अ) 10 वर्ष से कम अवधि की प्रजातियां	₹ 3000/कुंतल या मूल्य का 50 प्रतिशत जो भी कम हो
	(ब) 10 वर्ष से अधिक अवधि की प्रजातियां	₹ 1500/कुंतल या मूल्य का 50 प्रतिशत जो भी कम हो
	(स) संकर मक्का बीज वितरण	मूल्य का 50 प्रतिशत या ₹ 10000/कुंतल जो भी कम हो

2.3 राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (एन.एफ.एस.एम.)– दलहन

क्र. सं.	कार्य मद	अनुदान की धनराशि/मानक
1.	उन्नत तकनीकी के समूह प्रदर्शन	
	(अ) उर्द/गहत (कुल्थी)/चना/मूंग/अरहर/मसूर इत्यादि	₹ 9000/है.
	(ब) फसल–चक्र आधारित प्रदर्शन मक्का–मसूर/मटर एवं मंडुवा–मसूर इत्यादि।	₹ 15000/है.
	(स) अन्तर्वर्तीय फसल–मक्का+उर्द, अरहर+सोयाबीन, गन्ना+उर्द /मूंग/मसूर	₹ 9000/है.
2.	उन्नतशील प्रजातियों के बीज वितरण–अरहर/मूंग/उर्द/ चना/गहत/मसूर आदि	
	(अ) 10 वर्ष से कम अवधि की प्रजातियां	मूल्य का 50 प्रतिशत या ₹ 5000/कुंतल या जो भी कम हो
	(ब) 10 वर्ष से अधिक अवधि की प्रजातियां	मूल्य का 50 प्रतिशत या ₹ 2500/कुंतल जो भी कम हो
	(स) संकर मक्का बीज वितरण	मूल्य का 50 प्रतिशत या ₹ 10000/कुंतल जो भी कम हो
3.	समेकित पोषक तत्व/कीट प्रबन्धन–सूक्ष्म पोषक तत्व/जिप्सम /सल्फर/जैव उर्वरक/पौध रक्षा रसायन वितरण/ खरपतवारनाशी	मूल्य का 50 प्रतिशत या ₹ 500/है., जिप्सम हेतु ₹ 750/है. एवं जैव उर्वरक हेतु ₹ 300/है. जो भी कम हो
4.	संसाधन संरक्षण यंत्र/ऊर्जा प्रबन्धन–मानव चालित स्प्रेयर/ जीरो टिल सीड कम फर्टीलाइजर ड्रिल/रोटावेटर/ट्रैक्टर माउण्टेड स्प्रेयर/मल्टीक्रॉप थ्रेसर/जल पम्प/जल संवहन पाईप/मोबाईल रेन गन	मूल्य का 50 प्रतिशत SMAM की गाइडलाइन के अनुसार।
5.	फसल चक्र आधारित कृषक प्रशिक्षण (चार सत्रः एक–एक खरीफ एवं रबी मौसम से पहले तथा एक–एक खरीफ एवं रबी मौसम के मध्य)	₹ 3500/सत्र, चार सत्रों के या ₹ 14000 प्रति प्रशिक्षण।
6.	स्थानीय पहल– (अ) दाल मिल	मूल्य का 50 प्रतिशत तथा ₹ 1.25 लाख प्रति इकाई (एस.एम.ए.एम. के मानक अनुसार)
7.	अन्य पहल–	
	(अ) स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा फसल प्रदर्शन	₹ 9900/है.
	(ब) कस्टम हायरिंग हेतु सहायता	₹ 1500/है.

2.4 राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (एन.एफ.एस.एम.)– तिलहन

क्र. सं.	कार्य मद	अनुदान की धनराशि/मानक
1.	बीज वितरण	
	(अ) सोयाबीन/तोरिया/सरसों/राई	मूल्य का 50 प्रतिशत या ₹ 4000/कु. जो भी कम हो
	(ब) तिल	मूल्य का 50 प्रतिशत या ₹ 8000/कु. जो भी कम हो
2.	ब्लॉक डिमोस्ट्रेशन (सोयाबीन/तोरिया/सरसों/राई/तिल)	
	(अ) सोयाबीन	₹ 6000/है.
	(ब) सरसों/तोरिया/राई एवं तिल	₹ 3000/है.
	(स) मधुमक्खी पालन के साथ तोरिया/सरसों डिमोस्ट्रेशन	₹ 5000/है.
3.	कृषक प्रशिक्षण (30 कृषकों के समूह का दो दिन हेतु)	₹ 24000/प्रशिक्षण
4.	अधिकारी प्रशिक्षण (20 प्रसार अधिकारियों/कर्मियों/इनपुट डीलर हेतु दो दिवसीय प्रशिक्षण)	₹ 36000/प्रशिक्षण
5.	कृषि निवेश वितरण (अ) जिप्सम/पाइराटस/लाइमिंग/डोलोमाइट/एस.एस.पी./सल्फर इत्यादि	मूल्य का 50 प्रतिशत या ₹ 750/है. जो भी कम हो
	(ब) पी.एस.बी./जेड.एस.बी./राइजोबियम/एजोटोबैक्टर/माइकोराइजा इत्यादि	मूल्य का 50 प्रतिशत या ₹ 300/है. जो भी कम हो
	(स) पौध रक्षा रसायन/कीटनाशी/जैव कीटनाशी/खरपतवारनाशी/सूक्ष्म पोषक तत्व इत्यादि	मूल्य का 50 प्रतिशत या ₹ 500/है. जो भी कम हो
6.	पौध रक्षा यंत्र वितरण–मानव चलित स्प्रेयर/पावर स्प्रेयर < 16 लीटर	मूल्य का 50 प्रतिशत या अनुदान की अनुमन्य सीमा जो कि विभिन्न यंत्रों हेतु पृथक–पृथक है।
7.	कृषि यंत्र एवं सिंचाई उपकरण वितरण (अ) ट्रैक्टर चालित यंत्र–रोटावेटर/जीरो टिल सीड ड्रिल/ सीड ड्रिल/मल्टीक्रॉप थ्रेसर	मूल्य का 50 प्रतिशत या अनुदान की अनुमन्य सीमा जो कि विभिन्न यंत्रों SMAM की गाइडलाइन के अनुसार।
	(ब) जल संवहन पाइप वितरण	मूल्य का 50 प्रतिशत या ₹ 50/मी. जो भी कम हो (एच.डी.पी.ई. पाइप)
8.	फ्लैक्सी फण्ड– (अ) ऑयल मिल/डिहाईड्रेसन यूनिट/प्रिकिंग मशीन/ह्यूमेडीफायर/पैकिंग मशीन	एस.एम.ए.एम. की गाइड लाइन के अनुसार मूल्य का 50 प्रतिशत या ₹ 150000/इकाई जो भी कम हो
	(ब) डीजल पंप वितरण	मूल्य का 50 प्रतिशत या ₹ 15000/इकाई जो भी कम हो

3. प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना (PMFBY)

उत्तराखण्ड सरकार द्वारा प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना (पी.एम.एफ.बी.आई.) को रबी 2020–21 में लागू करने सम्बन्धी राज्य अधिसूचना जारी कर दी गयी है। राज्य सरकार द्वारा प्रदेश में योजना के क्रियान्वयन हेतु एग्रीकल्चर इंष्योरेंस कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड (ए. आई.सी.) को अधिकृत किया गया है। अधिसूचना के अनुसार, संसूचित फसलें, जिले, बीमा की इकाई एवं बीमित राशि का विवरण निम्नानुसार है:

फसल	जिला	बीमा की इकाई	बीमित राशि (₹)
गेहूं	देहरादून मैदानी, हरिद्वार, ऊधमसिंहनगर एवं नैनीताल मैदानी	न्याय पंचायत clubbed	बीमित राशि ऋणी एवं गैर ऋणि कृषकों के लिये बीमा राशि प्रति हैक्टेय संसूचित फसल के ऋण वित्तमान के अनुसार होगी जैसा कि अधिसूचना में अंकित है तथा नीचे दी गई तालिका में वर्णित है। **ऋणी कृषकों के लिये बीमित राशि ऋण वित्तमान/बीमित राशि को संसूचित फसल के क्षेत्रफल से गुणा करके निर्धारित की जायेगी तथा गैर ऋणी कृषकों की बीमित राशि सम्बन्धित कृषक द्वारा प्रस्तावित क्षेत्रफल को ऋण वित्तमान/बीमित राशि से गुणा करके बीमित राशि निकालकर आच्छादन किया जायेगा।**

4. मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना (SHC)

मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना ग्रामों में जहां पर पोषक तत्वों को अत्यधिक कमी संज्ञान में आयी है। मृदा स्वास्थ्य कार्ड उपलब्ध कराने के उद्देश्य से प्रारम्भ की गयी है जिससे पोषक तत्वों की कमी के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग किया जा सके। योजनान्तर्गत कृषकों को निःशुल्क मृदा स्वास्थ्य कार्ड उपलब्ध कराये जा रहे हैं।

योजना के मुख्य उद्देश्य–

क्लस्टर एप्रोच के आधार पर चयनित जैविक ग्रामों में पी.जी.एस. सर्टीफिकेशन के अन्तर्गत जैविक कृषि का प्रोत्साहन किया जाना है। योजना के अन्तर्गत जैविक खेती पर कृषक प्रशिक्षण एवं कृषक भ्रमण कार्यक्रम कराया जा रहा है तथा पी.जी.एस. प्रमाणीकरण, एकीकृत खाद प्रबन्धन, मृदा परीक्षण, जैविक उत्पादों का विपणन एवं कृषि यंत्रों हेतु कृषकों को वित्तीय सहायता उपलब्ध करायी जा रही है।

परम्परागत कृषि विकास योजना के अन्र्गत कार्य मद एवं राज सहायता

क्र.सं.	कार्य मद	व्यय के मानक
1.	क्लस्टर गठन, प्रशिक्षण एवं एक्सपोजर भ्रमण।	₹ 1000 प्रति क्लस्टर
2.	प्रक्षेत्र कार्मिकों की तैनाती एवं योजना क्रियान्वयन के प्रबन्ध हेतु व्यय।	₹ 1500/है.
3.	भौतिक सत्यापन, प्रमाणीकरण प्रक्रिया एवं प्रमाणपत्र जारी करने हेतु सेवा शुल्क	₹ 700/है.
4.	डी.बी.टी. के माध्यम से जैविक में परिवर्तन, ऑन फार्म एवं ऑफ फार्म निवेश हेतु कृषकों को प्रोत्साहन धनराशि I- जैविक बीज एवं सामग्री II- वर्मी कम्पोस्ट पिट/नाडेप 7x3x2 (5000 प्रति पिट) III- प्रोम (1000 प्रति है.) IV- बायो फर्टिलाइजर/बायो पेस्टीसाइडस (1500 ₹ प्रति है.)	₹ 12000/है.

	V- वेस्ट डिकम्पोजर (100 ₹ प्रति है.) VI- नैप सेक स्प्रेयर 1400 ₹ प्रति इकाई VII- ऑनफार्म निवेश (पंचगव्य, जीवांमृत, बीजामृत आदि) BOTANICAL EXTRACT KIT (1500 ₹ प्रति है.)	
5.	ब्राण्ड ब्यूल्डिंग, मेले, प्रदर्शन, प्रचार–प्रसार एवं स्थानीय मेलो तथा राष्ट्रीय मेलों में प्रतिभाग।	₹ 650/है.
6.	प्रासांगिक व्यय	

5. राष्ट्रीय कृषि प्रसार एवं प्रौद्योगिकी मिशन (NMAET)

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत निम्न योजनायें संचालित की जा रही हैः–

5.1 सब मिशन ऑन एग्रीकल्चर एक्सटेंशन योजना की घटक योजना ''सपोर्ट टू स्टेट एक्सटेंशन प्रोग्राम फॉर एक्सटेंशन रिफार्मर्स आतमा'' योजना में संचालित मुख्य गतिविधियों के मानक

क्र. सं.	कार्यक्रम	राज्य सरकार के मानक	विवरण
1.	**कृषक प्रशिक्षण–** अन्तर्राज्यीय, राज्य अन्तर्गत, जिला अन्तर्गत	क्रमशः ₹ 1250, ₹ 1000 एवं ₹ 400/250 प्रति कृषक प्रतिदिन	कृषकों को समय–समय पर सम्बन्धित संस्थानों के माध्यम से प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है।
2.	**प्रदर्शन–** कृषि, रेखीय विभाग, उद्यान, पशुपालन, मत्स्य, रेशम, गन्ना	₹ 4000 प्रति एकड़	कृषि एवं रेखीय विभागों से सम्बन्धित विषयों पर समय–समय पर कृषकों के प्रक्षेत्रों पर प्रदर्शन आयोजित किया जाता है।
3.	**कृषक भ्रमण कार्यक्रम–** अन्तर्राज्यीय, राज्य अन्तर्गत, जिला अन्तर्गत	क्रमशः ₹ 1000, ₹ 500, एवं ₹ 300 प्रति कृषक प्रतिदिन	कृषि एवं रेखीय विभागों के कृषकों को समय–समय पर अध्ययन भ्रमण कराया जाता है।
4.	कृषक समूहों का क्षमता विकास/सीडमनी प्रति समूह प्रतिवर्ष/प्रति समूह एक बार	₹ 5000/10000 प्रति समूह	कोमोडेटी आधारित स्वयं सहायता समूह को उनकी क्षमता में वृद्धि हेतु प्रशिक्षण एवं आवश्यकता अनुरूप चक्रीय निधि फण्ड प्रदान किया जाता है।
5.	किसान मेलों का आयोजन प्रति जनपद	अधिकतम ₹ 400000 प्रति जनपद	किसान मेलों के माध्यम से कृषकों की नवीनतम तकनीकी से अवगत कराया जाता है।
6.	कृषक वैज्ञानिक संवाद	₹ 20000 प्रति संवाद	प्रत्येक वर्ष खरीफ एवं रबी में कृषकों और वैज्ञानिकों के मध्य समस्याओं के समाधान एवं सुझाव हेतु संवाद कार्यक्रम।
7.	किसान गोष्ठी/फील्ड डे (जनपद/ब्लॉक स्तर)	₹ 15000 प्रति गोष्ठी	किसान गोष्ठी के माध्यम से कृषकों को नवीनतम तकनीकी से अवगत कराया जाता है।
8.	फार्म स्कूल ब्लॉक स्तर	₹ 29000 प्रति फार्म स्कूल	प्रगतिशील एवं अनुभवी कृषकों के माध्यम से फार्म स्कूल स्थापित कर अन्य कृषकों को प्रशिक्षित करना।
9.	**कृषक पुरस्कार–** राज्य, जनपद एवं ब्लॉक स्तर	क्रमशः ₹ 50000, ₹ 25000, ₹ 10000 प्रति कृषक	विभिन्न इन्टरप्राईजेज के कृषकों को क्रमशः किसान रत्न, किसान भूषण एवं किसान श्री की उपाधि से सम्मानित किया जाता है।

5.2 सब मिशन ऑन एग्रीकल्चर मैकेनाईजेशन (SMAM)

यह योजना 90 प्रतिशत केन्द्रांश तथा 10 प्रतिशत राज्यांश पर संचालित है। भारत सरकार द्वारा वित्तीय वर्ष 2014–15 से राष्ट्रीय कृषि प्रसार एवं प्रौद्योगिकी मिशन के अन्तर्गत कृषि यंत्रीकरण सब मिशन चलाया जा रहा है। योजना से प्रदेश के पर्वतीय एवं मैदानी क्षेत्रों को कृषि यंत्रीकरण में आच्छादित किया जा सकता है। प्रदेश में कृषि यंत्रीकरण को बढ़ावा देने तथा कृषि क्षेत्र एवं फार्म पावर के अनुपात में 02 कि. वॉट प्रति है. तक की वृद्धि करने के लिये कृषि यंत्रीकरण योजना महत्वपूर्ण हैं।

कृषि विभाग द्वारा SMAM योजना अन्तर्गत कृषि यंत्रों पर देय अनुदान

कार्य मद	लाभार्थी श्रेणी	अनुदान की अधिकतम सीमा प्रति मशीन/यंत्र/लाभार्थी
कस्टम हायरिंग सेन्टर की स्थापना	अ.ज.जाति	₹ 10.00 लाख तक की इकाई हेतु ₹ 4.00 लाख अथवा मूल्य का 40 प्रतिशत जो भी कम हो
	अनु.जाति	
	लघु सीमान्त/महिला	
	अन्य लाभार्थी	
ट्रैक्टर 2 WD (above 40-70 PTO HP)	अ.ज.जाति	₹ 4.25 लाख अथवा मूल्य का 50 प्रतिशत जो भी कम ह
	अनु.जाति	
	लघु सीमान्त/महिला	
	अन्य लाभार्थी	₹ 3.40 लाख या मूल्य का 40 प्रतिशत जो भी कम हो
ट्रैक्टर 2 WD (above 20-40 PTO HP)	अ.ज.जाति	₹ 2.50 लाख अथवा मूल्य का 50 प्रतिशत जो भी कम ह
	अनु.जाति	
	लघु सीमान्त/महिला	
	अन्य लाभार्थी	₹ 2.00 लाख या मूल्य का 40 प्रतिशत जो भी कम हो
ट्रैक्टर चालित यंत्र (above 35 BHP)	अ.ज.जाति	₹ 0.50 लाख अथवा मूल्य का 50 प्रतिशत जो भी कम ह
	अनु.जाति	
	लघु सीमान्त/महिला	
	अन्य लाभार्थी	₹ 0.40 लाख या मूल्य का 40 प्रतिशत जो भी कम हो
रोटावेटर (7 feet)	अ.ज.जाति	₹ 0.476 लाख अथवा मूल्य का 50 प्रतिशत जो भी कम
	अनु.जाति	
	लघु सीमान्त/महिला	
	अन्य लाभार्थी	₹ 0.381 लाख या मूल्य का 40 प्रतिशत जो भी कम हो
लेजर लेण्ड लेवलर	अ.ज.जाति	₹ 2.00 लाख अथवा मूल्य का 50 प्रतिशत जो भी कम ह
	अनु.जाति	
	लघु सीमान्त/महिला	
	अन्य लाभार्थी	₹ 1.60 लाख या मूल्य का 40 प्रतिशत जो भी कम हो
बण्ड फार्मर	अ.ज.जाति	₹ 0.30 लाख अथवा मूल्य का 50 प्रतिशत जो भी कम ह
	अनु.जाति	
	लघु सीमान्त/महिला	
	अन्य लाभार्थी	₹ 0.25 लाख या मूल्य का 40 प्रतिशत जो भी कम हो
सीड ड्रिल/जीरो ड्रिल (11 टाईन)	अ.ज.जाति	₹ 0.241 लाख अथवा मूल्य का 50 प्रतिशत जो भी कम
	अनु.जाति	
	लघु सीमान्त/महिला	

	अन्य लाभार्थी	₹ 0.193 लाख या मूल्य का 40 प्रतिशत जो भी कम हो
स्ट्रारिपर	अ.ज.जाति	₹ 1.30 लाख अथवा मूल्य का 50 प्रतिशत जो भी कम हो
	अनु.जाति	
	लघु सीमान्त/महिला	
	अन्य लाभार्थी	₹ 1.04 लाख या मूल्य का 40 प्रतिशत जो भी कम हो
रिर्वसेवल हाइड्रोलिक प्लाउ (2 बॉटम)	अ.ज.जाति	₹ 0.70 लाख अथवा मूल्य का 50 प्रतिशत जो भी कम हो
	अनु.जाति	
	लघु सीमान्त/महिला	
	अन्य लाभार्थी	₹ 0.56 लाख या मूल्य का 40 प्रतिशत जो भी कम हो
रिर्वसेवल हाइड्रोलिक प्लाउ (3 बॉटम)	अ.ज.जाति	₹ 0.895 लाख अथवा मूल्य का 50 प्रतिशत जो भी कम हो
	अनु.जाति	
	लघु सीमान्त/महिला	
	अन्य लाभार्थी	₹ 0.716 लाख या मूल्य का 40 प्रतिशत जो भी कम हो
पैडी थ्रेसर/मल्टीक्रॉप थ्रेसर/थ्रेसर	अ.ज.जाति	₹ 1.00 लाख अथवा मूल्य का 50 प्रतिशत जो भी कम हो
	अनु.जाति	
	लघु सीमान्त/महिला	
	अन्य लाभार्थी	₹ 0.80 लाख या मूल्य का 40 प्रतिशत जो भी कम हो
रीपर कम बाईन्डर (4 व्हील)	अ.ज.जाति	₹ 2.50 लाख अथवा मूल्य का 50 प्रतिशत जो भी कम हो
	अनु.जाति	
	लघु सीमान्त/महिला	
	अन्य लाभार्थी	₹ 2.00 लाख या मूल्य का 40 प्रतिशत जो भी कम हो
पावर ट्रिलर (8 एच.पी. या अधिक)	अ.ज.जाति	₹ 0.85 लाख अथवा मूल्य का 50 प्रतिशत जो भी कम हो
	अनु.जाति	
	लघु सीमान्त/महिला	
	अन्य लाभार्थी	₹ 0.70 लाख या मूल्य का 40 प्रतिशत जो भी कम हो
पावर नेपसैक स्प्रेयर (16 ली. क्षमता से अधिक)	अ.ज.जाति	₹ 0.10 लाख अथवा मूल्य का 50 प्रतिशत जो भी कम हो
	अनु.जाति	
	लघु सीमान्त/महिला	
	अन्य लाभार्थी	₹ 0.08 लाख या मूल्य का 40 प्रतिशत जो भी कम हो

6. प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना

योजना का उद्देश्य सिंचाई सुविधाओं को विकसित करना, सिंचित क्षेत्र में वृद्धि करना, जल स्त्रोतों का एकीकरण, वितरण एवं सही तकनीकी अपना कर जल का सदुपयोग करना, जल का अपव्यय रोक कर और जल की उपलब्धता बढ़ाकर प्रक्षेत्र पर ही जल की क्षमता में वृद्धि करना, जल की हर बूँद का सदुपयोग करना, जल स्रेत के रिचार्ज को बढ़ाना एवं टिकाऊ जल संरक्षण प्रयोगों (Practices) की जानकारी कराना, भूमि जल संरक्षण तथा जन सहभागिता से सिंचाई सुविधाओं को बढ़ाना है।

पी.एम.के.एस.वाई. (पर ड्रॉप मोर क्रॉप) के अन्तर्गत संचालित कार्यक्रम एवं अनुदान मानक

क्र. सं.	कार्य मद	योजना में अनुदान के मानक	व्यय के मानक
1.	जल संग्रहण संरचनायें		
	1–जल संरक्षण संरचनायें	NMSA	मूल्य का 100 प्रतिशत या अधिकतम ₹ 2.50 लाख/संरचना 01 है. कमांड क्षेत्रफल
	2–चैक डेम	IWMP	मूल्य का 100 प्रतिशत या अधिकतम ₹ 1.80 लाख/इकाई जो भी कम हो
	3–वर्षा जल संग्रहण/संरचनायें	IWMP	मूल्य का 50 प्रतिशत या अधिकतम ₹ 10000/ इकाई जो भी कम हो
	4–कच्चा तालाब	IWMP	मूल्य का 100 प्रतिशत या अधिकतम ₹ 15000/ इकाई जो भी कम हो
2.	जल संवहन यंत्र		
	1–सिंचाई नाली (सामुदायिक)	IWMP	मूल्य का 100 प्रतिशत या अधिकतम ₹ 50000/ है. जो भी कम हो
	2–एच.डी.पी.ई. पाइप	NMSA	मूल्य का 50 प्रतिशत या ₹ 50/मी. या अधिकतम ₹ 12000/है. जो भी कम हो
3.	पूरक सिंचाई व्यवस्था		
	1–जल पम्प	NMSA	मूल्य का 50 प्रतिशत या अधिकतम ₹ 15000/ इकाई जो भी कम हो
	2–ट्यूब वैल		
	अ–गहरी एवं उथली ट्यूब वैल	NMSA	मूल्य का 50 प्रतिशत या अधिकतम ₹ 25000/ इकाई जो भी कम हो
	ब–गहरी ट्यूब वैल	IWMP	मूल्य का 50 प्रतिशत या अधिकतम ₹ 100000/ इकाई जो भी कम हो
4.	जल संरक्षण का पुर्नउद्धार एवं मरम्मत	NMSA	मूल्य का 50 प्रतिशत या अधिकतम ₹ 15000/ इकाई जो भी कम हो
	Bold संरचनाओं का सुदृढ़ीकरण		
	1–वाह्य भ्रमण	SMAE	मूल्य का 100 प्रतिशत या अधिकतम ₹ 400 प्रति दिन प्रति व्यक्ति
	2–जिला स्तरीय प्रशिक्षण	SAME	मूल्य का 100 प्रतिशत या अधिकतम ₹ 250 प्रति दिन प्रति व्यक्ति

सूक्ष्म सिंचाई– प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना के अन्तर्गत चयनित ग्रामों में सूक्ष्म सिंचाई हेतु 05 हैक्टेयर भूमि को पोर्टेबल स्प्रिंकलर सेट 45 प्रतिशत अनुदान पर उपलब्ध कराये जा रहे हैं।

◆◆◆

पशुपालन विभाग द्वारा संचालित योजनायें एवं देय सुविधायें

डा० जी०एस० धामी
मुख्य पशु चिकित्साधिकारी
जनपद–ऊधम सिंह नगर
ई–मेल : cvousn@gmail.com

ग्राम सभा/न्याय पंचायत स्तर पर पशु सेवा केन्द्रों द्वारा एवं विकास खण्ड व तहसील स्तर पर पशु चिकित्सालयों के माध्यम से पशुपालकों को निम्न विभागीय सुविधा प्रदान की जाती है, जिस हेतु ग्राम सभा व न्याय पंचायत स्तर पर पशुधन प्रसार अधिकारी तथा विकास खण्ड एवं तहसील स्तर पर पशु चिकित्साधिकारी से सम्पर्क किया जा सकता है।

1. प्राथमिक पशु चिकित्सा/पशु चिकित्सा/आपातकालीन पशु चिकित्सा सेवा– विभागीय संस्थाओं एवं पशुपालक के द्वार पर चिकित्सा उपलब्ध करायी जाती है। बड़े पशु ‘ 10, छोटे पशु ‘ 5, कुत्ता/बिल्ली (शहरी क्षेत्र ‘ 40 व ग्रामीण क्षेत्र ‘ 10) प्रति पशु तथा कुक्कुट निःशुल्क की दर से लेवी प्राप्त की जाती है।

2. बधियाकरण– बधियाकरण कार्यक्रम के अन्तर्गत अनुपयोगी नर पशुओं का बधियाकरण किया जाता है। बड़े पशु (संस्था पर) ‘ 15, पशुपालक के द्वार पर ‘ 25 प्रति पशु, छोटे पशु (संस्था पर) ‘ 10 तथा पशुपालक के द्वार पर ‘ 15 प्रति पशु की दर से लेवी प्राप्त की जाती है।

3. टीकाकरण– टीकाकरण शिविरों का आयोजन कर शिविर स्थल पर तथा पशु पालकों के द्वार पर पशुओं में टीकाकरण किया जाता हैं एच.एल./बी.क्यू. वैक्सीन के टीकाकरण हेतु ‘ 1, एफ.एम.डी. ‘ 2, शीप पॉक्स ‘ 1, इन्टरटोक्सीमिया ‘ 1, स्वाइन फीवर ‘ 2, फाउल पॉक्स ‘ 1 तथा पी.पी.आर. ‘ 1 की दर से लेवी प्राप्त की जाती है।

4. कृत्रिम गर्भाधान– संस्था एवं पशुपालक के द्वार पर कृत्रिम गर्भाधान सेवा पशुपालकों को प्रदान की जाती है। ‘ 60 प्रति स्ट्रा केन्द्र पर तथा ‘ 100 प्रति स्ट्रा पशुपालक के द्वार पर शुल्क देय है। जनपदों में लिंग आधारित भारतीय नस्ल (sexed sorted semen) हेतु प्रति स्ट्रा ‘ 1150 का मूल्य निर्धारित है। भारत सरकार, राज्य सरकार, जिला योजना से अनुदान के अन्तर्गत ‘ 100 प्रति स्ट्रा की दर पर उपलब्ध है।

5. जांच सेवायें– जनपद ऊधमसिंहनगर में रोग निदान प्रयोगशाला, रूद्रपुर में कार्यरत है, जहाँ पर पशुओं में होने वाले विभिन्न प्रकार के रोगों के निदान हेतु निम्न जाँच सुविधा उपलब्ध है।

रक्त– रक्त जाँच में हिमोग्लोबिन, T.E.C., T.L.C., D.L.C., E.S.R., P.C.V. के अलावा रक्त में पाये जाने वाले प्रोटोजुवा की जाँच भी की जाती है।

मल– समस्त प्रकार के परजीवी, जो पेट, आंत व जिगर में संक्रमण उत्पन्न करते हैं। इनके अण्डे गोबर में पाये जाते हैं, जिनके निदान करने हेतु मल (गोबर) की जाँच की जाती है।

मूत्र– मूत्र जाँच जिसमें मूत्र की नली, थैली, किडनी के संक्रमण तथा अन्य आंतरिक रोगों के निदान हेतु जाँच की जाती है।

दूध– थनैला रोग की जाँच दूध के द्वारा की जाती है।

लिवर फंक्शन टेस्ट– यकृत की बीमारियों की जाँच हेतु।

शुगर टेस्ट– सीरम ग्लूकोस की जाँच हेतु।

6. स्वास्थ्य परीक्षण– बड़े तथा छोटे पशुओं का स्वास्थ्य परीक्षण कर पशु बीमा तथा विभिन्न योजनान्तर्गत स्वास्थ्य परीक्षण कर प्रमाण पत्र पशुपालकों को प्रदान किये जाते है। बड़े पशु हेतु ‘ 50 प्रति पशु, छोटे पशु ‘ 20 प्रति पशु की दर से लेवी प्राप्त की जाती है।

7. शव विच्छेदन– बीमित पशुओं का पशुपालकों की मांग के अनुसार शव विच्छेदन कर प्रमाण पत्र जारी किया जाता है, जिस हेतु बड़े पशु ₹ 100, छोटे पशु ₹

50 प्रति पशु की दर से लेवी प्राप्त की जाती है।

8. चारा बीज वितरण– मौसमी चारा बीजों का वितरण निःशुल्क किया जाता है, जिसके अन्तर्गत मक्का, जई, बरसीम आदि बीज उपलब्ध कराये जाते हैं। जिनका वितरण संस्थाओं पर, शिविरों के माध्यम से किया जाता है।

9. कॉम्पैक्ट फीड– प्रत्येक विकास खण्ड में स्थापित चारा बैंकों के माध्यम से (पौष्टिक चारा) कॉम्पैक्ट फीड ब्लॉक/चाटन भेली पशुपालकों को उपलब्ध कराया जाता है। राहत भेली (2 x 2 किग्रा.) ' 230, प्रति ब्लॉक, दुधारू भेली (2 x 14 किग्रा.) ' 332, प्रति ब्लॉक तथा चाटन भेली (2.5 किग्रा.) ' 40 प्रति की दर से पशुपालकों को उपलब्ध कराया जाता है।

1०. कृमिनाशक दवापान एवं दवा स्नान (सामूहिक)– भेड़ तथा बकरियों में आन्तरिक व वाह्य परजीवियों से बचाव हेतु पशुओं में दवापान तथा दवास्नान किया जाता है। दवापान ' 100 प्रति 100 भेड़–बकरी, दवास्नान ' 50 प्रति 100 भेड़–बकरी की दर से लेवी प्राप्त की जाती है।

11. बड़े पशुओं में दवापान (सामूहिक)– आन्तरिक परजीवियों से बचाव हेतु बड़े पशुओं में सामूहिक दवापान कराया जाता है, जिस हेतु ' 10 प्रति पशु की दर से लेवी प्राप्त की जाती है।

12. दुग्ध समिति की मांगों पर पशुपालन सम्बन्धी अतिरिक्त सुविधायें– ऐसे पशुपालक जिनके द्वारा दुग्ध समितियों को दूध नहीं दिया जाता है, को प्राथमिक उपचार किट निःशुल्क द्वार पर एवं विभागीय नियमानुसार उपलब्ध करायी जाती है।

13. अनुसूचित जाति/जनजाति योजनान्तर्गत बैक्यार्ड कुक्कुट पालन योजना– कुक्कुट पालन हेतु लोगों को प्रेरित करने तथा अतिरिक्त आय के साधन उपलब्ध कराने के उद्देश्य से अनूसूचित जाति/जनजाति के लाभार्थियों को स्वरोजगार उपलब्ध कराने हेतु निःशुल्क ब्रायलर चुजे उपलब्ध कराये जाते हैं। योजनान्तर्गत कुक्कुट बाड़े हेतु जाली, चूजा राषन एवं औषधि भी उपलब्ध करायी जाती है।

14. बांझपन निवारण शिविर/गोष्ठी– जनपद के सुदूरवर्ती क्षेत्रों में शिविर/गोष्ठी का आयोजन कर बांझ पशुओं की चिकित्सा विभागीय शुल्क दरों पर की जाती है एवं गोष्ठियों का निःशुल्क आयोजन किया जाता है।

15. पशु प्रदर्शनी– पशुपालन के प्रति लोगों की जागरूकता एवं प्रतिस्पर्धा की भावना जागष्त करने हेतु जनपद/तहसील/विकास खण्ड स्तर पर निःशुल्क पशु प्रदर्शनियों का आयोजन किया जाता है, जिसमें उन्नत नस्ल के श्रेष्ठ पशुओं को पुरस्कृत किया जाता है।

16. अन्य योजनायें–पशुपालन विभाग की एस.सी.पी.–टी.एस.पी. राज्य योजनान्तर्गत संचालित योजनाएं– अनुसूचित जाति, जनजाति, बकरी पालन योजना 90 प्रतिशत अनुदान पर।

17. राष्ट्रीय पशु रोग नियंत्रण कार्यक्रम– भारत सरकार द्वारा संचालित इस कार्यक्रम के अन्तर्गत वर्ष में 2 बार फरवरी, मार्च व अक्टूबर, नवम्बर में समस्त गाय एवं भैंसों को खुरपका रोग नियंत्रण हेतु निःशुल्क टीकाकरण की व्यवस्था की गई है। इसके अतिरिक्त पशु चिकित्सालयों पर कुत्तों को रेबीज से बचाव हेतु टीकाकरण निःशुल्क किया जाता है। पशुओं को गलाघोटू, ब्रुसेला, पी.पी.आर. कुक्कुट पक्षियों में या फाउल्पोक्स आदि रोगों से बचाव हेतु भी टीकाकरण किया जाता है।

18. राष्ट्रीय कृत्रिम गर्भाधान कार्यक्रम– भारत सरकार के द्वारा जनपद के सभी ग्रामों में निःशुल्क कृत्रिम गर्भाधान कार्यक्रम 1 अगस्त, 2020 से 31 मई, 2021 तक संचालित किया जा रहा है। सेक्स सर्टिड सीमेन (लिंग आधारी) आधारित से प्रति स्ट्रा 100/– की दर पर उपलब्ध कराया जा रहा है।

(अ) उत्तराखण्ड लाइवस्टाक डेवलपमेंट बोर्ड द्वारा संचालित योजनायें एवं देय सुविधायें

पशुधन बीमा योजना–

योजना का उद्देश्य– पशुओं की दुर्घटना, मृतयु एवं अन्य अप्रत्याशित क्षति होने पर पशुपालकों को इससे होने वाली आर्थिक क्षति से बचाया जाना। पशुधन बीमा योजना सम्पूर्ण प्रदेश में संचालित है तथा बीमा की अवधि 1 वर्ष एवं 3 वर्ष है।

चयन प्रक्रिया– एक पशुपालक के अधिकतम 5 बड़े

पशुओं (दुधारू गाय एवं भैंस, पैक एनिमल यथा घोड़ा, गधा, खच्चर, ऊँट, ट्टू/अन्य पशुओं याक एवं मिथुन) अथवा 5 यूनिट छोटे पशुओं यथा– भेड़, बकरी, सुअर या खरगोश (एक यूनिट 10 छोटे पशु) के बीमा का प्रावधान है। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति व बी.पी.एल. के लाभार्थियों हेतु 80 प्रतिशत तथा सामान्य व ए.पी.एल. संवर्ग के लाभार्थियों हेतु 50 प्रतिशत प्रीमियम पर अनुमन्य है।

प्रीमियम भुगतान प्रक्रिया– 50 प्रतिशत अनुदान पर तीन वर्ष हेतु 7.42 प्रतिशत एवं एक वर्ष हेतु 2.93 प्रतिशत प्रीमियम निर्धारित किया गया है।

स्वरोजगारी कृत्रिम गर्भाधान प्रशिक्षण कार्यक्रम : स्वरोजगार हेतु 4 माह का कृत्रिम गर्भाधान प्रशिक्षण।

◆◆◆

वस्तु एवं सेवा कर (G.S.T.) : परिचय, संरचना एवं परिचर्चा

सी.ए. अंकित प्रताप सिंह
ए 8/1, प्रथम तल, राधे टावर
काशीपुर बाइपास मार्ग, रूद्रपुर, जनपद–ऊधम सिंह नगर
ई–मेल : ankitpratapsingh.ca@gmail.com

परिचयः

जीएसटी का अर्थ है : गुड्स एंड सर्विस टेक्स (G.S.T.) यानी वस्तु और सेवाओ पर कर। जीएसटी की शुरुआत 1 जुलाई 2017 को की गई थी। जीएसटी के अनुसार सेवाओ और वस्तुओ की पूर्ति के लिए टैक्स भरना होगा। सर्वप्रथम 2002 में एन.डी.ए. सरकार नें अप्रत्यक्ष करों में सुधार हेतु विजय केलकर जी की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया, तथा इस समिति ने भारत में जीएसटी लागू करने की पहली बार सिफारिश की। उसके बाद सन् 2007 में बजट के अंतर्गत जीएसटी का उल्लेख किया गया तथा 2010 से इसे लागू करने की सिफारिश की गई थी। दूसरी बार सत्ता में आई पुनः यूपीए सरकार ने 2011 में 115 वां संविधान संशोधन विधेयक लोकसभा में रखा जो जीएसटी से संबंधित था 2014 में लोकसभा का कार्यकाल समाप्त हो गया उसके कारण यह विधेयक आगे नहीं बढ़ सका। 2014 में पुनः एनडीए सरकार के द्वारा जीएसटी हेतु 122वां संविधान संशोधन विधेयक लोकसभा में रखा गया था। इस सरकार ने लोकसभा, राज्यसभा तथा आधे से अधिक विधानसभाओं से पारित करवाने में सफलता प्राप्त की। परिणामस्वरूप जीएसटी के रूप में 101वां संविधान संशोधन अधिनियम सामने आया।

आवश्यकताः

अब यह प्रश्न हमारे दिमाग में आता है कि आखिर जीएसटी की आवश्यकता क्यों पड़ी? जीएसटी को क्यों लाया गया और क्यों जीएसटी इतना महत्वपूर्ण रहा? जीएसटी लाने का प्रमुख कारण वस्तुओं और सेवाओं पर अलग–अलग कर आरोपित किया जाता था। सर्वप्रथम GST वस्तु एवं सेवा – दोनों के लिए है। यह एक अप्रत्यक्ष कर है जिसने मूल्य वर्धित कर, सेवा कर, खरीद कर, उत्पाद शुल्क आदि जैसे कई अन्य अप्रत्यक्ष करों को प्रतिस्थापित करने के लिए शुरू किया गया है, जिसके कारण उत्पादन, सेवा, खरीद बिक्री तथा कई प्रकार के अप्रत्यक्ष करों का फायदा मिलने लगा और उत्पादन तथा निर्माण लागत में कमी आयी; साथ ही सरकार को राजस्व में कमी होती थी इसके कारण राजस्व को बढ़ाने तथा कर प्रणाली में सुधार के तहत जीएसटी को लाया गया। तदुपरांत, कैस्केडिंग कर प्रभाव– "कर पर कर" को संदर्भित करता है, जिसका सबसे ज्यादा नुकसान अंतिम उपभोगकर्ता को होता है। GST का मुख्य उद्देश्य कैस्केडिंग कर प्रभाव को ख़तम करना तथा एक राष्ट्र एक कर / एकल कर अनुपालन प्रणाली को स्थापित करना हैप

जीएसटी की दरेंः

जीएसटी में कर की मुख्य 4 दरें रखी गई जो 5% 12% 18% व 28% है। जीएसटी की दरों में कर के न्याय सिद्धांत का पालन किया गया भारत के आम लोगों के द्वारा उपयोग में ली जाने वाली वस्तुओं और सेवाओं पर जीएसटी की दर कम रखी गई। जबकि पर्यावरण को नुकसान पहुंचाने वाली वस्तुओं, सेवाएं, स्वास्थ्य को नुकसान करने वाली वस्तुएं तथा विलासिता की वस्तुओं पर जीएसटी की दरें अधिक रखी गई हैं। जीएसटी काउंसिल के द्वारा कुछ वस्तुओं और सेवाओं पर जीएसटी की दर 0% रखी गई अर्थात जीएसटी काउंसिल के द्वारा भारत के निर्धन एवं मध्यम वर्ग के द्वारा जिन वस्तुओं व सेवाओं का जीवनयापन हेतु उपयोग किया जाता है उन पर जीएसटी की दरें 0% रखी गई हैं।

जीएसटी कैसे काम करता हैः

– निर्माताः निर्माता को खरीदे गए कच्चे माल और उत्पाद बनाने के लिए जोड़े गए मूल्य पर GST का भुगतान करना होगा।

– सर्विस प्रोवाइडरः यहां सर्विस प्रोवाइडर को प्रोडक्ट

के लिए चुकाई जाने वाली रकम और उसमें जोड़े गए वैल्यू पर GST देना होगा। हालांकि निर्माता द्वारा भुगतान किए गए कर को समग्र जीएसटी से कम किया जा सकता हैं, जिसका भुगतान किया जाना चाहिए।

– रिटेलरः रिटेलर को डिस्ट्रीब्यूटर से खरीदे गए प्रोडक्ट के साथ–साथ जो मार्जिन जोड़ा गया है, उस पर जीएसटी देना होगा। हालांकि रिटेलर ने जो टैक्स चुकाया है, उसे ओवरऑल जीएसटी से कम किया जा सकता है, जिसका भुगतान किया जाना जरूरी है।

– उपभोक्ताः खरीदे गए उत्पाद पर जीएसटी का भुगतान किया जाना चाहिए।

GST के प्रकारः

GST में चार प्रकार के टैक्स हैं, जो सम्मिलित रूप में जीएसटी कहलाते हैं– CGST, SGST, IGST तथा UTGST-

CGST: यह एक प्रकार का केंद्र सरकार का टैक्स होता है, जो राज्य सरकार के टैक्स के साथ जुड़कर लगता है अगर कोई व्यक्ति अपने क्रेता को सामान बेच रहा है और वह क्रेता उसी राज्य का है तो उस स्थिति में CGST टैक्स लगाया जाता है और इसके साथ SGST भी लगता हैं।

SGST: यह एक प्रकार का राज्य सरकार का टैक्स होता है और इस टैक्स को केंद्र सरकार के टैक्स (ब्लैज) के साथ जोड़कर लगाया जाता हैं। यह टैक्स भी एक राज्य के क्रेता और विक्रेता के बीच सामान को खरीदने या बेचने पर लगाया जाता है।

IGST: यह टैक्स केंद्र सरकार का होता है और यह टैक्स एक राज्य से दूसरे राज्य के क्रेता और विक्रेता के बीच सामान अथवा सेवा को खरीदने और बेचने पर लगाया जाता है, इस टैक्स को इंटीग्रेटेड टैक्स भी कहा जाता हैं।

UTGST: संघ राज्य क्षेत्र के भीतर माल और सेवा की आपूर्ति पर UTGST लागू है।

रजिस्ट्रेशन की आवश्यकताः रजिस्ट्रेशन की आवश्यकता एक निर्धारित टर्नओवर के आधार पर है। हालाँकि कुछ विशेष प्रकार के व्यक्तियों को अनिवार्यता के कारण रजिस्ट्रेशन लेना ही पड़ता है। कुछ विशेष राज्यों में (जिनमे पॉन्डिचेरी, मेघालय, मिजोरम, त्रिपुरा, मणिपुर, सिक्किम, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश एवं उत्तराखंड हैं) टर्नओवर 20 लाख से ऊपर होने तथा अन्य राज्यों टर्नओवर 40 लाख से ज्यादा होने पर अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रेशन लेना पड़ता हैं; परन्तु आवश्यकता पड़ने पर या टर्नओवर निर्धारित सीमा से काम होने पर भी स्वेक्छिक रूप से रजिस्ट्रेशन लिया जा सकता है।

जीएसटी रजिस्ट्रेशन के प्रकार : जीएसटी रजिस्ट्रेशन मूलतः दो प्रकार के होते हैं–

1. सामान्य योजना के अंतर्गत – इस योजना के अंतर्गत करदाता अपनी अंतिम सेवा / वस्तु पर जीएसटी टैक्स (आउटपुट टैक्स) लगाता हैं तथा उन सभी वस्तु एवं सेवाओं पर दिए गए जीएसटी का फायदा (इनपुट) लेता हैं, जो अंतिम सेवा / वस्तु के निर्माण एवं प्रदान में इस्तेमाल की गयी हैं, परन्तु कुछ निर्धारित व्यय / वस्तुओं पर इनपुट का फायदा नहीं मिलता है जिनका उल्लेख CGST ACT 2017 की सेक्शन 17 में किया गया है। प्रति मास इनपुट टैक्स को आउटपुट टैक्स में से घटाकर (जो की एक निर्धारित क्रम एवं तरीके से होता है) बचा जीएसटी सरकार को प्रतिमाह कैश में जमा करना पड़ता है, और अगर उस माह का इनपुट टैक्स ज्यादा हो तो वह अगले माह में समायोजन के लिए अग्रेषित किया जाता है यहाँ विक्रेता अपने क्रेता को टैक्स इनवॉइस देता है।

2. समग्र योजना (कम्पोजिट स्कीम) के अंतर्गत – इस योजना में निर्धारित श्रेणी के करदाता अपना रजिस्ट्रेशन करा सकते है। इस योजना में करदाता अपनी अंतिम सेवा / वस्तु पर एक निर्धारित दर से अपने विक्रय पर जीएसटी टैक्स (आउटपुट टैक्स) सरकार को देता है। इस योजना में करदाता उन सभी वस्तु एवं सेवाओं पर दिए गए जीएसटी का फायदा (इनपुट) नहीं ले सकता हैं जो अंतिम सेवा / वस्तु के निर्माण एवं प्रदान में इस्तेमाल की गयी हैं। इस योजना में कुछ विशेष प्रतिबंधों का पालन करना पड़ता है परन्तु कुछ विशेष लाभों के कारण ये योजना एक विशेष श्रेणी के लिए उपयोगी है। यहाँ विक्रेता अपने क्रेता को बिल ऑफ़ सप्लाई देता है।

प्रश्नः मैंने अभी व्यापार चालू किया है, क्या मुझे व्यापार चालू करते ही जीएसटी का रजिस्ट्रेशन ले लेना चाहिए?

उत्तरः अगर आप CGST ACT 2017 के अंतर्गत अनिवार्य रजिस्ट्रेशन केटेगरी के अंतर्गत आते हैं तो हाँ। अन्यथा सामान्यतया ये आपके टर्नओवर और आपके कार्य पर भी निर्भर करेगा, जैसे कृषि कार्य और कुछ अन्य कार्यों के लिए रजिस्ट्रेशन नहीं लेने पड़ता है। फिर भी, अगर आप स्वेक्छिक रूप से रजिस्ट्रेशन लेने चाहें तो आप ले सकते है।

प्रश्नः क्या मैं एक राज्य में एक ही रजिस्ट्रेशन ले सकता हूँ, या अलग अलग राज्यों में कारोबार की स्थिति में रजिस्ट्रेशन कैसे लेने होगा?

उत्तरः जीएसटी रजिस्ट्रेशन आपके च।छ पर आधारित है। अगर आपकी बिज़नेस लाइन (उदाहरणतया एक ही प्रकार की वस्तु की ट्रेडिंग / मैन्युफैक्चरिंग) एक राज्य में एक प्रकार की ही है तो आपको एक राज्य में एक ही रजिस्ट्रेशन लेने चाहिए, लेकिन अगर आप के विभिन्न / अलग–अलग प्रकार के कार्य हैं तो आप एक राज्य में एक से ज्यादा रजिस्ट्रेशन ले सकते हैं – ये आपके व्यापार की प्रकृति पर निर्भर करेगा। अलग – अलग राज्यों में कार्य करने पर आपको सम्बंधित राज्य में भी रजिस्ट्रेशन लेने की आवश्यकता पड़ेगी।

प्रश्नः क्या रजिस्ट्रेशन करने के बाद उसके रद्दीकरण की अनुमति है?

उत्तरः हाँ। CGST / SGST ACT की धारा 29 में व्यक्त स्थितियों में सक्षम अधिकारी के द्वारा या आपके अनुरोध पर भी रजिस्ट्रेशन का रद्दीकरण किया जा सकता है।

प्रश्नः कृपया जीएसटी में किये जाने वाले अनुपालन के नियमो (compliances) के बारे में बताएं, जैसे जीएसटी रिटर्न्स, e-way bills, जीएसटी का भुगतान, क्रेडिट लेजर और कैश लेजर, इनपुट टैक्स क्रेडिट लेने के नियम आदि।

उत्तरः प्रश्न का उत्तर निम्न बिंदुओं में हैः

1- INPUT TAX CREDIT: जीएसटी में Input credit से मतलब ऐसे सिस्टम से है, जिसमें आपको पहले कहीं चुकाए गए जीएसटी के बदले क्रेडिट मिल जाता है। बाद में आपको अपने विक्रय पर जीएसटी चुकाने की जरूरत पड़ती है, तो पैसों के बदले इस Credits का इस्तेमाल कर सकते हैं। इस तरह, इस क्रेडिट की मदद से अपनी टैक्स देनदारी को कम कर पाते हैं। उदाहरण के लिए, आप कोई प्रोडक्ट बनाते हैं, जिसके व्यापार करने पर आपको 600 रुपए जीएसटी चुकाना चाहिए। अब मान लेते हैं कि आपने उस प्रोडक्ट को बनाने के लिए जो माल खरीदा था उस पर पहले ही 400 रुपए जीएसटी चुका चुके हैं। तो फिर आपको फिलहाल सिर्फ 200 रुपये जीएसटी चुकाना होगा। इस प्रकार, GST में, Input Credit ही वह व्यवस्था है, जो यह सुनिश्चित करती है कि किसी एक वस्तु पर दोहरा कर (Dual Taxation) न लगे। यानी कि एक वस्तु पर सरकार को जितना Tax मिलना है, उसका पूरा का पूरा बोझ अंतिम खरीदार या उपभोक्ता (Consumer) पर पड़े।

Input Credit का फायदा आपको तभी मिल सकेगा, जब कि आपने ऐसी जगह से खरीदारी की हो, जो GST ACT में Registered हो, और सौदे के बाद वह उसे अपने GST Return में दर्ज कर दे। साथ ही आप खुद भी GST System में Registered हों, ताकि वह उस सौदे को आपके जीएसटी रजिस्ट्रेशन नंबर के साथ दर्ज करे। क्योंकि, ऐसा होने पर ही उस सौदे के बदले में Input Credit आपके अकाउंट में दर्ज होंगे।

आईजीएसटी का भुगतानः IGST के भुगतान के लिए SGST, CSGT और IGST, सभी के बदले में मिले प्दचनज ब्तमकपज का उपयोग किया जा सकता हैं।

सीजीएसटी का भुगतानः CGST के भुगतान के लिए, CGST और IGST के बदले में मिले Input Credit का उपयोग किया जा सकता है।

एसजीएसटी का भुगतानः SGST के भुगतान के लिए, SGST और IGST के बदले में मिले Credit का उपयोग किया जा सकता है।

Note:

– CGST और SGST के इनपुट क्रेडिट एक दूसरे के Output Tax के भुगतान के लिए उपयोग में नहीं लाए जा सकते। यानी कि CGST के भुगतान के लिए SGST के बदले में मिले Input Credit का उपयोग नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार SGST के भुगतान के लिए CGST के बदले में मिले Input Credit का उपयोग नहीं किया किया जा सकता।

– GSTR - 2B में आपकी चनतबींम का इनपुट आने के बाद ही आपको इनपुट मिलेगा।

– आप अपने Input Credit का उपयोग अधिकतम वित्तीय वर्ष समाप्त होने के 6 महीने के भीतर ही कर सकते हैं।

GST RETURNS- जीएसटी regime में कुल 22 प्रकार की रिटर्न्स हैं, पर यहाँ पर हम सामान्य योजना के अंतर्गत जीएसटी की रिटर्न्स के बारे में चर्चा करते हैं:

– **1.5 करोड़ से ज्यादा वार्षिक टर्नओवर:** GSTR 1 / GSTR 3B – मासिक रूप से (अगले माह की 10 तारीख़ / 20 तथा 24 तारीख़ से पहले। समय पर रिटर्न ना भरने पर पेनल्टी का प्रावधान है जो 20 या 50 रूपए प्रति दिन है।

– **1.5 करोड़ से कम वार्षिक टर्नओवर:** GSTR 1 / GSTR 3B – त्रैमासिक रूप से (अगले तिमाही की 10 तारीख़ / 20 तथा 24 तारीख़ से पहले। समय पर रिटर्न ना भरने पर पेनल्टी का प्रावधान है जो 20 या 50 रूपए प्रति दिन है।

– वार्षिक टर्नओवर 3 करोड़ से ज्यादा होने पर annual return भी भरने का प्रावधान हैं जो वित्तीय वर्ष समाप्त होने के 9 महीने के भीतर भरनी होती है।

GST PAYMENT OF TAX:

सबसे पहले आउटपुट टैक्स को इनपुट टैक्स से एक निर्धारित एवं ऊपर वर्णित क्रम में एडजस्ट करने के बाद, अगर आउटपुट टैक्स की देनदारी होती है तो उसका भुगतान कैश में चालान के माध्यम से किया जाता है। अगर टैक्स भुगतान में देरी होती है तो उसपर 18% वार्षिक ब्याज का भुगतान करना पड़ता है।

E-WAY BILL:

ई–वे बिल, दरअसल एक प्रकार का Electronic Bill यानी कम्प्यूटर पर बना बिल होता है। GST System में, किसी माल को एक जगह से दूसरी जगह भेजने पर, उसके लिए Online Bill भी तैयार करना होगा। ये बिली जीएसटी पोर्टल पर भी दर्ज हो जाएगा। इसी Online Bill को E-Way Bill कहते हैं। पुरानी व्यवस्था में जो कागज पर बिल बनाया जाता रहा है, उसे हम Road Permit के नाम से जानते रहे हैं।

अगर Transport से भेजे जाने वाले माल की कीमत 50 हजार रुपए से ज्यादा है तो उसके लिए E-Way Bill बनाना अनिवार्य होगा। इसे GST Common Portal पर दर्ज करने की जिम्मेदारी मुख्य रूप से माल भेजने वाले (Supplier) की होगी। लेकिन इसे जरूरत समझने पर, माल मंगाने वाला (Reciever) या माल वाहन से ले जाने वाला (Transport) भी जारी कर सकता है।

माल अगर 50000 रुपए से अधिक कीमत का है। तो चाहे उसे राज्य के अंदर भेजा जा रहा हो (Inter State Trade), या राज्य के बाहर (Intra State Trade), हर तरह के माल ट्रांसपोर्ट के लिए E-Way Bill बनाना होगा। हालांकि कुछ खास सामानों के लिए कीमत की इस स्पउपज में भी छूट दी गई है।

◆◆◆

उत्तराखण्ड के मुख्य कृषि अधिकारी/परियोजना निदेशक 'आतमा' की सूची

क्र.सं.	राज्य/जनपद स्तर	नोडल ऑफिसर का नाम	पदनाम	दूरभाष संख्या	ई–मेल आई.डी.
1.	राज्य स्तर	डा0 दिनेश कुमार	राज्य समन्वयक 'आतमा'	9412413372	dir.agri.uttarakhand@gmail.com dir-agri-ua@nic.in
2.	नैनीताल	डा0 विकेश कुमार यादव	मुख्य कृषि अधिकारी/परियोजना निदेशक 'आतमा'	9412987380	caonainital@yahoo.co.in, vikeshyadav94@gmail.com
3.	ऊधम सिंह नगर	डा0 ए0के0 वर्मा	मुख्य कृषि अधिकारी/परियोजना निदेशक 'आतमा'	9997775257, 8077417132	caousnagar@gmail.com
4.	अल्मोड़ा	डा0 धनपत कुमार	मुख्य कृषि अधिकारी/परियोजना निदेशक 'आतमा'	8171419609	caoalmora@gmail.com
5.	पिथौरागढ़	डा0 रितु टम्टा	मुख्य कृषि अधिकारी/परियोजना निदेशक 'आतमा'	7088150520	caopithoragarh@yahoo.in
6.	बागेश्वर	श्री सुघर सिंह वर्मा	मुख्य कृषि अधिकारी/परियोजना निदेशक 'आतमा'	7060496905	caobageshwar@yahoo.in
7.	चम्पावत	श्री गोपाल सिंह भण्डारी	मुख्य कृषि अधिकारी/परियोजना निदेशक 'आतमा'	9412922856	caochampawat@yahoo.co.in, caochp-agri-uk@gov.in
8.	देहरादून	श्रीमती लतिका सिंह	मुख्य कृषि अधिकारी/परियोजना निदेशक 'आतमा'	8979270239	cao.deh.uk@gmail.com
9.	पौड़ी गढ़वाल	श्री अमरेन्द्र चौधरी	मुख्य कृषि अधिकारी/परियोजना निदेशक 'आतमा'	9412319543, 8171128778	cao.pauri00@gmail.com
10.	टिहरी गढ़वाल	श्रीमती अभिलाषा भट्ट	मुख्य कृषि अधिकारी/परियोजना निदेशक 'आतमा'	8171199655	caotehri@gmail.com
11.	चमोली	श्री विजय प्रकाश मौर्य	मुख्य कृषि अधिकारी/परियोजना निदेशक 'आतमा'	9453628450	caocmi@gmail.com
12.	उत्तरकाशी	श्री जय प्रकाश तिवारी	मुख्य कृषि अधिकारी/परियोजना निदेशक 'आतमा'	9454768810	caouki.agri2011@gmail.com
13.	रूद्रप्रयाग	श्री दीपक पुरोहित	मुख्य कृषि अधिकारी/परियोजना निदेशक 'आतमा'	9690553265	caorpg@gmail.com
14.	हरिद्वार	डा0 विजय देवराड़ी	मुख्य कृषि अधिकारी/परियोजना निदेशक 'आतमा'	9412120961	atmaharidwar2018@gmail.com

उत्तराखण्ड के विभिन्न कृषि विज्ञान केन्द्रों की सूची

क्र. सं.	जनपद का नाम	केन्द्र का नाम एवं पता	प्रभारी अधिकारी का नाम	सम्पर्क सूत्र		ई–मेल
				कार्यालय	मोबाइल नं0	
1.	चमोली	कृ.वि.के., ग्वालदम, जनपद–चमोली–246441	डा. अनिल पंवार, प्रभारी अधिकारी	01363-274287	8474924343 9411188970	kvkchamoli@rediffmail.com
2.	अल्मोड़ा	कृ.वि.के., मटेला (कोसी), जनपद–अल्मोड़ा–263643	डा. एस.एस. सिंह, प्रभारी अधिकारी	05962-241248	9761969696 8475001596	kvkalmora@gmail.com
3.	देहरादून	कृ.वि.के., ढकरानी, पो.–हर्बटपुर, जनपद–देहरादून–248001	डा. ए.के. शर्मा, प्रभारी अधिकारी	01360-224378	8475002277	kvkdehradun@gmail.com
4.	हरिद्वार	कृ.वि.के., धनौरी, जनपद–हरिद्वार–247667	डा. पुरूषोत्तम कुमार, प्रभारी अधिकारी	--	9411177299 8475002233	kvkharidwar@gmail.com
5.	नैनीताल	कृ.वि.के., ज्योलीकोट, जनपद–नैनीताल–263135	डा. वी.के. दोहरे, प्रभारी अधिकारी	05942-224547	7500241504 9412966838	kvknainital@rediffmail.com, vijaydoharey@gmail.com
6.	पिथौरागढ़	कृ.वि.के., गैंना–एंचोली, जनपद–पिथौरागढ़–262530	डा. जी.एस. बिष्ट, प्रभारी अधिकारी	--	9412344527	kvkpithoragarh@yahoo.com
7.	चम्पावत	कृ.वि.के., लोहाघाट, पो. –गलचौरा, जनपद–चम्पावत–262524	श्रीमती अमरेश, प्रभारी अधिकारी	--	9412088082	officerinchargekvklohaghat@gmail.com
8.	रूद्रप्रयाग	कृ.वि.के., जाखधार, वाया गुप्तकाशी, जनपद–रूद्रप्रयाग–246439	डा. संजय सचान, प्रभारी अधिकारी	--	9450410994	kvkjakh@rediffmail.com
9.	ऊधमसिंहनगर	गन्ना शोध एवं कृ.वि.के., बाजपुर रोड, काशीपुर, जनपद–ऊधमसिंहनगर–244713	डा. जितेन्द्र क्वात्रा, प्रभारी अधिकारी	--	7500241509	kvkkashipur@gmail.com
10.	बागेश्वर	कृ.वि.के., सिंदूरी बसखोला, काफलीगैर, जनपद–बागेश्वर–263628	डा. कमल पाण्डे, प्रभारी अधिकारी	05963-255150	9412950911	kvk.bageshwar@icar.gov.in
11.	उत्तरकाशी	कृ.वि.के., चिन्यालीसौंड़, जनपद–उत्तरकाशी–249196	डा. पंकज नौटियाल, प्रभारी अधिकारी	01371-237198	9412394661 9012366559	kvk.uttarkashi@icar.gov.in
12.	पौड़ी गढ़वाल	वीर चन्द्र सिंह गढ़वाली औद्यानिकी एवं वानिकी कृषि विष्वविद्यालय, कृ.वि.के., भरसार, वाया चिपलघाट, जनपद–पौड़ी गढ़वाल–246123	डा. रश्मि लिंबू, प्रभारी अधिकारी	01348-226076	9756388201	kvkpaurigarhwal@gmail.com
13.	टिहरी गढ़वाल	कृ.वि.के., रानीचौरी, वाया चम्बा, जनपद–टिहरी गढ़वाल–249199	श्री आलोक जी. येवले, प्रभारी अधिकारी	01376-252101	7302230101	kvktehrigarhwal@gmail.com

कृषि सूचना प्रौद्योगिकी केन्द्र, पंतनगर–हेल्पलाइन : 05944–234810 एवं 235580

एवं किसान कॉल सेन्टरः 1800–180–1551